[illegible]

॥ श्रीः ॥

श्रीमहर्षिकपिलमुनिप्रणीतं-

सांख्यदर्शनम् ।

टीका

बाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि-
श्रीमत्प्यारेलालात्मजश्रीमत्प्रभुदया-
लुनिर्मित-

देशभाषाभाष्यसमेतम् ।

तदेतत्

श्रीकृष्णदासात्मज-गंगाविष्णोः
अध्यक्ष "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणागारे
मैनेजर पं० शिवदुलारे वाजपेयी इत्यनेन स्वाम्यर्थं
मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

शकाब्दाः १८४५, संवत् १९८०.

कल्याण-मुंबई.

सब हक यन्त्रालयाधिकारीने स्वाधीन रक्खे हैं ।

भूमिका।

ॐ परमात्मनेनमः। परमात्माको प्रणाम करिके अज्ञानियोंके उपदेशके निमित्त जे संस्कृत वाणीमें शास्त्रको नहीं समुझसकते उनके समुझने व सरलताके अर्थ विस्तारको त्याग करिके संक्षेपसे सांख्य शास्त्रके सूत्रोंका अर्थ व भाष्य सरल भाषामें वर्णन करताहूं व जहाँ कोई विशेष संस्कृत शब्द रक्खा है व ऐसा ( ) चिह्न करके उस शब्दका अर्थ चिह्नके मध्यमें जाननेके लिए लिखदिया है अथवा उस शब्दका भाव चिह्नके मध्यमें लिखदिया है विद्वान्‌जनोंसे यह प्रार्थना है कि यदि प्रमादसे कहीं भूल होगई हो तो अपनी सज्जनता व गुणमात्रग्राहकतासे विमार्जित कर लेवैं, इस पुस्तकके मुद्रित करनेका सर्वाधिकार हमने श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेङ्कटेश्वर यंत्रालयाध्यक्षको समर्पण करदिये हैं, अत एव अन्य किसीको छापनेका अधिकार नहीं.

सज्जनोंका कृपाकांक्षी–प्रभुदयालु.

धन्यवाद.

हम कोटिशः धन्यवाद उस परब्रह्म परमात्माको देते हैं कि जिसकी पूर्णानुकम्पासे अब भी ऐसे परोपकारोद्यत पुरुष विद्यामान हैं, जिनके द्वारा सर्व सामान्यकोभी कठिन २ विषयावलोकन होते हैं और अनेक धन्यवाद श्रीमत् प्रभुदयालुजीको हैं कि जिन्होने योगसूत्रोंका ऐसा सरल भाषानुवाद किया है जो भली भांति समझमें आता है बल्कि साथही उसका असरभी पडता जाता है प्रथम उक्त महाशयजी रचित भाषानुवाद सहित "पातञ्जलयोगदर्शन" दृष्टिगोचर कर चुके हैं और यह "सांख्यदर्शन" अब होता है। और "वैशेषिकसूत्र भाषानुवाद सहित" भी छप चुका है। आशा है कि सांख्ययोग विषयानुरागी सज्जनजन आदरकर प्रभुदयालुजीके उत्साहको बढाकर इनके श्रमको सफल करेंगे।

आपका कृपापात्र-

खेमराज श्रीकृष्णदास.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस--बम्बई.

ॐ परमात्मने नमः ।

भाषानुवादसहितम् ।

सांख्यदर्शनम् ।

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥ १ ॥

अथ त्रिविध दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होना अत्यन्त पुरुषार्थ है ॥ १ ॥

अथ शब्द मंगलरूप है इससे आदिमें अथ शब्द कहकर शास्त्रका आरंभ किया है. पुरुषार्थ निरूपण शास्त्रका विशेष विषय अंगीकार करके आदिमें पुरुषार्थको वर्णन किया है कि त्रिविध दुःखकी निवृत्ति पुरुषार्थ है आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक ये त्रिविध दुःख हैं जो आत्माको अपने शरीर व इन्द्रियोंके संयोगसे शारीरिक रोग आदिसे अथवा मानसिक दुःख होता है उसको आध्यात्मिक कहते हैं, जो भूत अर्थात् प्राणियोंके द्वारासे यथा चोर, व्याघ्र, सर्प आदिसे दुःख होता है उसको आधिभौतिक कहते हैं और जो अग्नि, वायु आदिसे दुःख होता है उसको आधिदैविक कहते हैं इस त्रिविध दुःखका अत्यन्त निवृत्त होना अत्यंत पुरुषार्थ है । अब यह संदेह होता है कि जो दुःख होगया उसका तो नाश ही होचुका जो वर्तमान है उसका वर्तमान क्षणमें भोगही होता है भोगके पीछे आपही नष्ट होजायगा उसके नाशके अर्थ साधन व ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होसकती शेष रहा जो होनेवाला है उसीके निमित्त साधन व ज्ञानकी अपेक्षा है । इसमें भी कोई यह शंका करतेहैं कि जो नहीं हुवा उसका प्रमाण ही नहीं है जो नहीं हुवा न वर्तमानहै आगे होगा यह क्यों मानलेवैं और उसके नाशका उपाय करना ऐसा है जैसे आकाशके फूलके नाशका उपाय करना क्योंकि जब आकाशमें फूलही नहीं होता तो उसके नाशका उपाय वृथा है अब इस संदेह निवारणके लिये उत्तर यह है कि यह

दृष्टांत अयोग्य है अपने अपने कार्य उत्पन्न करनेकी शक्ति द्रव्यमें जबतक द्रव्य है बनी रहती है यथा दाहसे रहित अग्निका होना कहीं देखनेमें नहीं आता इसी प्रकारसे अपने अपने कार्य उत्पन्न करनेकी शक्ति प्रत्येक पदार्थमें होती है यह शक्ति अनागत (भविष्यत्) कालमें प्रकट होनेवाली द्रव्यमें स्थित रहती है इससे जब-तक चित्तकी सत्ता है तबतक अनागत (होनेवाले) दुःखके सत्ताका अनुमान होता है इसका निवृत्त होना पुरुषार्थ है (शंका) ऐसा मान-नेमें दुःख निवृत्त होना कहनाही असंगत है क्योंकि दुःख चित्तका धर्म्म है पुरुषमें उसकी निवृत्तिका होना संभव नहीं है (उत्तर) यह कहना यथार्थ नहीं है जो पुरुष दुःख रहित है तो श्रवण मननसे अन-न्तर दुःखके नाशके लिये प्रवृत्ति न होना चाहिये क्योंकि साध्य उपा-यमें जब फलका निश्चय होता है तभी प्रवृत्ति होती है विना फलके निश्चय प्रवृत्ति नहीं होती दुःखके अभाव फलका वर्णन करनेवाली श्रुति यह निश्चय कराती है कि आत्मा नित्य दुःख रहित नहीं होता ज्ञान होनेपर दुःख रहित होता है । श्रुति यह है-

"तरति शोकमात्मविद् विद्वान् हर्षशोकौ जहाति" ।

अर्थ-आत्माका जाननेवाला शोकसे तरजाता है ज्ञानवान् हर्ष शोक दोनोंको त्याग देताहै पुरुष यद्यपि निज शुद्धरूपसे दुःख रहित शुद्ध मुक्त है तथापि अविद्यासे पुरुषमें दुःख सुख होते हैं अविद्यासे रहित ज्ञान प्राप्त होनेकी अवस्थामें संसारी दुःख सुखसे रहित आनन्दमय मुक्तरूप होता है यथा यह कहा है-

"न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते" ।

अर्थ-नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव पुरुषको प्रकृतिके संयोग विना बंध व दुःखका संयोग नहीं है तिससे अविद्या भ्रमसे यथा स्फटिक शुद्ध शुक्ल रूप होता है परंतु अरुण रूप आदि संयुक्त द्रव्यके प्रतिबिं-बसे उसीके रूपसे भासित होता है इसी प्रकारसे उपाधि द्वारा पुरुषमें दुःख भोगका सम्बंध होता है इसके निवृत्त होनेको पुरुषार्थ कहना

यथार्थ है, संक्षेपसे यहाँ वर्णन किया गयाहै विस्तारसे आगे वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥

अब प्रश्न यह है कि दुःखकी निवृत्तिके अर्थ ज्ञानकी क्या आवश्यकता है लौकिक उपायसे दुःख निवृत्त होजायगा । उत्तर-

न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेप्यनुवृत्तिदर्शनात् ॥ २ ॥

निवृत्त होजानेपर भी फिर अनुवृत्ति देखनेसे दृष्टपदार्थसे उसकी (दुःखनिवृत्तिकी) सिद्धि नहीं होती ॥ २ ॥

धनका दुःख धनकी प्राप्तिसे व प्रियके वियोगका दुःख प्रियके संयोगसे नष्ट होजाताहै परन्तु कालान्तरमें फिर धनके क्षयसे व प्रियके वियोगसे दुःख प्राप्त होता है इसी प्रकारसे जिस जिस संसारदुःखका नाश होना देखा जाता है उस दुःखकी फिर प्राप्ति होती है अत्यन्त दुःखकी निवृत्ति नहीं होती तिस दृष्टसे अर्थात् जो उपाय लोकमें देखनेमें आते हैं उनसे दुःखकी निवृत्ति होना सिद्ध नहीं होता ज्ञानहीसे अत्यन्त दुःख निवृत्त होना सिद्ध होता है ॥ २ ॥

प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्तत्प्रतीकारचेष्टनात्पुरुषार्थत्वम् ॥ ३ ॥

प्रतिदिन क्षुधा निवारणके तुल्य उसके (दुःखके) निवारणका उपाय वा खोज करनेसे पुरुषार्थ होना सिद्ध नहीं होता ॥ ३ ॥

सिद्ध नहीं होता यह अर्थ इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे सिद्ध न होनेकी अनुवृत्ति आनेसे ग्रहण किया जाता है । दृष्ट उपायसे पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता और जो होता है वह क्षुधा निवृत्त होनेके समान होता है यथा प्रति दिन भोजनसे क्षुधा निवृत्त होजाती है निवृत्त होनेके समयमें क्षुधाका दुःख दूर होजाता है परंतु फिर प्राप्त होजाता है यथा क्षुधा दुःख निवारण कियेगयेकी फिर अनुवृत्ति होती है इसीप्रकारसे धन अर्जन

आदिमें जानना चाहिये ऐसा दृष्ट साधन जो मन्द पुरुषार्थके लिये है ज्ञानवान्को त्याग करनेके योग्य है यह आगे सूत्रमें कहा है ॥ ३ ॥

सर्वासंभवात्संभवेपि सत्तासंभवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ॥ ४ ॥

सब असंभव होनेसे संभव होनेपर भी सत्ता-संभव होनेसे प्रमाणमें जे कुशल (प्रवीण) हैं उनको त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

दृष्ट साधनसे जो दुःखका दूर होना है उसमें सर्वथा दूर होना असंभव है और जो संभव है, उसमें भी दुःखसत्ताका रहना संभव है अर्थात् प्रतिग्रह पाप आदिसे उत्पन्न दुःख अवश्य होता है इससे प्रमाणके जाननेमें जे प्रवीण हैं उनसे वह त्यागहीके योग्य है अर्थात् संसार सुख जिसके लिये मूर्ख तन मनसे उपाय करते हैं व उसके वश होते हैं वह अंतमें नाशको प्राप्त होनेवाला व दुःख परिणामरूप है इससे ज्ञानवान्को त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ॥ ५ ॥

मोक्षके उत्कर्षसे भी सबके उसके उत्कर्ष (श्रेष्ठत्व) होनेमें श्रुति प्रमाण होनेसे ॥ ५ ॥

उत्कर्ष उच्चता वा उत्तमताको कहते हैं दृष्ट साधनसे सिद्ध करनेके योग्य जो राज्य आदि हैं उनसे मोक्षका उत्कर्ष होनेसे अर्थात् मोक्षकी श्रेष्ठता होनेसे भी यह निश्चित होता है कि सब राज्य आदिक सांसारिक सुखमें दुःख है मोक्षही सुखरूप व इष्ट साध्य पदार्थ है सबसे मोक्षके उत्कृष्ट होनेमें श्रुति प्रमाण है श्रुतिमें कहा है ॥ ५ ॥

" न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति "

अर्थ—निश्चय करके जो शरीरवान् है उसके दुःखसुखका नाश नहीं है

"अशरीरं वा व सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः"।

अर्थ-शरीर रहित वा शरीर अभिमान रहित जो मुक्तरूप सन्त है उसको दुःख सुख स्पर्श नहीं करते अर्थात् नहीं होते ॥ ५ ॥

अब यह प्रश्न है कि, जो दृष्ट साधनसे सर्वथा दुःखका नाश नहीं होता तो वेदविहित यज्ञ आदि कर्मसे होजायगा। उत्तर-

अविशेषश्चोभयोः ॥ ६ ॥

दोनोंका विशेष (भेद) नहीं है ॥ ६ ॥

दोनोंका अर्थात् दृष्ट जो लोकमें देखनेमें आता है व अदृष्ट जो यज्ञ साधन धर्म फल वेद विहित देखनेमें नहीं आता इन दोनोंका जैसा कहा गया है अत्यन्त दुःखकी निवृत्तिके साधक न होनेमें विशेष नहीं है अर्थात् दोनों एकही समान हैं अत्यन्त दुःखकी निवृत्ति यह आदि फलसे भी नहीं होती मोक्षके साधक होनेमें विवेक होना ही मुख्य उपाय है विवेकसे अविवेक जो दुःखका हेतु है उसीके नाशसे दुःख मात्रका नाश होता है अन्यथा नहीं होता ॥ ६ ॥

न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनो-पदेशविधिः ॥ ७ ॥

स्वभावसे बँधेहुयेको मोक्ष साधनके उपदेशकी विधि नहीं है ॥ ७ ॥

अत्यंत दुःख निवृत्तिको जो मोक्ष वर्णन किया है इसमें बंधन केवल दुःखका योग है, पुरुषमें दुःख बंध स्वाभाविक नहीं है जो स्वभावसे बँधा है तो उसको मोक्षसाधनके उपदेशकी विधि नहीं होसकती क्योंकि स्वाभाविक धर्मका जबतक द्रव्य है तबतक नाश नहीं होसकता द्रव्यके नाशसे उसका नाश होसकता है अन्यथा नहीं होसकता। यथा स्वाभाविक उष्णता (गरमी) का अग्निसे भिन्न होना संभव नहीं होता इसी प्रकारसे स्वाभाविक बंध होनेसे पुरुषका मोक्ष होना संभव नहीं होसकता इससे पुरुषमें बंध स्वाभाविक नहीं है ॥ ७ ॥

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षण-मप्रामाण्यम् ॥ ८ ॥

स्वभावके नाशवान् न होनेसे अननुष्ठान लक्षण (अविधि स्वरूप) अर्थात् विधिरहित रूप अप्रामाण्य (प्रमाणरूप न होना) होगा अर्थात् श्रुतिका अननुष्ठान लक्षण अप्रामाण्य होगा ॥ ८ ॥

स्वभावके नाशवान् न होनेके हेतुसे मोक्ष असंभव होनेसे श्रुतिमें जो मोक्ष साधनका उपदेश है उसके अनुष्ठानके लक्षण युक्त न होनेसे श्रुतिका प्रामाण्य न होगा अर्थात् जब स्वाभाविक बंधसे मोक्ष असंभव होनेके कारणसे श्रुतिमें उपदेश किये गये मोक्ष साधनका अनुष्ठान नहीं होसकताहै तो अनुष्ठान लक्षण रहित होनेसे श्रुतिमें जो मोक्षका उपदेशहै वह प्रमाणके योग्य होनेसे उसके विरुद्ध स्वाभाविक बंध मानना प्रमाणके योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ श्रुतिमें वर्णन किये जानेसे अनुष्ठान किया जावे जो ऐसा माना जावे तो उत्तर यहहै जैसा आगे सूत्रमें कहा है—

नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेप्यनुपदेशः ॥ ९ ॥

जो नहीं होसकता उसमें उपदेश विधि नहीं है उपदेश कियेगयेमें भी उपदेश नहीं है ॥ ९ ॥

जिसका होना संभव नहीं है उसके उपदेशकी विधि नहीं है और जो उसका उपदेश किया जाय तो भी निष्फल होनेसे वह उपदेश नहीं है ॥ ९ ॥

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ॥ १० ॥

शुक्लपटके समान वा बीजके समान होवे ॥ १० ॥

अब यह शंका है कि स्वाभाविक शुक्लपटकी शुक्लतारंगसे व बीजकी स्वाभाविक अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्ति अग्निमें पक जानेसे दूर हो जाती

है इसी प्रकारसे पुरुषका स्वाभाविक बंधन दूर होजाना संभव है जो ऐसा माना जावे ॥ १० ॥ उत्तर-

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ॥ ११ ॥

शक्तिके उत्पन्न होने व न उत्पन्न होनेसे जो नहीं होसकता उसका उपदेश नहीं है ॥ ११ ॥

जो शुक्लपट व बीजका दृष्टांत दियागया है वह युक्त नहीं है इससे यथार्थ नहीं है आशय यह है कि पट व बीजमें शुक्लता अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव नहीं होता केवल प्रकटता व अप्रकटता होती है धोबीके व्यापार व योगीके संकलपसे अरुणपट आदिमें व भुजे हुए बीजमें फिर शुक्लता व अंकुर उत्पत्तिकी शक्ति प्रकट होती है इसी प्रकारसे पुरुषमें दुःख शक्तिका तिरोभाव (प्रकट न रहना) मोक्ष नहीं है दुःखका अत्यन्त निवृत्त होना मोक्ष है इससे दृष्टांत युक्त नहीं है ॥ ११ ॥

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ॥ १२ ॥

व्यापक नित्यके सबमें संबन्ध होनेसे कालयोगसे नहीं है ॥ १२ ॥

जो स्वाभाविक पुरुषमें बंध न मानाजाय काल निमित्तसे मानाजाय तो उत्तर यह है कि काल योगसे पुरुषको बंध नहीं है क्योंकि काल व्यापक नित्यका मुक्त व अमुक्त सबमें सर्वदा सम्बन्ध रहता है सबमें सम्बंध रहनेसे मुक्त पुरुषोंको भी बंधन होना चाहिये मुक्त होना ही असंभव होना चाहिये परन्तु ऐसा होना प्रमाण विरुद्ध होनेसे काल सम्बंधसे पुरुषका बंधन होना सिद्ध नहीं होता पुरुषमें बंधन केवल मिथ्या बुद्धि उपाधिसे होता है ॥ १२ ॥

न देशयोगतोऽप्यस्मात् ॥ १३ ॥

इसी हेतुसे देश योगसे भी नहीं है ॥ १३ ॥

इसी हेतुसे जो काल योगमें कहा गया है अर्थात् देशकाभी मुक्त व असुक्त सबमें सदा सम्बंध होनेसे देश योगसे पुरुषका बंधन होना सिद्ध नहीं होता, नहीं मुक्त पुरुषको भी बंधन होना चाहिये ॥ १३ ॥

नावस्थातो देहधर्म्मत्वात्तस्याः ॥ १४ ॥

अवस्थाके देह धर्म होनेसे अवस्थासे नहीं है ॥ १४ ॥

यदि अवस्थासे पुरुषका बंधन होना माना जावे तो अवस्थासे बंधन नहीं होसकता क्यों नहीं होसकता ? उसके देह धर्म होनेसे अर्थात् अवस्थाके देह धर्म होनेसे अवस्था जड देहका धर्म है पुरुषका धर्म नहीं है अन्यका धर्म अन्यके बंधनका कारण नहीं होसकता जो अन्यके धर्मसे अन्यका बंधन होना माना जावे तो मुक्तका भी बंधन होना सिद्ध होगा ॥ १४ ॥

असंगोयं पुरुष इति ॥ १५ ॥

यह पुरुष संगरहित है ॥ १५ ॥

पुरुषमें भी अवस्था अंगीकार करनेसे क्या दोष है ? उत्तर यह है कि पुरुष (आत्मा) संग रहित है जो यह कहा जाय कि देह व पुरुषका संयोग है पुरुष संग रहित कैसे होसकता है तो संयोग मात्रासे संग नहीं होता यथा कमलपत्रमें जलका संयोग होता है परन्तु कमलपत्रमें उसका संग अर्थात् मेल नहीं होता इसी प्रकारसे पुरुष असंग है ॥ १५ ॥

न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ॥ १६ ॥

अन्यका धर्म होनेसे व अति प्रसक्तिसे कर्मसे नहीं है अर्थात् बंध नहीं है ॥ १६ ॥

धर्म अधर्म कर्मसे पुरुषका बंध मानाजावे तो कर्मसे भी पुरुषका बंध होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि कर्म पुरुषका धर्म नहीं है अन्यका धर्म अर्थात् अंत.करण चित्तका धर्म है अन्यके धर्मसे अन्यके बंध होनेमें मुक्त पुरुषका भी बंध होना संभव होगा जो यह कहाजाय कि अपने अपने उपाधिके कर्मसे बंध अंगीकार करनेमें यह दोष न होगा

इससे दूसरा हेतु यह कहा है कि अति प्रसक्तिसे, अर्थात् कर्म बंधनके अतिसंयोग होनेसे भी कर्मसे पुरुषका बंध होना नहीं सिद्ध होता क्योंकि कर्म संस्कार प्रलयमें भी बना रहता है परन्तु कारणमात्रमें लयको प्राप्त रहनेसे दुःख सुखके बोधका हेतु नहीं होता, कर्मसे बंध माननेमें प्रलय आदिमें भी दुःख योगरूप बंधकी प्राप्ति होगी परन्तु ऐसा होना प्रमाणसे सिद्ध न होनेसे कर्मसे बंध नहीं है जो सहकारी कालके विलंबसे प्रलयमें विलम्ब होना कल्पना किया जाय तो कालके हेतु न होनेका पूर्वही प्रतिषेध करदिया गया है ॥ १६ ॥

जो काल आदि कोई पुरुषके बंधके हेतु नहीं हैं तो चित्तहीको दुःख योगरूप बंध मानना चाहिये पुरुषका बंध क्यों कल्पना किया जाता है. और बिना बंध मोक्षका भी प्रयोजन नहीं है। उत्तर–

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ॥ १७ ॥

अन्यके धर्महोनेमें विचित्र भोगकी सिद्धि वा प्राप्ति नहीं होगी।

दुःखयोग रूप बंध चित्त मात्र जो पुरुषसे अन्य है उसके धर्म होनेमें विचित्र भोगकी प्राप्ति न होगी अर्थात् अन्यके धर्म होनेमें विना पुरुषके योग पुरुषमें दुःख भोग होना माननेमें नियामकका अभाव होना नियामकके अभाव होनेमें सब पुरुषोंके दुःख सब पुरुषोंके योग्य होंगे यह दुःखका भोक्ता है यह सुखका भोक्ता है यह भोग होनेका विचित्र भेद जो अनेक पुरुषोंमें होता है न होना चाहिये विचित्र भोग सिद्ध होनेसे भोगके नियामक होनेसे दुःख आदि योगरूप जो बंध है वह पुरुषमें भी अंगीकार करनेके योग्य है पुरुषमें बंध चित्तवृत्तिके उपाधिसे है स्वाभाविक नहीं है व चित्तहीका बंध व मोक्ष है पुरुषका नहीं है चित्तके योगसे पुरुषका भी बंध व मोक्ष कहा है ॥ १७ ॥

प्रकृतिनिबंधनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ॥

प्रकृतिके निमित्तसे होवे नहीं उसके भी परतंत्र होनेसे १८

जो प्रकृतिके निमित्तसे बंध माना जावे तो नहीं होसकता क्योंकि उसके बंधको निमित्त होनेमें भी उसका व पुरुषका संयोग होना परतंत्र (परके अधीन) है प्रकृतिके अधीन नहीं है आगे इसका वर्णन किया जायगा प्रकृतिके अधीन न होनेसे प्रकृति निमित्तसे भी बंध होना सिद्ध नहीं होता यद्यपि प्रकृति स्वतंत्र बंधका कारण नहीं है परन्तु उपाधिसे प्रकृतिका संयोग ही बंधका हेतु है जैसा कि सूत्रकारने आगे इस सूत्रमें कहा है ॥ १८ ॥

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ॥ १९ ॥

नित्यशुद्धचेतन मुक्त स्वभावका उसके योगरहित होनेमें उसका योग नहीं है ॥ १९ ॥

उसके अर्थात् प्रकृतिके योग रहित होनेसे नित्य शुद्ध चेतन मुक्त स्वभाव पुरुषको उसका योग नहीं है अर्थात् बंधका योग नहीं है अभिप्राय यह है कि जब तक प्रकृतिका योग है तभीतक उपाधिसे पुरुषका बंध होना ज्ञात होता है यह सूत्र विशेष वर्णनके योग्य है परन्तु आगे ग्रंथमें विशेष व्याख्यान किया है इससे यहाँ विस्तार करनेकी आवश्यकता न जानकर संक्षेप ही वर्णन किया है पूर्व वर्णनसे बंधन न स्वाभाविक है न नैमित्तिक है केवल उपाधिसेहै जैसे अग्निसंयोगसे जलमें गरमी होती है इसी प्रकारसे पुरुषमें औपाधिक बंध है व दीपकी शिखाओंकी सदृश चित्तकी वृत्तियां जो दुःखकी कारण हैं उनके नाश होनेसे उनके धर्म दुःख इच्छा आदिकोंका नाश होना संभव होता है प्रकृतिके वियोगसे पुरुषके औपाधिक बंधका अभाव होजाता है व संयोगका निवृत्त होना यही मुक्तिकी प्राप्ति व बंधकी हानिका उपाय है ॥१९॥

अब जे अद्वैतवादी अविद्या मात्रसे बंध मानते हैं उनके मतके खण्डनमें वर्णन करते हैं—

नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बंधायोगात् ॥ २० ॥

अवस्तुसे बंधयोग न होनेसे अविद्यासे भी नहीं है ॥२०॥

यथा पूर्वोक्त काल आदिके सम्बन्धसे नहीं है तथा अविद्यासे पुरुषका बंध नहीं है क्योंकि अविद्या कोई वस्तु नहीं है अवस्तुसे बंध योग नहीं होसकता यथा स्वप्नमें रस्सीसे बंध होनेका प्रत्यक्ष नहीं होता तथा स्वप्नवत् अविद्यासे पुरुषका बंध नहीं है ॥ २० ॥

वस्तुत्वे सिद्धांतहानिः ॥ २१ ॥

वस्तु होनेमें सिद्धांतकी हानि है ॥ २१ ॥

जो अविद्या वस्तु होना अंगीकार किया जाय तो जो अविद्याको अपने सिद्धांतमें अद्वैतवादीने मिथ्या माना है उसकी हानि है ॥ २१ ॥

विजातीये द्वैतापत्तिश्च ॥ २२ ॥

और विजातीयमें द्वैतकी सिद्धि है ॥ २२ ॥

जो अविद्या वस्तु होना अंगीकार किया जाय परन्तु क्षण मात्रके ज्ञान सन्तान होने व भ्रमरूप होनेसे विजातीय होना माना जाय तो द्वैत होना सिद्ध होगा यह अद्वैत मतके विरुद्ध है इससे अविद्याका अज्ञान जातीय मानना भी सिद्ध नहीं होता जो यह संशय हो कि अविद्याभी ज्ञान विशेष रूप होनेस अविद्याको विद्यासे विजातीय क्यों मानना चाहिये तो विद्या ज्ञानरूप मुक्तिकी हेतु है व वासनारूप अविद्या बंधका हेतु है वासना ज्ञानसे विजातीय है इससे अविद्याका विजातीय होना सिद्ध है परंतु उक्त हेतुमे विजातीय मानना भी अद्वैत मतमें युक्त नहीं है ॥ २२ ॥

विरुद्धोभयरूपा चेत् ॥ २३ ॥

जो दोनों रूपसे मानी जाय तो विरुद्ध होताहै ॥२३॥

जो अविद्या सत् व असत् दोनों रूपसे मानी जाय तो विरुद्ध

होता है वही सत् वही असत् होना संभव नहीं है इससे दोनों रूपसे अविद्याका मानना युक्त नहीं है ॥ २३ ॥

न तादृक्पदार्थाप्रतीतेः ॥ २४ ॥

प्रतीत न होनेसे उस प्रकारका पदार्थ नहीं है ॥ २४ ॥

उस प्रकारका जैसा कहागया है कि वही सत् व असत् दोनों हों ऐसा कोई पदार्थ होना प्रतीत न होनेसे ऐसा पदार्थ नहीं माना जासकता ॥ २४ ॥

न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् २५ ॥

वैशेषिक आदिके समान हम छः पदार्थके वादी नहीं हैं

यथा वैशेषिक आदि छः पदार्थ नियत संख्यासे पदार्थको कहते हैं तथा हम नहीं कहते । संख्या नियम रहित होनेसे सत् असत्रूप अथवा सत् असत्से विरुद्ध अविद्या पदार्थ माननेमें दोष नहीं जो ऐसा कहा जावे तो इसका उत्तर यह है—॥ २५ ॥

अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहो- ऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ॥ २६ ॥

नियत न होनेमें भी युक्ति विरुद्धका संग्रह नहीं होता अन्यथा बालक व मतवाले आदिकी समानता होगी ॥ २६ ॥

नियत पदार्थ न हो तो भी वही सत् वही असत् जो युक्तिसे विरुद्ध है उसका संग्रह नहीं हो सकता और जो संग्रह किया जाय तो यथा बालक व उन्मत्त युक्त अयुक्तका ग्रहण करता है उसके संग्रहका कुछ प्रमाण नहीं है तथा यह भी माना जायगा ॥ २६ ॥

कोई नास्तिक कहते हैं बाह्य विषय क्षणिक हैं इनके वासनासे जीवको बंध है इसके उत्तरमें यह सूत्र वर्णन करते हैं—

नानादिविषयोपरागनिमित्ततोप्यस्य ॥ २७ ॥

इसको अनादि विषयवासनानिमित्तसे भी नहीं है ॥ २७॥

इसका अर्थात् इस पुरुष आत्माको जो अनादि विषयकी वासना हैं उनके निमित्तसे भी बंध होना संभव नहीं होता इसका हेतु आगे सूत्रमें वर्णन न करते हैं ॥ २७ ॥

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जक-भावोऽपि देशव्यवधानात्स्रुघ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव ॥ २८ ॥

देशके अन्तर होनेसे स्रुघ्नके रहनेवाले व पाटलिपुत्रके रहनेवालेके समान बाह्य व अन्तर दोनोंमें उपरञ्ज्य व उपरञ्जक भाव नहीं होता ॥ २८ ॥

जो देहके अंतरदेशमात्रमें आत्माका होना व बाह्यविषयोंको आत्माके संबंधका हेतु होना मानते हैं उनके मतके प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें यह हेतु वर्णन किया है कि देहके अन्तर स्थित जो आत्मा है उसको अंतरके विषयमें उपरंज्य व उपरञ्जक भाव होसकता है आन्तर व बाह्य दोनोंमें देशके अंतर होनेसे नहीं होसकता क्योंकि आत्मा देहके अंतर देशमें है इससे दोनोंका आत्माके साथ संयोग नहीं होसकता संयोगहीसे वासना अर्थात् उपराग होना देखा जाता है जैसे मँजीठ व वस्त्रके संयोग होनेसे व पुष्पके व स्फटिकके संयोग होनेसे उपराग होता है आत्मा व बाह्य विषयके साथ देशके अंतर होनेसे किसी प्रकारसे संयोग नहीं होसकता यथा स्रुघ्न (आगरा) व पाटलिपुत्र (पटना) के रहनेवालोंका संयोग नहीं होसकता । जिस पदार्थमें प्रीति वा वासना हो उसको उपरञ्ज्य व जिसको उसकी वासना प्रीति हो उसको उपरञ्जक कहते हैं जो यह कहाजाय कि यथा तुम्हारे मतमें विषय देशमें इंद्रियोंके जाने व विषय संयोग होनेसे उपराग

होता है तथा हमारे मतमें विषय देशमें (जहाँ विषय हैं वहां) आत्माके जाने व विषय संयोग होनेसे उपराग होना कहना योग्य है इसका उत्तर यह है ॥ २८ ॥

द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ॥ २९ ॥

दोनोंके एकदेशमें लब्धमें उपराग होनेसे व्यवस्था नहीं होगी

जो आत्माका विषय देशमें जाना माना जायगा तो दोनोंके अर्थात् बद्ध व मुक्त दोनोंके आत्माओंका एकही विषय देशमें लब्ध विषयमें उपराग होनेसे अर्थात् विषय उपरागके प्राप्त होनेसे बंध व मोक्षकी व्यवस्था (पृथक्ता) न रहेगी मुक्तको भी बंधकी प्राप्ति होगी ॥ २९ ॥

अब पदार्थोंको क्षणिक माननेवालोंकी शंकाको वर्णन करतेहैं-

अदृष्टवशाच्चेत् ॥ ३० ॥

अदृष्ट वशसे होवे ॥ ३० ॥

एकदेश सम्बन्ध होने व सम विषय संयोग होनेपर भी केवल अदृष्ट (संस्कार नियम) वशसे उपराग होता है यह मानाजावे तो इस शंकाका उत्तर यह है ॥ ३० ॥

न द्वयोरेककालायोगादुपकार्य्यो-पकारकभावः ॥ ३१ ॥

दोनोंमें एक कालका योग न होनेसे उपकार्य्य उपकारकभाव न होगा ॥ ३१ ॥

क्षणिक होनेसे कर्ता व भोक्ताके एककालमें न होनेसे दोनोंमें उपकार्य्य उपकारक भाव नहीं होसकता जिसका उपकार वा जो उपकारके योग्य हो वह उपकार्य्य है वह उपकार करनेवाला उपकारक है क्यों उपकार्य्य उपकारक भाव नहीं होसकता वा नहीं होगा, हेतु यह है कि कर्त्तानिष्ठ जो अदृष्ट है उससे भोक्तानिष्ठ विषय उपरागका होना संभव नहीं होता ॥ ३१ ॥ शंका—

पुत्रकर्मवदिति चेत् ॥ ३२ ॥

पुत्र कर्मके समान होवे ॥ ३२ ॥

यथा पितामें निष्ठ अर्थात् पितामें स्थित पुत्रके लिये जो कर्म है उससे पुत्रका उपकार होता है तथा व्यधिकरणके अदृष्टसे अर्थात् अन्य अधिकरणके अदृष्टसे विषय उपराग होवे यह माना जावे ॥ ३२ ॥ उत्तर-

नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियते ॥ ३३ ॥

तिसमें जो गर्भाधान आदिसे संस्कारको प्राप्त होता है ऐसा स्थिर एक आत्मा नहीं है ॥ ३३ ॥

तिसमें अर्थात् क्षणिकवादी नास्तिकके मतमें गर्भाधानसे आरम्भ करके जन्मपर्यन्त स्थिर एक आत्मा नहीं है कि जो इस जन्मके पश्चात् कालके कर्मोंके अधिकारके लिये पुत्रइष्टि करके संस्कार कियाजाय इससे पुत्रइष्टि करके भी नास्तिक क्षणिकवादीके मतमें पुत्रका उपकार होना घटित नहीं होता व दृष्टांत भी असिद्ध है ॥ ३३ ॥

स्थिरकार्य्यासिद्धेः क्षणिकत्वम् ॥ ३४ ॥

स्थिर कार्यकी सिद्धि न होनेसे क्षणिक होना ॥ ३४ ॥

स्थिर कार्यकी सिद्धि न होनेसे बंधका भी क्षणिक होना सिद्ध होता है दीपशिखाके समान नियत कारण वा अभाव कारणसे क्षणिक बंध है यह मानना चाहिये ॥ ३४ ॥ उत्तर-

न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ॥ ३५ ॥

नहीं प्रत्यभिज्ञासे बाधा होनेसे ॥ ३५ ॥

पूर्व जाने हुए पदार्थको वर्तमान कालमें जाननेसे यह वही है ऐसे ज्ञान होनेको प्रत्यभिज्ञा कहते हैं जो मैंने देखाथा उसीको मैं अब स्पर्श कर-

ताहूँ इस प्रत्यभिज्ञासे स्थिर होनेकी सिद्धि व क्षणिक होनेकी बाधा होनेसे पदार्थ क्षणिक नहीं हैं वंध घटपट आदिके तुल्य स्थिर हैं. व दीपशिखामें अनेक सूक्ष्म क्षणोंके योग होनेसे क्षणिक मानना केवल भ्रम है ॥३५॥

श्रुतिन्यायविरोधाच्च ॥ ३६ ॥

श्रुति व न्यायके विरोधसे भी ॥ ३६ ॥

श्रुति व न्यायके विरोधसे भी किसीका क्षणिक होना नहीं पाया जाता श्रुतिमें कहा है–

"सदेव सौम्येदमग्र आसीत् । तमएवेदमग्र आसीत्" ।

अर्थ–हे सौम्य (प्रियदर्शन) यह संसार आगे (सृष्टिसे पहिले) भी सत् ही थां पहिले यह तमही (तम रूपही) था अर्थात् सूक्ष्म कारण रूप व सूर्य आदिके प्रकाशसे रहित होनेसे अलक्ष्य था इत्यादि श्रुतिसे क्षणिक होना सिद्ध नहीं होता और कार्य कारणात्मक अखिल प्रपंचमें क्षणिक होना अनुमानके विरुद्ध होनेसे व असत्से सत्का होना संभव न होनेसे क्षणिक होना प्रमाणसे सिद्ध नहीं है ॥ ३६ ॥

दृष्टांतासिद्धेश्च ॥ ३७ ॥

दृष्टांतसे क्षणिक होनेकी सिद्धि न होनेसे भी ॥ ३७ ॥

प्रदीप शिखा आदिके दृष्टांतमें अनेक सूक्ष्म क्षणोंके संयोग होनेसे क्षणिक होनेकी सिद्धि न होनेसे क्षणिक होनेका अनुमान नहीं होता ३७॥

युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः ॥३८॥

एकवार ही दोके उत्पन्न होनेमें कार्यकारणभाव नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

पूर्व सत् कारणसे कार्यकी उत्पत्ति होती है. साथ ही दोनोंके उत्पन्न

होनेमें कार्य कारण भाव नहीं होसकता बिना कारणके कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती क्रमसे अर्थात् कारणसे पीछे अन्य क्षणमें कार्यकी उत्पत्ति माननेमें क्षणिक होना सिद्ध नहीं होता क्रमसे कार्यकारणभाव माननेपरभी क्षणिक वादीके मतसे कार्यका होना सिद्ध नहीं होसकता क्यों सिद्ध नहीं होसकता यह आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ३८ ॥

पूर्वापाये उत्तरायोगात् ॥ ३९ ॥

पूर्वके नाश होनेपर उत्तरका योग न होनेसे ॥ ३९ ॥

क्षणिक होनेमें पूर्व जो कारण है उसके नाश होजानेपर उत्तर जो कार्य है उसका कारणके साथ योग न होनेसे उसकी उत्पत्ति होना व कार्यकारण भाव होना संभव नहीं होता क्योंकि उपादान कारणके अनुगत होनेहीसे कार्यका अनुभव होता है ॥ ३९ ॥

तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ॥ ४० ॥

उसके भावमें उसका योग न होनेसे दोनोंके व्यभिचारसे भी नहीं होसक्ता ॥ ४० ॥

पूर्वभाव कालमें उत्तरका सम्बंध नहीं है तो दोनोंके व्यभिचारसे अर्थात् अन्वय व्यतिरेकके व्यभिचारसे भी कार्यकारण भाव नहीं होसकता। जब उपादान होताहै तब उपादेयकी उत्पत्ति होती है और जब उपादान नहीं होता तब उपादेयकी उत्पत्तिका अभाव होता है इस प्रकारसे अन्वय व्यतिरेकहीसे उपादान उपादेयके कार्यकारण भावका ग्रहण होता है क्षणिक होनेमें दोनोंके क्रमिक होनेसे व अन्वयव्यतिरेकके व्यभिचार होनेसे कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं होती ॥ ४० ॥

पूर्वभावमात्रे न नियमः ॥ ४१ ॥

पूर्वभावमात्रमें नियम नहीं है ॥ ४१ ॥

जो यह कहा जावे कि, निमित्त कारणकी तुल्य उपादान कारणका भी पूर्वभाव मात्र होनेसे कारण होना अंगीकार किया जावे इसके उत्तरमें यह सूत्र है कि, पूर्वभाव मात्र होनेसे उपादान होनेका नियम नहीं है व निमित्त कारणोंका भी पूर्वभाव मात्र होना विशेष नहीं है उसमें भी विशेष कार्यकारण भाव होनेकी आवश्यकता है ॥ ४१ ॥

कोई नास्तिक यह कहते हैं कि विज्ञानसे भिन्न वस्तु होनेके अभावसे बंध भी स्वप्नपदार्थके तुल्य विज्ञान मात्र है इससे अत्यंत मिथ्या होनेका बंधमें कोई कारण नहीं है अब इस मतका खण्डन करते हैं—

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ॥ ४२ ॥

बाह्यकी प्रतीति होनेसे विज्ञानमात्र नहीं है ॥ ४२ ॥

विज्ञान मात्रही तत्त्व नहीं है क्योंकि विज्ञानके समान बाह्य अर्थोंकी भी प्रतीति होती है ॥ ४२ ॥

बाह्य प्रतीतिहोनेका हेतु वर्णन करते हैं—

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ॥ ४३ ॥

तो उसके अभावमें उसके अभावसे शून्य होगा ॥ ४३ ॥

जो बाह्यका अभाव मानेंगे तो उसके अभाव माननेमें शून्य रहिजायगा विज्ञान भी न रहेगा क्योंकि बाह्यके अभाव होनेसे विज्ञानके अभाव होनेका प्रसङ्ग है हेतु यह कि, जब कुछ ज्ञेय होता है तब उसका विज्ञान वा ज्ञान होता है विना ज्ञेय विज्ञान नहीं कहा जासकता इससे बाह्यके अभावमें विज्ञानके अभाव होनेसे शून्यही अर्थात् कुछ न रहना सिद्ध होगा जो यह कहा जावे कि विज्ञान मात्रकी सत्यता श्रुति स्मृतिमें कही है तो श्रुति स्मृतिका अभिप्राय केवल पारमार्थिकसत्तामें विज्ञानमय

अवस्थामें बाह्यके प्रतिषेध करनेका है. व्यावहारिक सत्ता सांसारिक दशामें नहीं है ॥ ४३ ॥

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तु-धर्मत्वाद्विनाशस्य ॥ ४४ ॥

शून्यही तत्त्व है विनाशके वस्तु धर्म होनेसे भाव नाशको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

शून्य मात्र तत्त्व है क्योंकि सब भावका नाश होता है और जो विनाशी है वह स्वप्नवत् मिथ्या है इससे सब वस्तुका आदि अन्तमें अभाव मात्र होने व मध्य (वर्तमान) में क्षणिक होनेसे बंध आदि पारमार्थिक नहीं है तो किसको क्या बंधन है क्योंकि नाश ,होना वस्तुकाधर्म अर्थात् स्वभाव होनेसे स्वभाव विरुद्ध पदार्थ नहीं रहसकता इससे नाश धर्म संयुक्त होनेसे स्वप्नवत् सत् होनेका भ्रम मात्र है ॥ ४४ ॥

अपवादमात्रमबुद्धानाम् ॥ ४५ ॥

मूढोंका अपवादमात्र है ॥ ४५ ॥

शून्यका भाव होना व विनाशी होना यह मानना मूढोंका अपवाद मात्र है अर्थात् मिथ्यावाद है क्योंकि शून्यमें प्रमाण अंगीकार करनेमें प्रमाण अंगीकार करनेहीसे अभावकी हानि होगी व प्रमाण अंगीकार न करनेमें प्रमाणके अभावसे शून्यकी भी सिद्धि न होगी और नाशके कारणके अभावसे अवयव रहित द्रव्योंका नाश होना संभव न होनेसे कार्य्योंका भी विनाश सिद्ध नहीं होता इससे निरवयव शून्यके भाव अंगीकार करनेमें नाश होना व अभाव सिद्ध नहीं होता और क्षणिक विनाशहीका प्रपंच होना माना जावे तो भी बंधका विनाशही पुरुषार्थ होना, सम्भव होता है क्योंकि बंध क्लेशकी इच्छा क्षणमात्र भी कभी नहीं होती सदा बंध व क्लेश रहित होनाही अभीष्ट है ॥ ४५ ॥

उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि ॥ ४६ ॥

दोनों पक्षोंमें समानक्षेम होनेसे यह भी ॥ ४६ ॥

दोनों पक्षोंमें अर्थात् क्षणिक व ब्रह्मविज्ञानमें समान क्षेम होनेसे अभिप्राय यह है कि दोनोंमें खण्डनके हेतु एकही सम होनेसे यह भी अर्थात् विज्ञानमात्रका पक्ष भी खंडित होता है, क्षणिकपक्षके निरास (खण्डन) हेतु प्रत्याभिज्ञान सिद्ध होने आदि शून्यवादमें भी समान हैं तथा विज्ञान मात्र पक्षके निरासक हेतु बाह्यकी प्रतीति आदि शून्यवादमें समान हैं इससे दोनों पक्षोंका समान विनाश है ॥ ४६ ॥

अपुरुषार्थत्वमुभयथा ॥ ४७ ॥

दोनों प्रकारसे पुरुषार्थ न होना ॥ ४७ ॥

दोनों प्रकारसे अपनेसे व परसे शून्यताका पुरुषार्थ होना संभव नहीं होता स्थिर सुख आदिकोंका पुरुषार्थ होना संभव है बंध कारण विषयमें इस प्रकारसे क्षणिकवादी व नास्तिकमतोंको दूषित किया है अब अन्य बंधकारणोंका जिनका पूर्वही खण्डन नहीं किया उनका प्रतिषेध किया जाता है ॥ ४७ ॥

न गतिविशेषात् ॥ ४८ ॥

गतिविशेषसे नहीं है ॥ ४८ ॥

जो यह कहा जावे कि जीवके गमन आगमनकी गतिविशेषसे पुरुषका बंध है तो गतिविशेष शरीरप्रवेश आदि रूपसे पुरुषका बंध नहीं है ॥ ४८ ॥ गति न होनेका हेतु वर्णन करते हैं—

निष्क्रियस्य तदसंभवात् ॥ ४९ ॥

क्रियारहितको वह असंभव होनेसे ॥ ४९ ॥

क्रिया रहित विभु अर्थात् व्यापक व निरवयव पुरुषकी गति संभव नहीं है गति असंभव होनेसे गति विशेष कहना पुरुषमें नहीं होसकता ॥४९॥

अब यह शंका है कि श्रुति स्मृतिमें इस लोक व परलोकमें गमन व आगमन सुना जाता है इससे पुरुष परिच्छिन्न व सावयव हैं निरवयव व विभु नहीं है । उत्तर—

मूर्तत्वाद्घटादिवत्समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ॥ ५० ॥

मूर्त होनेसे घट आदिके तुल्य, समानधर्म प्राप्त होनेमें विरुद्ध सिद्धांत होगा ॥ ५० ॥

जो पुरुष परिच्छिन्न मूर्तिमान् अंगीकार किया जावे तो यथा घट आदि मूर्तिमान् अवयव संयुक्त होनेसे नाशको प्राप्त होते हैं तथा समान धर्म होनेसे पुरुषका भी नाश होगा और यह विरुद्ध सिद्धांत होगा इससे यह मानने योग्य नहीं है ॥ ५० ॥

गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ॥ ५१ ॥

उपाधिके योगसे आकाशके सदृश गति-अर्थमें श्रुति है ॥ ५१ ॥

जो श्रुति पुरुषके गतिअर्थमें है वह उसमें उपाधियोगसे गतिअर्थका वर्णन है यथा आकाश सर्वव्यापक है उसमें गतिका अभाव है। परन्तु उपाधिसे घटके भीतर जो आकाश देख पडता है घट चलानेसे यह जान पडता है कि उसके भीतर जो आकाश है वह भी घटके साथ जाता है अर्थात् चलता है अथवा घटके लानेसे घटके साथ आता है यद्यपि घटमात्र चलता है आकाश नहीं चलता आकाश व्यापक निर-वयव है सर्वत्र देख पडता है इसी प्रकारसे उपाधिवश शरीर आदि द्वारा पुरुषमें गति श्रुतिमें कहा है प्रकृति क्रियारूपा है उसमें घटकी तुल्य गतिका आरोपण होता है ॥ ५१ ॥

न कर्मणाप्यतद्धर्मत्वात् ॥ ५२ ॥

कर्मकरके भी नहीं उसका धर्म होनेसे ॥ ५२ ॥

अदृष्टकर्मसे भी पुरुषका बंध नहीं है क्योंकि उसका अर्थात् पुरुषका धर्म नहीं है जो पुरुषका धर्म नहीं है उससे पुरुषका बंध नहीं होसकता पूर्वमें विहित निषिद्ध व्यापाररूप कर्म करके बंध होनेका खण्डन किया गया है यहां अदृष्टसे होनेके भेदसे फिर वर्णन किया गया है इससे पुनरुक्त नहीं है ॥ ५२ ॥

अति प्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ॥ ५३ ॥

अन्यके धर्महोनेमें अतिप्रसक्ति होगी ॥ ५३ ॥

बंध व बंधकारण भिन्नके धर्महोनेमें अतिप्रसक्ति दोष होगा जिसमें प्रसंग न हो उसमें भी प्रसंग मानना अतिप्रसक्ति वा अतिप्रसंग दोष कहा जाता है अतिप्रसक्ति दोषसे अर्थात् अन्यके कर्मसे अन्यको विना नियम बंध होना माननेसे मुक्तका भी बंध हो जायगा यह मानने योग्य नहीं है ॥ ५३ ॥

निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ॥ ५४ ॥

और निर्गुण आदि श्रुतिका विरोध होगा ॥ ५४ ॥

बंध हेतु परीक्षाकी समाप्तिमें यह कहा है कि पूर्वोक्त हेतुसे किसी प्रकार पुरुषका बंध होना सिद्ध नहीं होता और विशेष हेतु यह है कि निर्गुण आदि श्रुतिका विरोध है पुरुष बंध औपाधिक न माननेमें श्रुतिका विरोध होता है ॥ ५४ ॥ श्रुति यह है–

"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" ॥

अर्थ–साक्षी चेतन केवल निर्गुण है इत्यादि श्रुतिके विरोधसे पुरुषमें स्वाभाविक बंध नहीं है सूत्रमें इतिशब्द बंध हेतुकी परीक्षाकी समाप्तिका सूचक है ॥

तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम् ॥ ५५ ॥

उसका योग भी अविवेकसे होनेसे समानत्व नहीं है ५५॥

जो शंका करनेवाला यह शंका करे कि, प्रकृतिपुरुषके संयोगसे जो पुरुषका बंध होता है वही स्वाभाविक माना जावे तो स्वाभाविक माननेमें जो दोष पुरुषमें स्वाभाविक बंध मानने अथवा काल आदिके निमित्तसे माननेमें मुक्तकाभी बंध होना सिद्ध होता है जैसा पूर्वही कहा गया है इसमें भी समान दोषोंकी प्राप्ति होगी इसके उत्तरमें यह सूत्र है कि उसका अर्थात् प्रकृतिका योग जो पुरुषमें है वह स्वाभाविक नहीं है अविवेके निमित्तसे है अविवेकसे होनेसे समानत्व नहीं होता अर्थात् समान दोष होना नहीं होसकता विवेक होनेसे अविवेक व बंधका नाश होताहै यह अविवेक मुक्तपुरुषोंमें नहीं होता । अब यह शंका है कि प्रकृतिपुरुषके संयोगसे पहिले न होनेसे अविवेक प्रकृतिपुरुषका भेदरहित साक्षात्कार होना नहीं है विवेकका प्रागभाव है (किसी पदार्थके उत्पन्न होने वा प्रकट होनेसे पहिले जो उसका अभाव होता है उसको प्रागभाव कहते हैं) और अविवेक होना यह बुद्धिका धर्म है पुरुषका धर्म नहीं है अन्यके धर्मसे अन्यमें संयोग होनेसे समान अतिप्रसंग दोषकी प्राप्ति है उत्तर-- दोषकी प्राप्ति नहीं है क्यों कि विषयता सम्बंधसे अविवेकपुरुषका धर्म होना माना जाता है और जब विषय सम्बंध नहीं है सम्बंधके अभावसे प्रलयमें बंधका कारण नहीं होता तथा प्रकृति बुद्धिरूप हो जिस पुरुषके लिये विवेकसे पृथक् होकर प्रकट नहीं होती उसमें अपनी वृत्ति देखनेके अर्थ (लिये) उसीकी बुद्धिरूप करके संयोगको प्राप्त होती है ऐसी व्यवस्थासे अतिप्रसंग दोषका अभाव होता है जो यह संशय हो कि धर्माधर्म कर्मबंधके कारण मानना चाहिये तो उत्तर यह है कि, अविवेकहीसे राग आदि व कर्मका सम्बंध होता है इससे अविवेकको मुख्य बंधका कारण माना है ॥ ५५ ॥

नियतकारणात्तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ॥ ५६ ॥

नियतकारणसे उसका नाश अंधकारके समान होता है ॥ ५६ ॥

यथा अंधकार केवल प्रकाशसे जो उसके नाशका नियतकारण है नष्ट होता है तथा नियतकारण विवेकसे उसका अर्थात् अविवेकका नाश होता है ॥ ५६ ॥

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ॥ ५७ ॥

प्रधानके अविवेकसे अन्यके अविवेककी प्राप्ति है व उसके नाश होनेमें नाश है ॥ ५७ ॥

पुरुषमें आदिकारण प्रधानका अविवेक है प्रधानके अविवेकसे अन्यके अविवेक अर्थात् बुद्धि आदिकोंके अविवेककी प्राप्ति होती है और प्रधानके अविवेकका नाश होनेसे अन्यके अविवेकका नाश होताहै यथा शरीरसे आत्मा भिन्न है यह ज्ञान होनेमें, शरीरके कार्य जो रूप आदिक हैं उनमें अविवेक होना संभव नहीं होता तथा प्रधानसे पुरुषके पृथक् होनेके ज्ञान होनेमें प्रधानके कार्य परिणाम आदि धर्मवाले बुद्ध्यादिकोंमें अभिमानकी उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् कारणके नाश होनेसे जैसे जिस पटमें चित्र है उस पटके त्यागसे चित्रका त्याग होजाता है इसी प्रकारसे प्रकृतिके कार्य बुद्धि आदिकोंमें अभिमानका त्याग होजाता है ॥ ५७ ॥

वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः ॥ ५८ ॥

चित्तमें स्थिति होनेसे कथनमात्र है तत्त्व नहीं है ॥ ५८ ॥

बंध आदिका स्थान चित्तहै बंध आदिकी सबके चित्तमें स्थिति होनेसे पुरुषमें बंध आदि होना तत्त्व (यथार्थ) नहीं है केवल कथनमात्र है

यथा स्फटिकका लाल होना प्रतिबिंबमात्रसे है तत्त्व नहीं है इसका विशेष वर्णन आगे ग्रंथमें किया है इससे यहां विशेष वर्णन नहीं किया ॥ ५८॥

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढव-
दपरोक्षादृते ॥ ५९ ॥

दिशाभ्रमको प्राप्तके समान मननसे भी विना साक्षा-
त्कार हुये बाधाको नहीं प्राप्त होता ॥ ५९ ॥

यद्यपि कथनमात्र पुरुषको बंध आदिक हैं तथापि विना साक्षात्कार हुये श्रवण मननमात्रसे बाधाको नहीं प्राप्त होता अर्थात् नहीं छूटता जैसे जिसको दिशा भ्रम होता है उसको यद्यपि कथन मात्र दिशाका विपरीत होना होवे तत्त्वमें न होवे तथापि विना साक्षात्कार हुये श्रवण व युक्तिसे भ्रम नहीं छूटता ॥ ५९ ॥

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादि-
भिरिव वह्नेः ॥ ६० ॥

अप्रत्यक्षपदार्थोंका अनुमानसे बोध होता है यथा
धूम आदिसे अग्निका होता है ॥ ६० ॥

जो यह शंका हो कि, स्थूल पदार्थ तो नेत्रसे देखनेसे प्रत्यक्षसे ज्ञात होता है सूक्ष्मपुरुष प्रधान आदिका बोध किस प्रकारसे होता है इसके उत्तरमें यह कहा है कि जो अचाक्षुष हैं अर्थात् चक्षुसे दृश्य नहीं हैं अप्रत्यक्ष हैं उनका बोध अनुमान करके वा अनुमानसे होता है यथा धूमसे अग्निका बोध होता है अब अप्रत्यक्ष पदार्थ जो कारणरूप हैं व अनुमानसे जाननेके योग्य हैं उनके कार्यरूप पदार्थोंको वर्णन करते हैं ॥ ६० ॥

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्महतोऽहंकारोऽहंकारात्पंच-तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः ॥ ६१ ॥

सत्त्वरजतम गुणोंकी सम होनेकी जो अवस्था है वह प्रकृति है प्रकृतिसे महत्तत्त्व होताहै महत्तत्त्वसे अहंकार अहंकारसे उसके पांच मात्रा व दोप्रकारकी इन्द्रियां उसके मात्रोंसे पांच स्थूलभूत व पुरुष यह पचीस गण हैं ॥ ६१ ॥

सत्व, रज, तम गुणोंकी सम होनेकी जो अवस्था है वह प्रकृति है प्रकृति कारणसे महत्तत्त्वकार्य होता है तथा महत्तत्त्वसे अहंकार अहंकारसे पांच उसके मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध व दो प्रकारकी इन्द्रियां दश बाह्य इन्द्रिय व ग्यारहवां अन्तरइन्द्रिय मन दश बाह्य इन्द्रियमें पांच ज्ञान इन्द्रिय कर्ण, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका व पांच कर्म इन्द्रिय हस्त, पाद, पायु, गुदा, उपस्थ, (लिंग वा योनि) वाक् पांच उसके मात्रा कारणोंसे पांच स्थूलभूत, आकाश, वायु, तेज, जल व पृथिवी कार्य होते हैं चौबीस यह व पुरुष यह पचीस गण हैं अर्थात् यह पचीस पदार्थ हैं, गुण कर्म सामान्य सब इनहींके अन्तर्गत हैं ॥ ६१ ॥

स्थूलात्पंचतन्मात्रस्य ॥ ६२ ॥

स्थूलसे पांच उसके मात्रका ॥ ६२ ॥

आकाश, वायु, जल, तेज, पृथिवीकी स्थूलभुत संज्ञा है इन पांच स्थूलभूतकार्यसे उसके अर्थात् अहंकारके पांच मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप,

रस, गंध कारणरूपोंका अनुमान होता है यह सूत्रका भावार्थ है विभाग इनका यह है कि, आकाशसे शब्दका, वायुसे स्पर्शका, तेजसे रूपका, जलसे रसका, पृथिवीसे गंधका, अनुमान होताहै । आकाशसे शब्दका अनुमान इससे होता है कि, जिस स्थूलद्रव्यमें आकाश अधिक होता है उसमें शब्द अधिक होता है जिसमें न्यून है उसमें न्यून होता है यथा ढोलमें आकाश होनेके कारणसे शब्द होताहै और वही ढोलके भीतरके आकाशमें मृत्तिका आदि भर देनेसे वैसा शब्द नहीं होता जो कुछ शब्द होता है उसका कारण यह है कि सर्वथा आकाश रहित कोई स्थूल पदार्थ नहीं होसकता जो आकाश न होवे तो धातु काष्ठ आदिमें कील आदि गड न सकें न जिसमें कील प्रवेश करनेमें कील प्रवेश करताहै उसके परमाणु दब सकें कि जिससे कीलके प्रवेश करनेको आकाश मिले वायुसे स्पर्शके अनुमान होनेका हेतु यह है कि आकाशमें स्पर्श शून्य होनेसे स्पर्शका बोध नहीं होता सबसे सूक्ष्म जिसमें प्रथम स्पर्शका बोध होता है वह वायुहै स्पर्शका आदिकार्य वायुहै इससे वायु स्पर्शके अनुमान-का हेतुहै और जो जिससे स्थूलहै उसमें उससे जो सूक्ष्मभूतहै उसका गुण मिलारहता है यथा वायु आकाशसे स्थूल है इसमें आकाश जो इससे सूक्ष्म है उसका गुण शब्द मिलारहता है अर्थात् वायुमें स्पर्श विशेष गुण है परन्तु आकाशसे भिन्न वायुके न होनेसे शब्द भी वायुमें होता है तेजसे रूपका अनुमान इससे होता है कि, विना तेज रूपका बोध-नहीं होता अर्थात् शब्द स्पर्श रस गंध आकाश आदिक गुणोंसे रूपका बोध नहीं होता तेजहीसे रूपका प्रत्यक्ष होता है जलसे रस अर्थात् स्वादुके अनुमान होनेका हेतु यह है कि आकाश वायु तेजमें स्वादु नहीं है यह प्रत्यक्षसे सिद्ध है जलमें मीठा खारा स्वादु होनेका बोध होताहै और मीठे खट्टे आदि जे फल हैं वह जबतक आर्द्र अर्थात् ओदे रहते हैं तब तक स्वादु अच्छा रहता है जब सूखजाते हैं तब वैसा स्वादु नहीं रहता जो यह कहाजावे कि, पृथिवीमें स्वादु गुण है और बहुत फलोंमें सूखनेमें भी स्वादु रहता है तो सूखे व वेसूखेमें सब

फल व अन्य स्वादिष्ठ पदार्थोंमें तुल्य स्वादु होना चाहिये क्योंकि सूखे व न सूखेमें जलकी न्यूनता व अधिकता होती है पृथिवीकी नहीं होती इसमें जलकी विशेषता है परन्तु पृथिवीमें भी स्वादु गुण है क्योंकि यह प्रथमही कहा गया है कि, जो अधिकस्थूल है वह अपनेसे जो सूक्ष्म भूत है उसके गुण संयुक्त होता है इसीसे वायुमें शब्द स्पर्श कहा गया है तेजमें शब्द स्पर्श रूप तीन हैं जलमें शब्द स्पर्श रूप रस चार हैं व पृथिवीमें शब्द स्पर्श रूप रस गंध पांच हैं गंध पृथिवीका विशेष गुण है वायु, तेज, जलमें गंध स्वाभाविक होना सिद्ध नहीं होता वायु तेज जलमें जो गंधका बोध होता है वह पुष्प वा अन्य गंधवान् पदार्थके संयोगसे होता है इससे पृथिवी स्थूल कार्यसे सूक्ष्म कारण रूप गंधका अनुमान होता है जो यह शंका हो कि, जो पृथिवीमें गंध है तो पृथिवीके कार्यरूप पत्थरमें क्यों गंधका बोध नहीं होता तो उत्तर यह है कि स्थूल कठिन व दृष्ट होनेसे वायुके द्वारा उसके अणु नासिकाके अंतर्गत नहीं होते न वायुमें उड सकते हैं उसके अतिचूर्ण करने वा भस्म करनेसे वायु द्वारा उडके उसके अणु नासिकामें अंतर्गत होनेसे गंधका बोध होता है इससे दूषण नहीं होसकता ॥ ६२ ॥

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहङ्कारस्य ॥६३॥

बाह्य व अंतरोंसे व उनसे अहंकारका ॥ ६३ ॥

कार्यरूप बाह्य व अन्तरके इन्द्रियोंसे अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा व उनसे अर्थात् उक्त पांच मात्रोंके द्वारा इनके कारण अहंकारका अनुमान होता है अर्थात् अहंकार अभिमानवृत्तिके अंतःकरण द्रव्य है जिससे मैं स्पर्श करता हूँ देखता हूं मेरे नेत्र मेरा शरीर इत्यादि यह बोध होता है इन्द्रियों व मात्रोंसे कर्ताको मैं ऐसा कर्ता हूं यह व यह मेरा है यह बोध होता है इससे इन्द्रिय व मात्रोंके द्वारा अहंकारका अनुमान होता है ॥ ६३ ॥

तेनान्तःकरणस्य ॥ ६४ ॥

उससे अंतःकरणका ॥ ६४ ॥

उससे अर्थात् उक्त अहंकार कार्यसे अथवा अहंकार कार्यके द्वारा मुख्य अंतःकरणका अर्थात् महत्तत्त्व नामक बुद्धिका अनुमान होता है बिना बुद्धि अहंकारका होना संभव नहीं होता क्योंकि निश्चय बुद्धिकी वृत्ति है व अभिमान अहंकारकी वृत्ति है और अहंकार निश्चय वृत्ति पूर्वक होता है लोकमें प्रथम स्वरूप निश्चय करके पश्चात् अभिमान होता है कि, यह मैंहूं हम करके यह करनेके योग्य है यह सिद्ध है अहंकार द्रव्यके कारणकी आकांक्षामें अभिमान व निश्चय वृत्तियोंके कार्य कारण भाव होनेसे उनके आश्रयोंका भी अर्थात् अहंकार व बुद्धिका भी कार्य-कारण भाव कल्पना किया जाता है क्योंकि कारण वृत्तिके लाभके साथ ही कार्य वृत्ति लाभ होनेका सम्बंध है अर्थात् कारण वृत्तिकी रहित कार्य उपलब्धि नहीं होती यद्यपि अंतःकरण एकही है परन्तु वृत्तिभेदसे भिन्न नामभेदसे कहा जाता है चिन्ता वृत्तिक चित्त व अहंकार दोनों द्धिके अंतर्भाव हैं ॥ ६४ ॥

ततः प्रकृतेः ॥ ६५ ॥

उससे प्रकृतिका ॥ ६५ ॥

उससे अर्थात् महत्तत्त्व कार्यसे अनुमान द्वारा कारण प्रकृतिका बोध होता है क्योंकि सामान्य अंतःकरणका भी एकसमयमें पंच इन्द्रियोंका ज्ञान उत्पन्न न होनेसे देह आदिकी तुल्य मध्यम परिमाण व नाश धर्म संयुक्त कार्य होना सिद्ध होता है सुख दुःख मोह धर्मिणी बुद्धि है कार्यरूप बुद्धिका विनाकारण उत्पन्न होना संभव नहीं होता क्योंकि कारण रहित कार्य नहीं होता व कारण गुणके अनुसार कार्य गुण होना उचितहै इससे सुख दुःख मोह धर्मक करण जो प्रकृति शब्दसे वाच्य है उससे महत्तत्त्व नामक बुद्धिकार्यके उत्पन्न होनेका अनु-

मान होता है और बुद्धि कार्यरूप बोधगत होनेसे, उससे उसके कारण प्रकृतिका अनुमान होता है यह भाव है, प्रकृतिका विशेष वर्णन आगे किया जायगा ॥ ६५ ॥

संहतपरार्थत्वात्पुरुषस्य ॥ ६६ ॥

आरंभक संयोग परके अर्थ होनेसे पुरुषका ॥ ६६ ॥

आरंभक संयोग अवयव अवयवी भेद न होनेसे साधारण प्रकृतिका कार्य है प्रकृति व प्रकृतिकार्य्योंका परके अर्थ होनेके अनुमानसे पुरुषका बोध होता है प्रकृति महत्तत्त्व आदिका अपनेसे भिन्न शय्या आसन आदिकी तुल्य परके भोग अपवर्ग फल देनेवाले संहत अर्थात् आरंभक संयोग करनेसे अनुमान करके प्रकृतिसे पर आरंभक संयोग रहित पुरुष सिद्ध होता है पुरुषका भी संहत होना माननेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी पुरुषके माननेहीकी क्या आवश्यकता है जो यही माना जावे कि प्रकृति आदि अपने सुख आदि भोगके अर्थ संहत किया है तो उसके साक्षात् अपने जानने योग्य पदार्थमें कर्मकर्ताका विरोध होगा क्योंकि प्रकृति स्वयं ज्ञानरूप नहीं है पुरुषके योगसे प्रकृतिम बुद्धि उत्पन्न होती है विना स्वयंप्रकाशमान व ज्ञान धर्मवान् होनेके मैं सुखी हूं यह सुखज्ञान होना संभव नहीं होता स्वयं यह बोध करनेवाला जो है वह पुरुष है इसका विशेष भेद आगे वर्णन किया जायगा अब प्रथम प्रकृतिके नित्य होने व सबके कारण होनेके विषयमें वर्णन किया जाता है ॥ ६६ ॥

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ ६७ ॥

मूलमें मूलके अभावसे मूल रहित मूल है ॥ ६७ ॥

पुरुषको छोडके प्रकृति सहित चौवीस तत्त्व हैं प्रकृतिसे इतर जे २३ तेईस तत्त्व हैं उन सबका मूल प्रधान है अर्थात् प्रकृति है प्रधानका मूल कुछ नहीं है इससे मूल प्रधानमें मूलका अभाव है अभाव होनेसे

मूल रहित मूल है अर्थात् प्रधान मूलरहित है जो प्रधानका भी मूल माना जाय तो इसी प्रकारसे एक एकका मूल माननेसे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी जो यह कहा जाय कि प्रकृति मूल कारण नहीं है अविद्या संसारका मूल कारण है तो इसका उत्तर यह है ॥ ६७ ॥

पारम्पर्य्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ॥ ६८ ॥

परम्परा होनेमें एकमें परिनिष्ठा होगी प्रकृति यह संज्ञामात्र है ॥ ६८ ॥

अविद्या द्वारा परम्परा करके पुरुषके जगत्के मूल कारण होनेमें भी पुरुषके परिणामी न होनेसे अविद्यामें अथवा किसीएक नित्य जगत् कारणमें परम्पराकी परिनिष्ठा अर्थात् पर्य्यवसान होगा जिसमें पर्य्यवसान (सबका अंत) होगा वही नित्य प्रकृति है अर्थात् मूल कारणकी प्रकृति संज्ञा है इससे प्रकृति शब्द यह संज्ञा मात्र है ॥ ६८ ॥

समानः प्रकृतेर्द्वयोः ॥ ६९ ॥

प्रकृतिके विचारमें दोनोंका समान पक्ष है ॥ ६९ ॥

विचारमें व पक्ष ये शब्द सूत्रके अर्थमें सूत्रके शब्दसे भाषामें अधिक कहे गये हैं व अधिक कहनेका हेतु यह है कि, सूत्रके शब्दोंमात्रका भाषामें अनुवाद करनेसे सूत्रका भाव व्यक्त न होता प्रकृतिके विचारमें अर्थात् प्रकृतिके मूल कारण होनेके विचार करनेमें दोनोंका अर्थात् वादी व प्रतिवादी दोनोंका समान पक्ष है जब जिसमें परम्पराका पर्य्यवसान होवे वही प्रकृति है यह कहा गया तो अविद्याके मूल कारण माननेमें भी पक्ष भेद नहीं रहता पक्ष भेद न रहनेसे दोनोंका समान पक्ष है जो यह कहा जाय कि अविद्या पचीस गणोंमें नहीं कहा इससे पचीससे अधिक तत्त्व मानना चाहिये तो अविद्या मिथ्याज्ञानरूप

बुद्धि धर्म है व बुद्धि प्रकृतिका कार्य है इससे अविद्या प्रकृति व बुद्धिके अंतर्गत है अथवा ज्ञानका अभाव मात्र है इससे अधिक तत्त्व नहीं है (प्रश्न) कहीं प्रकृतिका भी पुरुषसे उत्पन्न होना सुना जाता है इससे प्रकृति मूल कारण नहीं है (उत्तर) प्रकृतिका पुरुष संयोगसे जगत् उत्पत्तिमें समर्थ होना रूप प्रगट होना गौण उत्पत्ति वर्णन करनेसे प्रयोजन है संयोग लक्षणरूप उत्पत्तिको, कहा है ॥ ६९ ॥ जो प्रकृति पुरुष अनुमानसे जाने जाते हैं तो सबहीको क्यों विवेक मननसे उत्पन्न नहीं होता. उत्तर—

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ॥ ७० ॥

अधिकारीके त्रिविध होनेसे नियम नहीं है ॥ ७० ॥

मन्द, मध्यम, उत्तम तीन प्रकारके अधिकारी होते हैं अधिकारियोंके त्रिविध होनेसे सबको मनन करनेका नियम नहीं है क्योंकि मन्द जो कुतर्क युक्तिसे अनुमान करता है वह ग्रहण योग्य नहीं होता मध्यम भी सत् पक्षका यथार्थ ग्रहण नहीं करसकता इससे केवल उत्तम अधिकारियोंको इस प्रकारका मनन होता है. यह भाव है प्रकृतिका स्वरूप गुणोंका सम भाव होना पूर्वही वर्णन किया गया है व सूक्ष्म भूतआदिक प्रसिद्ध हैं अब रहे महत्तत्त्व अहंकार इन दोनोंका स्वरूप वर्णन करते हैं ॥ ७० ॥

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः ॥ ७१ ॥

महत्तत्त्व नामसे जो आदि कार्य है वह मन है ॥ ७१ ॥

प्रकृतिका आदि कार्य अर्थात् प्रथम कार्य महत्तत्त्व है महत्तत्त्व मनन वृत्ति युक्त मन है मननका यहाँ निश्चय अर्थ है, निश्चय करनेवाली बुद्धि वृत्ति मन है यह अर्थ है ॥ ७१ ॥

चरमोऽहङ्कारः ॥ ७२ ॥

उसके पश्चात् अहङ्कार है ॥ ७२ ॥

उसके अर्थात् मनके पश्चात् अभिमान वृत्ति संयुक्त जो कार्य है वह अहंकार है ॥ ७२ ॥

तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ॥ ७३ ॥

उसका कार्य होना उत्तर वालोंका ॥ ७३ ॥

उत्तरवाले जो अहंकारके पश्चात् पांच मात्रा आदि कहे गये हैं उन सबोंका उसका अर्थात् अहंकारका कार्य होना सिद्ध होता है अर्थात् सब अहंकारके कार्य हैं ॥ ७३ ॥

आदिहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ॥ ७४ ॥

आद्यकी हेतुता उसके द्वारा परम्परा भावमें भी अणुके तुल्य है ॥ ७४ ॥

जो आदिमें सबके प्रथम होवे वह आद्य है वह आद्य प्रकृति है परम्परा भावमें भी अर्थात् साक्षात् हेतु न होनेमेंभी आद्य प्रकृतिकी हेतुता अहंकार अनादिमें महत्तत्त्वके द्वारा है यथा वैशेषिक मतमें अणु समूहकी घटआदि हेतुता द्व्यणुकआदिके द्वाराही होती है ॥ ७४ ॥ प्रश्न—जब प्रकृति पुरुष दोनों नित्य हैं तब केवल प्रकृतिके कारण होनेमें क्या हेतु है ? उत्तर—

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ॥ ७५ ॥

दोनोंके पूर्वमें होनेमें एकके हान होनेमें अन्यका योग है ॥ ७५ ॥

पुरुष व प्रकृति दोनोंके सम्पूर्ण कार्यके पूर्व होनेमेंभी एकके कारण होनेके हान (अभाव) होनेसे अर्थात् पुरुषके परिणामी न होनेसे

(रूपान्तरको न प्राप्त होने सदा एक रूप रहनेसे) कारण होनेके अभाव होनेसे अन्य जो प्रकृति है उसका कारण होनेमें योग है अर्थात् प्रकृति हीका कारण होना मानना उचित है प्रकृतिका स्वामी होनेसे पुरुष सृष्टिका कारण होना कहा जाता है यथा योद्धा रणमें लडकर जय पराजयको प्राप्त होते हैं राजा युद्ध करे वा न करे उनके स्वामी राजाका जय व पराजय कहा जाता है प्रकृतिके फल सुख दुःखका भोग करनेवाला पुरुष है इससे प्रकृतिका स्वामी कहा जाता है पुरुषके परिणामी न होनेका हेतु यह है कि, जो पुरुषका परिणामित्व होता तो यथा चक्षु मन आदि विकार व बंधमें प्राप्त हो कभी विद्यमान रूपआदि विषयको ग्रहण नहीं करते अथवा यथार्थभावसे ग्रहण नहीं करते इसी प्रकारसे कभी विद्यमान सुख दुःख आदिको पुरुष न जानता व मैं सुखी हूं अथवा नहीं हूं ऐसा संशय होता परन्तु ऐसा नहीं होता इससे सदा ज्ञान प्रकाशरूप पुरुषका परिणामी न होना सिद्ध होता है जो परिणाम रहित है वह उपादान कारण नहीं होसक्ता इससे प्रकृतिहीका सृष्टिका उपादान कारण होना सिद्ध होता है ॥ ७५ ॥

परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ॥ ७६ ॥

सबका उपादान परिच्छिन्न नहीं है ॥ ७६ ॥

जो व्यापक न हो किसी देशविशेषमें हो मूर्तिमान् हो उसको परिच्छिन्न कहते हैं सब तत्त्वोंका उपादान कारण जो प्रकृति है वह परिच्छिन्न नहीं है अर्थात् व्यापक है यह भाव है । शंका—प्रकृतिका व्यापक होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि प्रकृति त्रिगुणसे भिन्न नहीं है सत्त्वगुण आदिमें लघु होना गुरु होना चलना यह धर्म हैं इनका वर्णन आगे किया जायगा यह धर्म विभु होने अर्थात् व्यापक होनेमें न हो सकेंगे और सृष्टि आदिके हेतु संयोग विभाग न होंगे. उत्तर—यथा प्राणव्यक्तियोंके सब देहोंमें सम्बन्ध होनेसे सामान्यसे प्राणका स्थावर जंगम अखिल शरीरमें व्यापक होना कहा जाता है तथा प्रकृ,

तिका व्यापक होना कहा जाता है जो किसी देशमें हो सब देशमें न हो उसको परिच्छिन्न व जो सर्वत्र हो उसको व्यापक कहते हैं प्रकृति सर्वत्र है किसी एक देश मात्रमें नहीं है इससे प्रकृति व्यापक कहीगई है जैसे शरीर देशमें सर्वत्र प्राण सम्बंध होनेसे प्राण सब शरीरमें व्यापक कहा जाता है प्रकृतिके क्रिया व संयोग वियोग आदिके साधर्म्य वैषम्य विषयमें आगे वर्णन किया जायगा ॥ ७६ ॥

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ॥ ७७ ॥

उनकी उत्पत्तिप्रतिपादक श्रुति होनेसेभी ॥ ७७ ॥

उनकी अर्थात् पीरिच्छिन्नोंकी उत्पत्ति प्रतिपादक श्रुति होनेसेभी प्रकृतिका परिच्छिन्न होना सिद्ध नहीं होता श्रुतिमें कहा है " यदल्पं तन्मर्त्यम्" इत्यादि॰ अर्थ-जो अल्प है वह मरनेयोग्य वा मरनेवाला है मरण धर्मके होनेसे परिच्छिन्न वा अल्पकी उत्पत्ति सिद्ध होती है ॥ ७७ ॥

जो यह शंका हो कि प्रकृतिके माननेकी क्या आवश्यकता है विना प्रकृति कारणके सृष्टिका होना मानना चाहिये इसके उत्तरमें यह कहा है-

नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः ॥ ७८ ॥

अवस्तुसे वस्तुकी सिद्धि नहीं होती ॥ ७८ ॥

अवस्तुसे वस्तुकी सिद्धि नहीं होती। अर्थात् अभावसे भावकी सिद्धि नहीं होती॰ अभिप्राय यह है कि जो यह कहै कि कुछ नहीं था अभावसे संसार उत्पन्न हुवा तो यह कहना यथार्थ नहीं जैसे आकाशके फूलोंसे हार बनना संभव नहीं है इसी प्रकारसे अभावसे सृष्टिका होना संभव नहीं है जो यह कहा जावे कि, स्वप्नके तुल्य जगत् अवस्तु है। अर्थात् कुछ वस्तु नहा है मिथ्या है इसके उत्तरमें यह सूत्र है ॥ ७८ ॥

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ॥ ७९ ॥

बाधा न होनेसे व दुष्टकारणसे उत्पन्न न होनेसे अवस्तुका होना सिद्ध नहीं होता ॥ ७९ ॥

वस्तुके होनेमें किसी प्रमाणसे बाधा न होनेसे व दुष्टकारणसे वस्तु होनेका बोध उत्पन्न न होनेसे अर्थात् जैसे दुष्ट इन्द्रिय जो विकारसंयुक्त है उससे शुक्ल शंखमें पीत होनेका बोध उत्पन्न होता है इस प्रकारसे दुष्ट कारणसे जगत्के होनेका बोध न होनेसे किन्तु यथार्थ प्रमाण व अनुमानसे सिद्ध होनेसे अवस्तु होनेका प्रमाण नहीं होता ॥ ७९ ॥

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात्कुतस्तरां तत्सिद्धिः ॥ ८० ॥

भावमें उसके योगसे उसकी सिद्धि है अभावमें उसके अभावसे कहांसे उसकी सिद्धि है ॥ ८० ॥

भावमें अर्थात् कारणके सत् होनेमें उसके सत्ताके योगसे उसकी सिद्धि है अर्थात् कार्यकी सिद्धि होती है कारणके अभावमें कारणके अभाव होनेसे कार्यका भी अभाव होता है विना कारण कहाँसे उसकी अर्थात् काय रूप जगत्की सिद्धि होती है अर्थात् कहीसे वा किसी प्रकारसे नहीं होसकती ॥ ८० ॥

न कर्मणा उपादानत्वायोगात् ॥ ८१ ॥

कर्मसे नहीं उपादान होनेके योग न होनेसे ॥ ८१ ॥

जो यह कहा जावे कि प्रधानके कल्पना करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है कर्म जगत्की उत्पत्तिका कारण है इसके उत्तरमें यह सूत्र है

कि कर्मसे भी वस्तु होनेकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि कर्म निमित्तकारण है मूल कारण अर्थात् उपादान कारण होना कर्मका सिद्ध नहीं होता गुणोंका द्रव्यके उपादान होनेमें योग नहीं है द्रव्यके उपादान होनेमें कर्मका योग न होनेसे कर्मसे वस्तुकी सिद्धि नहीं होसकती। पुरुषका परिणामी न होना व प्रकृतिका परिणामी होना वर्णन। करके अब पुरुषार्थ विषयम वर्णन करते हैं ॥ ८१ ॥

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ ८२ ॥

वैदिककर्मसेभी उसकी सिद्धि नहीं है साध्यकर्म होनेपर भी फिर आवृत्तिके योगसे पुरुषार्थ होना नहीं है ॥ ८२ ॥

लौकिक कर्मसे पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता व वैदिक (वेदविहित) जो यज्ञ आदि कर्म हैं उनसे भी उसकी अर्थात् पूर्वोक्त पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं है क्योंकि वैदिक कर्म जो साध्य हैं उनके करनेपर भी फिर आवृत्ति अर्थात् फिर प्रवृत्ति व दुःख सम्बंध होता है इससे उक्त अत्यन्त पुरुषार्थका अभाव है कर्मफलके अनित्य होनेमें यह श्रुति है" तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" इति ।

अर्थ-यथा इस संसारमें कर्मसे संचित धन धान्य आदि पदार्थ क्षयको प्राप्त होते हैं तथा परलोकमें पुण्य यज्ञ आदि कर्म करके संचित व प्राप्त हुये सुख भोग लोक भी क्षयको प्राप्त होते हैं इससे यज्ञ आदि-कर्मोंसे भी अत्यन्तपुरुषाथ (मोक्ष) की प्राप्त नहीं है ॥ ८२ ॥

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ॥ ८३ ॥

तिसमें विवेक प्राप्त होनेके लिये अनावृत्तिप्रतिपादक श्रुति है ॥ ८३ ॥

तिसमें अर्थात् वैदिक कर्ममें जो अनावृत्तिप्रतिपादक श्रुति है अर्थात् फिर न पतित होनेके अर्थमें है वह केवल प्राप्तविवेकके लिये है अर्थात् जिसको विवेक प्राप्त हुआ है उसीके लिये वह श्रुति है इसका विशेष वर्णन छठवें अध्यायमें किया जायगा ॥ ८३ ॥

दुःखाद्दुःखं जलाभिषेकवन्न जाड्य-विमोकः ॥ ८४ ॥

दुःखसे दुःख होता है जल अभिषेकके तुल्य जाड्य विमोक नहीं होता ॥ ८४ ॥

जाड्य विमोक शब्दका अर्थ जाडेसे जो दुःख होता है उसका छूटना अथवा उससे छूटना है दुःखसे दुःख कहनेका अभिप्राय यह है कि सांसारिक वैषयिक कर्मसे वा वैदिक यज्ञ आदिकर्मसे जिसका दुःखात्मक व अनित्य विषय भोगफल है व अंतमें दुःख परिणाम है इन दुःखरूप कर्मोंसे दुःखही होता है विना विवेक दुःख दूर नहीं होता जैसे जल सींचनेसे जाडेसे जो दुःखित है उसको दुःखही होता है, जाडेका दुःख उसका निवृत्त नहीं होता ॥ ८४ ॥

काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ॥ ८५ ॥

काम्य अकाम्यमें भी साधन योग्यकर्म होनेके विशेष न होनेसे अर्थात् एकही समान होनेसे ॥ ८५ ॥

जो कर्म काम्यनाम कर्तव्य है व जो कर्तव्य नहीं है सबके दुःखरूप होनेसे दुःखही होता है. क्यों दुःख होता है ? जो साधन योग्य है उसके विशेष न होनेसे जैसा इस श्रुतिमें कहा है "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः" अर्थ—न कर्मसे न प्रजासे न धनसे मोक्षको प्राप्त हुये त्याग करके वा त्यागसे कोई एक मोक्षको प्राप्त हुयेहैं अभिप्राय यह है कि, कर्म प्रजा धनसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं है त्याग करके

अर्थात् अभिमान त्याग करके कोई मोक्षको प्राप्त हुये हैं, अभिमान त्याग करनेसे भी सब मोक्षको नहीं प्राप्त हुये विशेष जो तत्त्वज्ञान है उस दुर्लभ तत्त्वज्ञानको प्राप्त करके तत्त्वज्ञानसे जे अभिमानको त्याग किये हैं वेही मोक्षको प्राप्त हुये हैं अन्य नहीं प्राप्त हुये ॥ ८५ ॥

निजमुक्तस्य बंधध्वंसमात्रं परं न समानत्वम् ॥ ८६ ॥

निजमुक्तका बंधकी निवृत्तिमात्र है पर अर्थात् अत्यंत विवेक फलका समान होना नहीं है ॥ ८६ ॥

निजमुक्त अर्थात् स्वभावसे मुक्त जो पुरुष है उसके अविद्याकारणके नाश होनेसे जैसा पूर्वमें वर्णन किया गया है बंधकी निवृत्ति मात्र है व परम आत्यन्तिक विवेकज्ञानके फलका, जो मोक्ष नित्य अत्यंत सुखरूप सब दुःखकी निवृत्ति है व कर्मफलका जो अनित्य व दुःखपरिणाम रूप है दोनोंका समान होना संभव नहीं है केवल विवेकही साक्षात् ज्ञानका उपाय है व ज्ञानके उपयोगी प्रमाण है ॥ ८६ ॥ अब प्रमाणपरीक्षाका वर्णन किया जाता है—

द्वयोरेकतरस्य वाप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा तत्साधकतमं यत्त्रिविधं प्रमाणम् ॥ ८७ ॥

जो अर्थ बोधगत नहीं हुवा उसका निश्चय करना चाहे यह निश्चय करनेकी वृत्ति दोनों अर्थात् बुद्धि

---

१ असन्निकृष्टार्थशब्दका अर्थ बोधगत नहीं हुआ व परिच्छित्तिशब्दका अर्थ निश्चय इस सूत्रअनुवादमें समझना चाहिये ।

व पुरुषका धर्म होवे अथवा एकहीका हो वह प्रमा है उस प्रमाका जो अतिसाधक कारण है वह प्रमाणं तीन प्रकारका है ॥ ८७ ॥

इस प्रमाणके लक्षणमें स्मृतिसे व्यावर्तन (पृथक् करने या दूर करनेके लिये बोधगत नहीं हुवा यह शब्दरक्खा है भ्रम व्यावर्तनके लिये अर्थ शब्द रक्खा है अर्थशब्दसे यथार्थवस्तु होनेसे अभिप्राय है संशय व्यावर्तनकेलिये निश्चय करना यह शब्द रक्खा है और दोनों अथवा एकका धर्म इस अभिप्रायसे कहा है कि, पुरुष व बुद्धि दोनोंका धर्म माने चाहे एकहीका धर्म माने किसी प्रकारसे लक्षण असत् न होवे अर्थात् लक्षणमें दोषकी प्राप्ति न होवे ॥ ८७ ॥ तीन प्रकारका प्रमाण होना जो कहा है प्रत्येक तीनोंके पृथक् पृथक् लक्षण आगे सूत्रोंमें वर्णन किया है तीनही प्रमाण क्यों कहा है तीनसे अधिक प्रमाण सुने जाते हैं इसका समाधान आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं

तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ॥ ८८ ॥

उनकी सिद्धि होनेमें सबकी सिद्धि होनेसे अधिककी सिद्धि नहीं है ॥ ८८॥

उसके अर्थात् तीन प्रमाणके सिद्ध होनेसे सब अर्थकी सिद्धि होनेसे अधिक प्रमाण होनेकी सिद्धि नहीं है. अभिप्राय यह है कि, तीनसे अधिक प्रमाण नहीं है क्योंकि अनुपलब्धि आदि प्रत्यक्षके अंतर्गत व उपमानें अनुमानके अंतर्गत ऐतिह्य शब्दके अंतर्गत समझे जाते हैं ॥८८

यत्सम्बद्धं सत्तदाकारोल्लेखिविज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ॥ ८९ ॥

जो इन्द्रियके साथ सत्सम्बंधको प्राप्त वस्तु है उसके

तदाकार अर्थात् भ्रमविकार रहित तत्स्वरूप धारण करनेवाला जो ज्ञान वा बुद्धिवृत्ति है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ ८९ ॥

इस प्रत्यक्षके लक्षणके अनुसार जिस वस्तुका इन्द्रियके साथ सम्बंध होता है उसका ज्ञान होसकता है जिसका इन्द्रियके साथ सम्बंध नहीं होत उसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होसकता लोकमें इन्द्रियसम्बंधः रहित पदार्थका ज्ञान न होना यथार्थरूपसे सिद्ध है इससे साधारण लौकिक जनोंके निमित्त यह लक्षण सत्य है परन्तु योगीजनोंको जो वस्तु व्यवधानको प्राप्त है अर्थात् किसी पदार्थके आडमें है अदृष्ट है जिसका इन्द्रियके साथ सम्बंध नहीं होता वह पदार्थ व भूत भविष्यत् कालमें होगये व होनहार जो पदार्थ हैं उन सबका प्रत्यक्ष होता है योगियोंके प्रत्यक्षमें यह लक्षण घटित न होनेसे अव्याप्तिदोष संयुक्त होनां विदित होता है इस आशंका निवारणके अर्थ यह वर्णन किया है ॥ ८९ ॥

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ॥ ९० ॥

योगियोंके अबाह्य प्रत्यक्ष करनेवाले होनेसे दोष नहीं है ॥ ९० ॥

अभिप्राय इसका यह है कि, यह लक्षण ऐन्द्रियक ज्ञानके अर्थ है अर्थात् जो इन्द्रियसम्बंधी वा इन्द्रियजन्य ज्ञान है उसके लिये है योगी जनोंको जो बाह्यइन्द्रियगोचर पदार्थ नहीं है उसकाभी प्रत्यक्ष होता है इससे योगियोंके प्रत्यक्षमें इस लक्षणकी प्राप्ति न होनेसे दोष नहीं है अथवा जो यह शंका होवे कि विना इन्द्रिय व अर्थके सम्बंध कहीं प्रत्यक्ष होना विदित नहीं होता तो इसका उत्तर इस सूत्रके अर्थसे यह है कि, तर्कसे लौकिक जनोंके सामर्थ्य अनुसार जो विना इन्द्रियद्वारा व इन्द्रिय व अर्थके सम्बंध हुऐ प्रत्यक्ष नहीं करसकते यद्यपि सिद्ध न होवे तथापि विशेष सामर्थ्यसे विना बाह्यइन्द्रियनके द्वारा प्रत्यक्ष कर-

नेवाले योगियोंके होनेसे दोष नहीं है अर्थात् यह दोष नहीं होसकता दूसरा सूत्र इसके समाधानमें यह है ॥ ९० ॥

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बंधाद्वा दोषः ॥ ९१ ॥

अथवा व्यतीत हुये दूरदेशमें वर्तमान वस्तुओंमें अतिशय सम्बंधको लाभ किये वा प्राप्त हुये योगियोंके होनेसे दोष नहीं है ॥ ९१ ॥

इसका अभिप्राय यह है कि जो बिना इन्द्रिय सम्बंध प्रत्यक्ष होना न माना जावे तो योगसे उत्पन्न अतिशय सामर्थ्यसे व्यवहित दूर देशमें वर्तमान पदार्थमें योगीके चित्तका सम्बंध घटित होता है तिससे योगियोंके लौकिक सामान्य जनोंसे विलक्षण विना बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष प्राप्त करनेमें दोष नहीं है. 'नहीं है' इस शब्दकी अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे होती है यह योगियोंके प्रत्यक्षके समाधान वर्णन करनेसे यह सूचित किया है कि, लौकिक बुद्धि अनुसार तर्कसे सब पदार्थका प्रमाण व यथार्थ ज्ञान नहीं होसकता न बाह्य दृष्ट पदार्थ मात्रके ज्ञानको प्राप्त, लौकिक जनोंके तर्ककी प्रतिष्ठा है क्योंकि योगीजनोंके प्रत्यक्षकी तुल्य ईश्वरकी तर्कसे सिद्धि नहीं होती ईश्वरकी सिद्धि न होनेमें भी दोष नहीं है यह आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ९१ ॥

ईश्वरासिद्धेः ॥ ९२ ॥

ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे ॥ ९२ ॥

इसमें पूर्व सूत्रसे दोष नहीं है यह अनुवृत्ति आनेसे ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे दोष नहीं है यह पूरा अर्थ सूत्रका होता है, भाव इसका यह है कि जैसे योगियोंको भूत भविष्यत्के व व्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंके ज्ञान होनेमें यद्यपि प्रत्यक्षका लक्षण घटित नहीं होता, व प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे ऐसा ज्ञान होना सिद्ध नहीं होता तथापि दोष नहीं है योग अवस्था विशेषमें अतिशय सामर्थ्य होनेमें सत्यही है लोकमें बालकके बुद्धि

विचारसे असंभव होनेसे जो पण्डित विद्वान्के ज्ञानमें सिद्ध है उस अर्थके खण्डित न होनेके समान खण्डित व असत्य नहीं होसकता अर्थात् लौकिक ज्ञान व तर्कसे यद्यपि ईश्वर सिद्ध नहीं होता तथापि ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे दोष नहीं है लौकिक जनोंकी बुद्धि व तर्कसे सिद्ध न होनेपर भी योगियोंके प्रत्यक्षके समान सत्य होना मानना चाहिये ईश्वरका यथार्थ बोधयोगही अवस्था व ज्ञान विशेष उदय होनेमें होता है, व आप्त उपदेशसे सिद्ध व प्रमाणके योग्य है तर्क आदिसे सिद्ध नहीं होता बहुत मनुष्य विना यथार्थ भाव समझे व पूर्वापरके सम्बंधका विचार किये इस सूत्रको और जो सूत्र आगे वर्णन किये हैं उनको सर्वथा ईश्वरके प्रतिषेध (खण्डन) म समझते हैं परन्तु यह उनका भ्रम मात्र है क्योंकि जो यह कहे कि दोष नहीं है विना इस अनुवृत्तिके ग्रहण किये हुये ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे इतनेही सूत्रके अर्थसे ईश्वरके सर्वथा निषेध करनेका अर्थ ग्रहण करना चाहिये तो ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे इतने कहनेसे वाक्यकी पूर्ति नहीं होती अन्य शब्दकी अपेक्षा होना विदित होता है जो यह कहैं कि ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे ईश्वर नहीं है वा ग्रहणके योग्य नहीं है, ऐसा कोई क्रिया शब्दका आक्षेप करिके वाक्यार्थ कर लेवेंगे तो ऐसा अर्थ ग्रहण करना सर्वथा अयुक्त है क्यों कि मनसे कल्पना करके असंगत अर्थको ग्रहण करना और जो सम्बंधसे ग्रहणके योग्य है उसको त्यागना केवल आग्रह व मूर्खता है और सब शास्त्रोंमें पूर्व सूत्रसे पर सूत्रोंमें अनुवृत्ति ग्रहण किया जाना व अनुवृत्तिसे वाक्यकी पूर्त्ति होना सिद्ध है इससे शास्त्रकी पद्धति व पूर्वापर सम्बन्धसे युक्त अर्थ व भावही यथार्थ ग्रहणके योग्य है व अन्य हेतु यह भी विचार करनेके योग्य है कि जो सूत्रकारका ईश्वरके निषेधही करनेका प्रयोजन होता तो सूत्रमें अभाव शब्दको रचते अर्थात् "ईश्वराभावात्" अर्थ ईश्वरके अभावसे ऐसा कहतेहैं ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे दोष नहीं है, यह कहनेसे यही सिद्ध होता है कि तर्कप्रमाणसे

ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध न होनेसे दोष नहीं है मुक्त रूपराग आदि दोष रहित पुरुष वा ईश्वर वा आत्मा योगज विशेष ज्ञानसे सिद्ध माननेके योग्य है जो यह शंका होवे कि कार्यका कर्त्ता कोई सिद्ध होनेसे तर्क व प्रमाणसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध होना संभव है सृष्टिकर्त्ता सिद्ध न होनेमें क्या हेतु है इस शंकाके निवारणके लिये व लौकिक प्रत्यक्ष व प्रत्यक्षमूलक अनुमान व तर्कसे ईश्वर सिद्ध न होनेके पक्षकी पुष्टिके लिये हेतु वर्णन करते हैं ॥ ९२ ॥

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ॥ ९३ ॥

मुक्त व बद्ध व अन्यतरके अभावसे उसकी (ईश्वरकी) सिद्धि नहीं है ॥ ९३ ॥

ईश्वरका मुक्त होना व बद्ध होना व दोनोंसे पृथक् होना संभव न होनेसे ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती. ईश्वरका मुक्त होना वा बद्ध होना दोनों सिद्ध न होनेका हेतु आगे सूत्रमें कहा है ॥ ९३ ॥

उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥ ९४ ॥

दोनों प्रकारसे ईश्वरका कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता ॥ ९४ ॥

दोनों प्रकारसे सिद्ध न होनेसे अभिप्राय यह है कि ईश्वरको मुक्त माननेमें अभिमान व राग आदि जो प्रवृत्तिके कारण हैं उनके अभावसे विना प्रयोजन सृष्टिकी उत्पत्तिमें ईश्वरका प्रवृत्त होना असंभव होगा व बद्ध माननेमें मूढ पराधीन होनेसे ऐसी अनेक सौष्ठव व नियम युक्त सृष्टि उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होसकता । अब यह संशय होता है कि जो तर्कसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध नहीं होता तो ईश्वर प्रतिपादक श्रुतियाँ मिथ्या होंगी इसके उत्तरमें यह सूत्र है ॥ ९४ ॥

मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासासिद्धस्य वा ॥ ९५ ॥

मुक्त आत्माकी प्रशंसापर अथवा सिद्धकी उपासनापर हैं ॥ ९५ ॥

कोई श्रुति केवल मुक्त आत्मा जिसको सन्निधिमात्रसे ऐश्वर्य सम्बंध है उसकी प्रशंसापर व कोई संकल्प पूर्वक सृष्टि उत्पन्न करनेकी प्रतिपादक अभिमान संयुक्त अनित्य ईश्वर ब्रह्मा विष्णु आदि सिद्धोंके गौण नित्यत्व वर्णन करने व उनके उपासनापर हैं अब यह संशय है कि जो आत्मा व ब्रह्म राग आदि रहित होनेसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध नहीं होता तो प्रकृति जडका अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं होसकता इसका उत्तर वर्णन करते हैं ॥ ९५ ॥

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ॥ ९६ ॥

उसके सन्निधानसे मणिके समान अधिष्ठातृत्व है ॥९६॥

इसका अभिप्राय यह है कि, जो संकल्पपूर्वक सृष्टि करना हम मानें तो प्रकृतिके अधिष्ठाता होनेमें दोष आवे हम यह मानते हैं कि जैसे अयस्कांतमणि (लोह चुम्बक) के सांनिध्यसे लोहा विना संकलपही स्वाभाविक अदृष्ट नियमसे खिचता व चलता है इसीप्रकारसे पुरुषके सन्निधिमात्रहीसे प्रकृति महत्तत्त्वके रूपमें परिणामको प्राप्त होती है व सृष्टिकी कारण होती है सन्निधिमात्रसे पुरुष आत्मा कर्त्ता है इससे राग आदि दोष होनेका संशय नहीं होसक्ता (प्रश्न) उसने इच्छा किया कि मैं बहुत होऊं उत्पन्न होऊं यह श्रुतिमें कहाहै श्रुति यह है—

"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय" ॥

यह श्रुति विना चेतन कर्त्ता व उसके संकल्प माननेके मिथ्या होगी (उत्तर) जैसे जडकगारमें विना इच्छा होनेके भी शीघ्र गिरनेवाला जानकर उपचारसे यह कहा जाता है कि गिरनेकी इच्छा करता है वा गिरने चाहता है इसी प्रकारसे प्रकृति विषयमें यह व ऐसी अन्य श्रुतियोंको जानना चाहिये अथवा यह मानना चाहिये कि, आदि सृष्टिकी

उत्पत्ति विषयमें ऐसी श्रुति नहीं है ब्रह्मा विष्णु आदि सिद्धोंके संकल्प वा भौतिक सृष्टिकी उत्पत्ति वर्णन करनेमें है ॥ ९६ ॥

विशेषकार्य्येष्वपि जीवानाम् ॥ ९७ ॥

विशेष कार्य्योंमेंभी जीवोंके सन्निधानसे अधिष्ठातृत्व है ॥ ९७ ॥

सन्निधानसे अधिष्ठातृत्व है यह पूर्व सूत्रसे ग्रहण किया जाता है अंतःकरणसे उपलक्षित जो है उसीकी जीवसंज्ञा है यह छठवें अध्यायमें वर्णन करेंगे इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि केवल सृष्टिके आदिहीमें पुरुषके संयोग मात्रसे सृष्टि करना व अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं है विशेष कार्य्योंमें अर्थात् व्यष्टिसृष्टिमेंभी अंतःकरणसे प्रतिबिंबित(प्रातिबिम्बको प्राप्त) चेतन जो जीव हैं उनके सन्निधानसे भी अधिष्ठातृत्व है कूटस्थ चेतन मात्र स्वरूप होनेसे किसी व्यापारसे अधिष्ठाता नहीं होता ॥ ९७ ॥ शंका-जो सदा सर्वज्ञ ईश्वर नहीं है तो वेदान्तोंके वाक्योंके विवेकके उपदेशका उसमें अन्धपरम्परा होनेकी शंका होनेसे प्रामाण्य नहीं है ॥ उत्तर-

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः ॥ ९८ ॥

सिद्धरूपोंके यथार्थ ज्ञाता होनेसे उनके वाक्यार्थका उपदेश प्रमाण है ॥ ९८ ॥

प्रमाण है यह मूल सूत्रमें शेष है भावसे ग्रहण किया जाता है अभिप्राय सूत्रका यह है कि, वेदान्तवाक्योंका अर्थ जो विवेकके उपदेशका है वह इस संशय हेतुसे कि, ईश्वर वा पुरुषको चेतनमात्र अकर्त्ता माना है विना सर्वज्ञ ईश्वर प्रतिपादक अंगीकार किये जानेके वेदान्त वाक्योंके उपदेश प्रमाण व ग्राह्य नहीं है, त्यागके योग्य नहीं, क्योंकि ब्रह्मा आदि जो सिद्धरूप हैं उनमें यथार्थ ज्ञान होनेसे उनका वाक्यार्थ उपदेश वेद माननेसे प्रमाण मानने व ग्रहणके योग्य है ॥ ९८ ॥

अंतःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ॥ ९९ ॥

अंतःकरणका उससे उज्ज्वलित होनेसे लोहके समान अधिष्ठातृत्व है ॥ ९९ ॥

उससे अर्थात् चेतनसे उज्ज्वलित अर्थात् प्रकाशित अंतःकरणका लोहके समान अधिष्ठातृत्व है अर्थात् यथा लोहमें ज्वलन वा प्रकाश नहीं है परन्तु अग्नि संयोगसे रूप व जरानेकी शक्तिमें अग्निके सदृश अधिष्ठाता होताहै इसी प्रकारसे चेतनसे उज्ज्वलित अंतःकरण चेतनके सदृश अधिष्ठाता है इसका विशेष वर्णन आगे होगा ॥ ९९ ॥

प्रतिबंधदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥१००॥

प्रतिबंध जो व्याप्तिहै उस व्याप्ति दर्शनसे अर्थात् व्याप्तिज्ञानसे प्रतिबद्धका ज्ञान होना अर्थात् व्यापकका ज्ञान होना अनुमान प्रमाण है ॥ १०० ॥

यथा धूम व अग्नि सम्बंधके व्याप्ति ज्ञानसे धूममात्रके प्रत्यक्षसे व्यापक अग्निका अर्थात् जिसमें व्याप्ति सम्बंध है उस अग्निका विना उसके प्रत्यक्ष हुए ज्ञान होना अनुमान प्रमाण है पुरुषका ज्ञान अनुमानही प्रमाणसे होता है ॥ १०० ॥

आप्तोपदेशः शब्दः ॥१०१॥

आप्तका उपदेश शब्द है ॥ १०१ ॥

यथार्थ ज्ञानवान् सत्यवक्ताको आप्त कहते हैं उसका उपदेश सत्य होनेसे प्रमाण है इससे आप्तका उपदेश शब्द प्रमाण है ॥ १०१ ॥

उभयसिद्धिः प्रमाणात्तदुपदेशः ॥१०२॥

दोनोंकी सिद्धि प्रमाणसे होनेसे उसका उपदेशहै ॥१०२॥

दोनों आत्मा व अनात्माकी सिद्धि विवेकद्वारा प्रमाणहीसे होती है इससे उसका अर्थात् प्रमाणका उपदेश किया है ॥ १०२ ॥

सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः ॥ १०३ ॥

सामान्यतो दृष्टसे दोनोंकी सिद्धि है ॥ १०३ ॥

अनुमान तीन प्रकारका होता है पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्ट; सामान्यतो दृष्ट अनुमानसे दोनोंकी अर्थात् प्रकृति व पुरुषकी सिद्धि होती है; यह अर्थ है जो पूर्वही प्रत्यक्ष हुयेके अनुसार पूर्व प्रत्यक्षीकृत जातीय विषयक अनुमान होताहै उसको पूर्ववत् कहते हैं यथा पूर्वही रसोई आदिमें अग्निसे धुवां होनेके पूर्वही प्रत्यक्ष होनेसे धुवां देखनेसे पूर्व प्रत्यक्षीकृत अग्निजातीयका अनुमान होता है व जो एकके विशेष धर्मका बोध होनेसे अन्य जो उससे भिन्न शेष रहे पदार्थ हैं उनके भेदका अनुमान होताहै उसको शेषवत् कहतेहैं यथा गंधवान् द्रव्य पृथ्वी होनेके ज्ञान होनेसे पृथिवीसे जो भिन्न पदार्थ हैं उनमें यह ज्ञान होताहै कि गंधरहित होनेसे यह पृथिवी नहीं है अथवा गंधवान् होनेसे यह पृथिवी है अन्य पदार्थ नहीं है इसको व्यतिरेक अनुमान भी करते हैं कोई कारणसे कार्यके अनुमान करनेको शेषवत् कहते हैं यथा उठे-हुए अति सघन मेघोंकी विशेष अवस्था देखकर जल होगा यह अनु-मान करना शेषवत् है प्रत्यक्ष आदि जातीय धर्मको लेकर व्याप्ति ग्रहणसे पक्षधर्मता केवलसे उसके विजातीय अप्रत्यक्षका जिस अंशमें दोनोंका सामान्य धर्म अर्थात् सदृश धर्म है उस सामान्य धर्मद्वारा अनुमान किया जाता है वह सामान्यतो दृष्ट कहा जाता है यथा स्थूलमें प्रत्यक्षसे कारण कार्यका सम्बंध होना सिद्ध होता है कार्य कारण सम्बंधके ज्ञान होनेसे कुण्डल आदि कार्यरूपके देखनेसे कारण सुवर्ण आदिका ज्ञान होता है इसीप्रकारसे अप्रत्यक्ष महत्तत्त्व आदिकार्य रूप पदार्थके ज्ञान होनेसे सामान्य कार्य कारण सम्बधंके ज्ञान होनेके हेतुसे

कारणरूप प्रकृतिका अनुमान होता है अर्थात् सुख दुःख मोहधर्म संयुक्त कार्यरूप महत्तत्त्वके सिद्ध होनेसे सुख दुःख मोहधर्मक उसके कारण प्रकृतिसे होनेका अनुमान होता है पुरुषमें यद्यपि अनुमानकी अपेक्षा नहीं है तथापि प्रकृति आदिके विवेक होनेमें सामान्यतो दृष्टसे पुरुषका अनुमान होता है अर्थात् प्रधानका ग्रह आदिके तुल्य परके अर्थ संहत्यकारी होनेसे उसके विजातीय पुरुषका प्रकृति आदिसे पर होनेका अनुमान होता है क्योंकि प्रकृति जडका ग्रह आदिके समान होनेसे भोक्ता होना संभव नहीं है देह आदिका भोक्ता होना अविवेकसे मानना है इस प्रकारसे सामान्यतो दृष्टसे जड प्रकृति व चेतनपुरुष दोनोंकी सिद्धि होती है ॥ १०३ ॥

चिदवसानो भोगः ॥ १०४ ॥

चैतन्यमें जिसका अवसान है ऐसा भोग है ॥ १०४ ॥

अभिप्राय यह है कि, जड होनेके कारणसे बुद्धि भोगकर्ता नहीं होसकती अंतःकरण केवल करणरूप है अंतःकरणके वृत्तियोंके द्वारा भोग पुरुष चेतनमें प्राप्त होता है इससे कहाहै कि, भोग ऐसा है कि जिसका अवसान चैतन्यमें होता है अर्थात् चैतन्य जो पुरुषस्वरूप है उसमें होता है अन्यमें नहीं होता ॥ १०४ ॥

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नादिवत् ॥ १०५ ॥

अकर्ताको भी फल उपभोग अन्न आदिके समान होता है ॥ १०५ ॥

इस शंकाके निवारणके लिये कि जो पुरुष अकर्ता है तो पुरुषको भोक्ता न होना चाहिये क्योंकि जो कर्म करता है उसीको फल भोग होना उचित है बुद्धि करके जो धर्म आदि किये गये उनके जो फल सुख आदि भोग हैं वह पुरुषमें किस प्रकारसे घटित होसकते हैं ?

सूत्रमें यह वर्णन किया है कि अन्न आदिके तुल्य अकर्ताको भोग होता है यथा पाक बनानेवाला अन्नको पकाता है उसको राजा आदि भोग करते हैं अर्थात् सेवकके किये हुए पाकका भोग स्वामीको होता है इसी प्रकारसे बुद्धिगत कर्मफलको पुरुष भोग करता है ॥ १०५ ॥

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः ॥ १०६ ॥

अथवा उसकी (अकर्ता पुरुषमें भोग होनेकी) सिद्धि होनेसे अविवेकसे कर्ताको फल होना मानना है ॥ १०६ ॥

पूर्वसूत्रमें जो दृष्टांत वर्णन किया गया उससे कर्तासे अन्यको फल होना सिद्ध होता है उसके सिद्ध होनेसे अर्थात् भोक्ता पुरुषमें कर्मफलकी सिद्धि होनेसे कर्ता बुद्धिको फल प्राप्त होता है यह मानना अविवेकसे है यह सूत्रका भाव है ॥ १०६ ॥

नोभयं च तत्त्वाख्याने ॥ १०७ ॥

तत्त्वके साक्षात्कार होनेमें दोनों नहीं ॥ १०७ ॥

प्रमाणसे प्रकृतिपुरुषके तत्त्वाख्यानमें अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कार होनेमें सुख दुःख दोनों नहीं होते श्रुतिमें लिखा है " विद्वान् हर्षशोकौ जहाति" अर्थ—विद्वान् हर्ष व शोकको त्याग देता है ॥ १०७ ॥ शंका—प्रत्यक्षसे इन्द्रियद्वारा प्रकृति व पुरुषके होनेमें प्रमाण नहीं होता इससे प्रकृति पुरुषका मानना सत् नहीं है । उत्तर—

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ॥ १०८ ॥

अतिदूर आदि होनेसे प्रत्यक्ष होने व न होनेसे कहीं इन्द्रियका विषय होता है व कहीं इन्द्रियका विषय नहीं होता ॥ १०८ ॥

इन्द्रियसे प्रत्यक्ष न होनेसे प्रकृति आदिका अभाव नहीं होसकता क्योंकि प्रत्यक्षके योग्य विद्यमान अर्थ भी अवस्था भेदसे व अतिदूर आदि होनेके दोषसे इन्द्रियोंसे ग्रहण योग्य न होनेसे अविषय होता है अर्थात् कोई पदार्थ निकट होनेमें इन्द्रियका विषय होता है वही अतिदूर होनेसे इन्द्रियका विषय नहीं होता अर्थात् इन्द्रियद्वारा ज्ञात नहीं होता प्रकाशमें चक्षुइन्द्रियसे देखा जाता है अंधकारमें अथवा इंद्रियमें विकार होनेसे उसका प्रत्यक्ष नहीं होता इससे कहा है कि अतिदूर आदि दोषसे जो इन्द्रियका विषय है वही अविषय होजाता है ऐसा होना सिद्ध होनेसे पदार्थोंके होनेके प्रमाणमें इन्द्रियग्राह्य होनेकी आवश्यकता नहीं है॥१०८॥

अब यह प्रश्न है कि प्रकृति व पुरुषके बोधगत न होनेमें क्या हेतु है ? उत्तर यह है-

सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिः ॥ १०९ ॥

सूक्ष्म होनेसे उनकी उपलब्धि नहीं है ॥ १०९ ॥

उनकी अर्थात् प्रकृतिपुरुषकी उपलब्धि न होना अर्थात् उनका प्रत्यक्ष न होना सूक्ष्म होनेके कारणसे है सूक्ष्म होनेसे यहां अणु होनेसे प्रयोजन नहीं है क्योंकि व्यापक है. प्रत्यक्षप्रमा कि जिसमें प्राप्ति न होवे वह सूक्ष्म कहाजाता है प्रत्यक्षप्रमा रहित पदार्थ कहनेसे प्रयोजन है योगसे उत्पन्न तेजसे पुरुष व प्रकृति आदिका प्रत्यक्ष होता है निरवयव द्रव्य होनेसे भी सूक्ष्म होनेसे अभिप्राय है ॥ १०९ ॥

शंका-अभावसे हम अनुपलब्धि मानते हैं सूक्ष्म होनेके कारणसे क्या मानें नहीं, आकाशके फूल व खरहाके सींगको भी सत्य मानेंगे और कहेंगे कि सूक्ष्म होनेके कारणसे अनुपलब्धि है । उत्तर-

कार्यदर्शनात्तदुपलब्धेः ॥ ११० ॥

कार्यके देखने अथवा जाननेसे उनकी उपलब्धिसे ११०॥

पूर्व वर्णन किये गयेके अनुसार प्रकृति आदिके कार्यके देखने अथवा जाननेसे उनका होना सिद्ध है केवल प्रत्यक्ष न होनेके कारणसे सूक्ष्म होनेका अनुमान होता है यह अभिप्राय है ॥ ११० ॥

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ॥ १११ ॥

वादीके तर्कसे जो उसकी असिद्धि मानी जावे ॥ १११ ॥

जो कार्य है सृष्टि उत्पत्तिसे पहिले भी उसकी सिद्धि है क्योंकि कारणका कार्य शक्ति युक्त होना अनुमान किया जाताहै नहीं उससे कार्यका उत्पन्न होना असंभव होवे परंतु शंका यह है कि, जो वादीके तर्कसे उसकी अर्थात् कार्यकी असिद्धि मानीजावे तो क्या उत्तर है ? इसका उत्तर आगे सूत्रमें कहते हैं ॥ १११ ॥

तथाप्येकतरदृष्ट्या एकतरसिद्धेर्नापलापः ११२

एक दृष्टिसे उस प्रकारसे माननेपर भी एककी सिद्धिसे अपलाप नहीं है ॥ ११२ ॥

एक दृष्टि करके अर्थात् कार्य दृष्टिसे उस प्रकारसे अर्थात् सत् कार्य न माननेपरभी एक दृष्टि करके अर्थात् कार्यकी दृष्टिसे एक कारणकी सिद्ध होनेसे अपलाप (असत् वाद) नहीं है कारण भावसे नित्य सिद्धही है ॥ ११२ ॥

त्रिविधविरोधापत्तेश्च ॥ ११३ ॥

त्रिविधविरोधकी प्राप्तिसे भी ॥ ११३ ॥

त्रिविधविरोधकी प्राप्तिसे भी कार्यका अनित्य वा असत् होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् कार्य तीन प्रकारका है। अतीत (जो होगया है)

अनागत (जो होनेवालाहै) और जो वर्तमान है जो कार्य सदा सत् न माना जावे तो उसका त्रिविध होना सिद्ध नहीं होसकता क्योंकि व्यतीत कालमें जो घट आदिका अभाव है तो घट आदिकोंका अतीत होने आदि धर्म संयुक्त होनेकी सिद्धि नहीं होती इस हेतुसे कि, सत् असत्का सम्बंध नहीं हो सकता जो यह कहा जाय कि, अभावमात्र होनेके मानने से अभिप्राय है घट आदि विशेषके माननेसे नहीं है तो अभावमें विशेषता न माननेसे पट आदिका अभाव घट आदिका अभाव होजावेगा जो यह कहा जावे कि जो प्रतियोगी है (जिसका अभाव है) वही अभावका विशेषकहै अर्थात् विशेषताका बोध करानेवाला है तो असत् प्रतियोगीका प्रागभाव आदिमें विशेषक होना संभव नहीं होता इससे कार्य नित्यहै. अतीत अनागत यह वर्तमान केवल अवस्था भेद कहना चाहिये एकका भाव अन्यका अभाव कहना यथार्थ नहींहै, अतीत अनागत दो अवस्था ध्वंस व प्रागभाव काल भेदसे व्यवहार वाचक है क्योंकि वर्तमानसे भिन्न दो अभावमें प्रमाणका अभाव है कार्यके असत् माननेमें त्रिविध विरोधकी प्राप्ति होती है इससे असत् नहीं है ॥ ११३ ॥

नासदुत्पादो नृशृङ्गवत् ॥ ११४ ॥

मनुष्यके सींगके तुल्य असत्का उत्पन्न होना संभव नहीं होता ॥ ११४ ॥

जैसे मनुष्यके सींगका जो त्रिकालमें असत् है उत्पन्न होना असंभव है इसी प्रकारसे असत्का उत्पन्न होना असंभव है ॥ ११४ ॥

उपादाननियमात ॥ ११५ ॥

उपादानके नियमसे ॥ ११५ ॥

उपादान कारणके नियम होनेसे कार्यका असत् होना, नहीं पाया जाता क्योंकि मृत्तिकासे घट और सूतसे पट कार्य होते हैं कार्योंके

होनेका उपादान कारणोंमें नियम है यह नियम होना संभव न होगा जो कार्यकी उत्पत्तिसे पहिले कारणमें कार्यकी सत्ता नहीं है तो कोई विशेष होनेका हेतु नहीं है जिससे विशेषकार्य उत्पन्न होवे इससे उपादान नियमसे उत्पत्तिसे पहिलेभी कारणमें कार्यकी सत्ता है यह मानना चाहिये ॥ ११५ ॥

सर्वत्र सर्वदा सर्वासंभवात् ॥ ११६ ॥

सर्वत्र सर्वदा सब असंभव होनेसे ॥ ११६ ॥

उपादान नियम न होनेमें सर्वत्र सर्वदा सब पदार्थका होना संभव होता परन्तु सर्वत्र सबसे सब पदार्थ न होनेसे उपादान नियम होना सिद्ध है इससे असत्का उत्पन्न होना नहीं होसकता ॥ ११६ ॥

शक्तस्य शक्यकरणात् ॥ ११७ ॥

शक्तका शक्यके करनेसे ॥ ११७ ॥

शक्ति जिसमें हो वह शक्त है और जो होनेके योग्य होवे उसको शक्य कहते हैं शक्त जो कार्य उत्पन्न करनेमें शक्तिमान् कारणहै उसका शक्य जो कार्य है उसीके उत्पन्न करनेसे असत्का उत्पन्न होना नहीं है क्योंकि शक्तमें कार्यकी शक्ति कार्यके होनेसे पहिले विद्यमान है यह अनुमानसे सिद्ध होताहै ॥ ११७ ॥

कारणभावाच्च ॥ ११८ ॥

कारणमें भाव (कार्यसत्ता) होनेसे ॥ ११८ ॥

उत्पत्तिसे पहिलेभी कारणरूप कार्यके भाव होनेसे अर्थात् कार्य कारणके अभेद होनेसे कारणमें कार्यकी सिद्धि होनेसे असत्का उत्पन्न होना सिद्ध नहीं होता ॥ ११८ ॥

न भावे भावयोगश्चेत् ॥ ११९ ॥

भावमें भाव योग न होवे ॥ ११९ ॥

शंका—यह है कि जो भावरूप कार्य सत् माना जाय तो भावमें अर्थात् भावरूप कार्यमें भाव योग नहीं होता अर्थात् जो पहिलेसे है उसमें उत्पन्न होने रूप भावका योग नहीं होना चाहिये अर्थात् पुत्र होनेपरभी पुत्रका न होना व होनेसे पहिले भी होना मानना चाहिये ॥ ॥ ११९ ॥ इसका उत्तर यह है—

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ १२०

नहीं अभिव्यक्तिके निमित्तक व्यवहार अव्यवहार॥ १२०॥

'नहीं' इस शब्दसे अभिप्राय यह है कि असत्का होना संभव नहीं है अभिव्यक्ति (प्रकट होने) के निमित्तक व्यवहार व अव्यवहारहै अर्थात् अभिव्यक्ति होनेसे उत्पत्तिका व्यवहार व अभिव्यक्ति (प्रकटता) न होनेसे उत्पत्तिके व्यवहारका अभाव होताहै अभिव्यक्ति वर्तमान अवस्था है कारणसे सत्कार्यकी अभिव्यक्ति मात्र होना लोकमें देखा जाता है यथा तिलके अंतर्गत जो तेल है वह पेरनेसे प्रकट होता है व शिला मध्यस्थ प्रतिमा गढनेसे प्रकट होती है इत्यादि ॥ १२० ॥ अब यह शंका है कि जो सत् अनादि कार्य है तौ उसका नाश होना क्यों कहा जाता है ? उत्तर—

नाशः कारणलयः ॥ १२१ ॥

कारणमें लय होना नाश है ॥ १२१ ॥

नाश किसी पदार्थका नहीं है नाश केवल जिस कारणमें प्रथम कार्य सत्तारूप था और उससे प्रकट हुआ था उसीमें लय हो जाना व फिर सत्ता रूप रह जाना है अतीत जो नष्ट होगया व अनागत जो नष्ट नहीं हुआ होनेवाला है ऐसा कार्य नष्ट हुआ व नाश होनेपर कारणमें सत्ता-रूप रहता है अर्थात् अतीत कालमें था व अनागत (भविष्यत्)

कालमें सत्तारूप रहेगा, यह निश्चय कैसे हो ? उत्तर–जो अतीत अनागतमें कार्यकी सत्ता न होवे तो योगियोंको अतीत अनागतका अर्थात् जो होगया है व जो होनेवाला है उसका प्रत्यक्ष होता है ऐसा योगियोंको प्रत्यक्ष न होवे इससे सत्तारूपकार्य पदार्थका कारणमें अतीत अनागत कालमें होना सिद्ध होता है योगियोंको अतीत अनागतके प्रत्यक्ष होनेमें श्रुति स्मृतिका प्रमाण है शंका–जिस प्रकारसे कारणमें कार्यकी सत्ता अतीत अनागतमें अंगीकार की जाती है और यह कहा जाता है कि जो अभिव्यक्तिसे पहिले कार्यकी कारणमें सत्ता न होवे तो असत् कार्यकी अभिव्यक्ति होना संभव नहीं है इसी प्रकारसे अभिव्यक्तिकी भी पूर्वसत्ता अंगीकार करना चाहिये नहीं असत् अभिव्यक्तिकी अभिव्यक्ति न होना चाहिये इससे सत्कार्य होनेके सिद्धांतको रक्षाके लिये अभिव्यक्तिकीभी अभिव्यक्ति मानना उचित है परन्तु ऐसा माननेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति है इसका उत्तर यह है ॥ १२१ ॥

पारम्पर्यतोऽन्वेषणा बीजाङ्कुरवत् ॥ १२२ ॥

परम्परारूपसे बीज अङ्कुरके तुल्य खोजना है ॥ १२२ ॥

यथा बीज व अंकुर दोनों प्रत्यक्षसे सिद्ध हैं इससे सत् होनेमें संदेह नहीं है परन्तु अंकुर वा वृक्षसे बीज प्रथम उत्पन्न हुवा अथवा बीजसे अंकुर हुवा यह जाना नहीं जाता इसी प्रकारसे कारण कार्यके सत् होनेमें संदेह नहीं है परन्तु अभिव्यक्तिकी सत्ता माननेमें बीज व अंकुरके सदृश खोजना है यद्यपि यह खोजनेमें कि बीजसे अंकुर वा अंकुरसे बीज हुआ है यह निश्चय प्राप्त न हो और अनवस्थाकी प्राप्ति होवे तथापि बीज व अंकुरका होना प्रत्यक्षसे सिद्ध होनेसे यह अनवस्था दोषरूप नहीं है, बीज व अंकुरके समान अभिव्यक्ति व उसकी अभिव्यक्ति वा सत्ताको मानना चाहिये इससे अनवस्था दोष न मानना

चाहिये केवल यह समाधान अंगीकारके योग्य नहीं समझा जासकता इससे दूसरा समाधान आगे सूत्रमें वर्णन किया है ॥ १२२ ॥

उत्पत्तिवद्वादोषः ॥ ११३ ॥

उत्पत्तिके समान दोष रहित है ॥ १२३ ॥

यथा घटकी उत्पत्तिकी उत्पत्ति, उत्पत्तिका स्वरूपही है इसी प्रकारसे हमको घटके अभिव्यक्तिकी अभिव्यक्तिको मानना चाहिये इससे यथा उत्पत्तिमें अनवस्था दोष नहीं है तथा अभिव्यक्तिमें न मानना चाहिये क्योंकि जो असत्की उत्पत्ति मानते हैं तो जब सबकी उत्पत्ति होती है तो उत्पत्तिकीभी उत्पत्ति होना चाहिये और ऐसा माननेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी परन्तु अनवस्थाका अंगीकार नहीं होता उत्पत्तिकी उत्पत्ति उत्पत्तिका स्वरूपही है इसी प्रकारसे अभिव्यक्तिमें माननेसे अभिव्यक्तिका मानना दोषरहित है ॥ १२३ ॥ पूर्वही कार्यसे मूल कारणके अनुमान होनेका वर्णन किया गया है अब कार्योंके लक्षण वर्णन करते हैं--

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिंगम् ॥ १२४ ॥

हेतुमान् अनित्य व्यापक नहीं किया संयुक्त अनेक आश्रित लिङ्ग है ॥ १२४ ॥

लिंगशब्द महत्तत्व आदिकार्यका वाचक है परन्तु यहाँ महत्तत्व मात्र विशेष कार्य कहनेका प्रयोजन नहीं है सामान्य कार्य अर्थमें लिंगशब्द कहा है अर्थात् कार्यका यह लक्षण वर्णन किया है कि जो हेतुमान् अर्थात् कारणवान् अनित्य हो व्यापक न हो क्रिया संयुक्त हो अनेक हो आश्रित हो वह लिंग (कार्य) है अर्थात् कार्य कारणवान् व अनित्य होता है

और यथा कारण प्रधानका व्यापक होना पूर्वही कहा गया है इस प्रकारसे कार्य व्यापक नहीं होता व क्रियासंयुक्त होता है अर्थात् नियतकारणसे उत्पन्न होनेकी क्रिया संयुक्त होता है अनेक होता है अर्थात् उत्पत्ति वा सृष्टि भेदसे अनेक प्रकारके भेद संयुक्त भिन्न होता है व अवयवोंमें आश्रित होता है ॥ १२४ ॥

आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ॥ १२५ ॥

प्रत्यक्षसे अथवा गुण सामान्य (जाति) आदिके भेद न होनेसे उसकी सिद्धि है अथवा प्रधानके वर्णनसे ॥ १२५॥

उसकी अर्थात् कार्यकी सिद्धि कहीं प्रत्यक्षसे होती है यथा तन्तु आदिकोंसे पट आदिकार्योंकी होती है कहीं गुण सामान्य आदिके भेद न होनेसे अर्थात् गुण सामान्य (जाति) के भेद न होनेसे उसकी सिद्धि अनुमानसे होती है यथा निश्चय आदि गुण होने व कारणके विरुद्ध धर्म होनेसे महत्तत्त्व आदिकोंकी सिद्धि होती है जैसे महापृथिवी आदिके सामान्यात्मकरूप (जातिरूप)होनेसे व उसके मात्रा विरुद्ध होनेसे पृथिवी कार्य आदिकोंकी होती है तथा प्रधानके व्यपदेशसे अर्थात् श्रुतिमें प्रधानके वर्णनसे कारणसे भिन्न कार्यके होनेकी सिद्धि होती है॥१२५॥

त्रिगुणाचेतनत्वादिद्वयोः ॥ १२६ ॥

त्रिगुण व अचेतन होनेसे आदिसे दोनोंका ॥ १२६ ॥

दोनों कार्यकारणोंका त्रिगुण व अचेतन आदि होनेसे साधर्म्य है अर्थात् दोनोंका समान धर्म होना पाया जाता है कारणरूप प्रकृति त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व रज तम गुणरूप है वह महत्तत्त्व आदि कार्य रूपमें सत्व आदि त्रिगुण कारण रूपसे प्राप्त है अथवा सत्व आदि

शब्दोंसे सुख दुःख मोह त्रिगुण महत्तत्त्व कार्यमें कहे जानेसे कार्य व कारणमें त्रिगुण होनेसे दोनोंका साधर्म्य है ॥ १२६ ॥

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ १२७ ॥

प्रीति अप्रीति विषाद आदिसे अर्थात् विषाद आदि भेदोंसे गुणोंका परस्पर वैधर्म्य है ॥ १२७ ॥

गुणोंका सत्त्व आदि गुणोंका प्रीति अप्रीति विषाद आदि भेदसे परस्पर वैधर्म्य है अर्थात् परस्पर विरुद्ध धर्म होना पाया जाता' है आदि॰ शब्द अन्य सत्त्व गुण आदिके धर्म ग्रहण करनेसे प्रयोजन है यथा सत्त्व-गुण प्रसन्नता, हलकापन, संग, प्रीति, क्षमा, संतोष, आदि भेद संयुक्त सुखात्मक है॰ रजोगुण शोक, अप्रीति, आदि नाना भेदसे दुःखात्मक है॰ तमोगुण निद्रा, आलस्य, आदि भेदसे मोहात्मक है प्रीति आदिकोंके गुणधर्म होना कहनेसे सत्त्व आदिकोंका जिनमें यह गुण आश्रित हैं द्रव्य होना सिद्ध है ॥ १२७ ॥

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् १२८

लघु (हलका होना) आदि धर्मोंके साथ गुणोंका साधर्म्य व वैधर्म्य दोनों हैं ॥ १२८ ॥

लघु आदि धर्मके साथ सब सत्त्वगुण व्यक्तियोंका साधर्म्य है रज तम गुणोंके साथ वैधर्म्य है इसी प्रकारसे चंचलत्व आदि धर्मके साथ सब रजोगुण व्यक्तियोंके साथ साधर्म्य है सत्त्व गुण व तमोगुणके साथ वैधर्म्य है गुरुत्व (गुरुवाई) धर्मके साथ सब तमोगुण व्यक्तियोंका साधर्म्य है सत्त्व गुण व रजोगुणके साथ वैधर्म्य है कारण द्रव्य सत्त्व आदि शब्द स्पर्श आदि गुणोंसे रहित है ॥ १२८ ॥

उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ॥ १२९ ॥

दोनोंसे अन्य होनेसे महत्तत्त्व आदिका घट आदिके तुल्य कार्य होना सिद्ध होता है ॥ १२९ ॥

दोनों प्रकृति व पुरुषसे अन्य होने अर्थात् भिन्न होनेसे महत्तत्त्व आदि घट आदिके तुल्य कार्य हैं महत्तत्त्व आदि पंचभूत पर्य्यंत भोग्य होनेसे भोक्ता पुरुष नहीं है प्रकृति भी नहीं है क्योंकि महत्तत्त्व आदि कार्यरूपका नाश होता है जो नाश न होवे तो मोक्षकी सिद्धि न होवे कारणरूप प्रकृतिका नाश नहीं है इससे प्रकृति पुरुषसे भिन्न होना महत्तत्त्व आदिका सिद्ध होता है भिन्न होनेसे कार्य होना सिद्ध होता है ॥ १२९ ॥

परिमाणात् ॥ १३० ॥

परिमाणसे ॥ १३० ॥

परिमाण होनेसे अर्थात् परिच्छिन्न होनेसे महत्तत्त्व आदिका कार्य होना सिद्ध होता है क्योंकि परिच्छिन्न पदार्थका नाश होता है कारणका नाश नहीं होता ॥ १३० ॥

समन्वयात् ॥ १३१ ॥

समन्वयसे ॥ १३१ ॥

समन्वयका अर्थ सदृश गति होना अथवा पीछे चलना है अभिप्राय एकका दूसरे वा औरोंके अनुसार होना है अवयवयुक्त अन्न आदि-कार्योंके अनुसार होनेसे बुद्धि आदि तत्त्वोंका कार्य होना विदित होता है उपवास आदिमें अन्न न खानेसे बुद्धि आदिकी क्षीणता और भोजन करनेसे समन्वय करके फिर बुद्धिकी वृद्धि होती है निरवयव नियत कारणमें अन्न आदिके अवयवोंका प्रवेश होना घटित नहीं होता ॥ १३१ ॥

शक्तितश्चेति ॥ १३२ ॥

शक्तिसे भी ॥ १३२ ॥

शक्तिसे भी अर्थात् शक्ति होनेसे भी महत्तत्त्व आदि कार्य हैं शक्तिसे अभिप्राय करणसे है. पुरुषका जो करण है वह चक्षु आदिका तुल्य कार्य है पुरुषमें विषय अर्पण करनेवाला होनेसे महत्तत्त्व करण है प्रकृति कारण नहीं है महत्तत्त्वके करण होनेसे कार्य होना सिद्ध होनेसे। औरोंका भी जो महत्तत्त्वके कार्य हैं उनका कार्य होना सिद्ध है ॥ १३२ ॥

तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा ॥ १३३ ॥

उसके हान होनेमें प्रकृति अथवा पुरुष है ॥ १३३ ॥

उसके (कार्यके) न होनेमें अर्थात् कार्य न माननेमें जो परिणामी है तो प्रकृति है जो परिणामी नहीं है व भोक्ता है तो पुरुष है यह भाव है ॥ १३३ ॥ शंका—कार्य न माना जावे और प्रकृति पुरुष भी न होवे तो क्या हानि है ? उत्तर—

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ॥ १३४ ॥

उनसे अन्य होनेमें तुच्छत्व है ॥ १३४ ॥

उनसे अर्थात् प्रकृति पुरुषसे भिन्न होनेमें कार्य पदार्थका खरहाके सींग और आकाशके फूलके समान असत् व तुच्छ होना है ॥ १३४ ॥

कार्यात्कारणानुमानं तत्साहित्यात् ॥ १३५ ॥

कार्यसे कारणका अनुमान कार्यसाहित्यसे करनेके योग्य है ॥ १३५ ॥

कार्यसे जो कारणका अनुमान करना कहा है वह कार्य साहित्य-हीसे करनेके योग्य है अर्थात् कार्यद्वारा जो कारणके होनेका अनुमान

होता है उस कारणका कार्यसहित होना अनुमान करनेके योग्य है अर्थात् कार्य उत्पन्न होनेके पूर्वही कारण कार्य सहितही था यथा तिलमें तेल होता है इत्यादि ऐसा अनुमान करना चाहिये ॥ १३५ ॥

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिङ्गात् ॥ १३६ ॥

त्रिगुण कार्यसे अव्यक्त (सूक्ष्म) है ॥ १३६ ॥

त्रिगुणसे महत्तत्त्व कार्य रूपसे भी मूल कारण अव्यक्त सूक्ष्म है महत्तत्त्वके सुख आदि गुण साक्षात् किये जाते हैं प्रकृतिके गुणभी साक्षात् नहीं होते प्रधान परम अव्यक्त है महत्तत्त्व उसकी अपेक्षा व्यक्त है यह अर्थ है ॥ १३६ ॥

शंका-परम सूक्ष्म है यह कहकर प्रकृतिको मानलेनामात्र मिथ्यावाद है । उत्तर-

तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ॥ १३७ ॥

उसके कार्यकी उसकी सिद्धि होनेसे अपलाप नहीं है १३७

उसके अर्थात् प्रकृतिके कार्यसे उसकी प्रकृतिकी सिद्धि होनेसे अपलाप (असत् कथन) नहीं है ॥ १३७ ॥

प्रकृतिके अनुमानका विचार करके अब पुरुषका विचार किया जाताहै-

सामान्येन विवादाभावाद्धर्मवन्न साधनम् ॥ १३८ ॥

सामान्यसे विवादके अभाव (न होनेसे) धर्मके समान साधन नहीं है अर्थात् साधन अपेक्षित नहीं है ॥ १३८ ॥

जिस वस्तुमें सामान्यसे विवाद नहीं है उसके स्वरूपसे साधनकी अपेक्षा नहीं होती अर्थात् उसका साधन अपेक्षित नहीं होता यथा

धर्मके साधनकी अपेक्षा नहीं होती यह भाव है धर्मीमें भी विवाद होनेसे सामान्यसेभी जिस प्रकारसे प्रकृतिका साधन अपेक्षित है अर्थात् प्रकृतिके साधनकी अपेक्षा होती है इस प्रकारसे पुरुषका साधन अपेक्षित नहीं है क्योंकि चेतनके सिद्ध न होने व न माननेमें जगत्के अंध होनेका प्रसंग है 'मैं हूं' ऐसा माननेवाला भोक्ता पदार्थमें सामान्यसे बौद्धोंका भी विवाद नहीं है अर्थात् बौद्ध व सम्पूर्ण मनुष्य सामान्यसे 'मैं, पदार्थको मानते हैं यथा धर्मको सामन्यसे बौद्ध सब अंगीकार करते हैं कोई धर्म व गुणपदार्थको निषेध नहीं करसकता तत्ववस्तुके आरोपण करनेसे धर्म होनेका अंगीकार होही जाता है इसी प्रकारस 'मैं, पदार्थका अंगीकार होता है इससे पुरुषका साधन अपेक्षित नहीं है पुरुषमें विवेक नित्य होना आदि साधनमात्र अनुमान करनेके योग्य है अब शरीर आदिसे पुरुष भिन्न है यह सिद्ध करनेके प्रयोजनसे प्रथम विवेकके प्रतिज्ञा विषयमें सूत्र वणन करते हैं ॥ १३८ ॥

शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् ॥ १३९ ॥

शरीर आदिसे पुरुष भिन्न है ॥ १३९ ॥

शरीर आदि प्रकृति पर्य्यंत चौवीस तत्त्व व चौवीस तत्त्वमय जे पदार्थ हैं उन सबसे भोक्ता पुरुष भिन्न है ॥ १३९ ॥

संहतपरार्थत्वात् ॥ १४० ॥

संहत परके अर्थ होनेसे ॥ १४० ॥

संहत जो कार्यनिमित्तक संयोग है वह प्रकृति आदिका शय्या आदिके समान परके अर्थ है परके अर्थ होनेसे यह अनुमान होता है कि संहत जो देहादि हैं उनसे संहत रहित पुरुष भिन्न व पर है ॥ १४० ॥

त्रिगुणादिविपर्ययात् ॥ १४१ ॥

त्रिगुण आदिके विपर्ययसे ॥ १४१ ॥

सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंके जे सुख दुःख मोह आदि धर्म हैं उनसे विपर्यय अर्थात् विपरीत होनेसे पुरुष भिन्न है क्योंकि शरीर आदिकोंका सुख दुःखात्मक होना आदि धर्म है वह सुख आदिके भोक्तामें संभव नहीं होता क्योंकि वह सुख आदिका ग्रहण करनेवाला है ग्रहण करनेवाला व जो ग्रहणके योग्य है, कर्म व कर्त्ताके विरोधसे दोनों एक नहीं होसकते आदि शब्दसे अविवेकी होना आदि जानना चाहिये ॥ १४१ ॥

अधिष्ठानाच्चेति ॥ १४२ ॥

अधिष्ठानसे भी ॥ १४२ ॥

अधिष्ठान भोक्ताके संयोगको कहते हैं वह प्रकृति आदिकोंको परिणाम रूप भोगके हेतु जे कार्य हैं उनमें कारण है भोक्ताके अधिष्ठानसे भोगायतन (भोगस्थान) का निर्माण हुआ है जैसा आगे वर्णन किया है इससे पुरुष प्रकृतिसे भिन्न है व प्रकृतिसे भिन्न होनेसे प्रकृतिके कार्योंसे भिन्न है क्योंकि बिना भेदके संयोगसंयोगीभाव नहीं होता । इति शब्द समाप्ति अर्थ वाचक है सूत्रमें इति शब्द जो है वह पुरुषके भिन्न होनेके वर्णनकी समाप्ति सूचन अर्थमें है ॥ १४२ ॥

भोक्तृभावात् ॥ १४३ ॥

भोक्ताके भावसे ॥ १४३ ॥

शरीरमें भोक्ताके भाव होनेसे शरीर आदिका स्वरूपही भोक्ता नहीं है शरीर आदिसे भिन्न पुरुष भोक्ता है जो शरीर आदि स्वरूपही भोक्ता माना जावे तो भोक्ता होनाही असंभव होगा क्योंकि वही कर्म व वही कर्ता नहीं होसकता अर्थात् शरीरही भोग्य शरीरही भोक्ता नहीं होसकता ॥ १४३ ॥

कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ १४४ ॥

मोक्षके अर्थ प्रवृत्ति होनेसे भी ॥ १४४ ॥

जो शरीर आदिका भोक्ता होना अंगीकार किया जाय तो भोक्ताकी मोक्षके लिये अर्थात् अत्यंत दुःख नाशके अर्थ प्रवृत्ति न होना चाहिये क्योंकि शरीर आदि नष्टही होजाते हैं जो प्रकृतिका मोक्ष होना कहाजावे तो प्रकृति धर्मी ग्रहण किये जानेसे दुःख स्वभाव सिद्ध होनेसे उसका मोक्ष होना असंभव है इससे मोक्षके अर्थ प्रवृत्ति होनेसे भी पुरुषका भिन्न होना सिद्ध होता है ॥ १४४ ॥

जडप्रकाशायोगात् प्रकाशः ॥ ॥ १४५ ॥

जडमें प्रकाशका योग न होनेसे प्रकाश भिन्न है १४५

प्रकाश शब्दका अर्थ यहां ज्ञान है अर्थात् जड लोह आदि पदार्थमें ज्ञानका योग न होनेसे ज्ञान स्वरूप चेतन पुरुष सम्पूर्ण जड प्रकृति कार्यसे भिन्न है यह सूत्रका भाव है जो प्रकाश शब्दका अर्थ लौकिक तेजका ग्रहण किया जावे तो जडके योग होनेका निषेध नहीं होसकता क्योंकि भौतिक अग्नि सूर्य आदि जड प्रकाश युक्त हैं इनका जड होना ज्ञान होनेके प्रमाणके अभावसे सिद्ध है ॥ १४५ ॥ शंका—प्रकाशस्वरूप होनेमें धर्म धर्मीका भान होगा वा नहीं ? उत्तर—

निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ॥ १४६ ॥

निर्गुण होनेसे ज्ञान धर्मसंयुक्त वा ज्ञान धर्मवाला नहीं है ॥ १४६ ॥

तेजका प्रकाशही रूपविशेष है उस प्रकाशरूपके आग्रह होनेमें भी स्पर्श सहित तेजके ग्रहण होनेसे तेज व प्रकाशमें भेद सिद्ध होता है आत्माके ज्ञान संज्ञक प्रकाशके आग्रह कालमें आत्माके भिन्न होनेका

ग्रहण नहीं होता इससे धर्म धर्मी भाव शून्य प्रकाशरूपही आत्मा द्रव्यके होनेकी कल्पना कीजाती है उसका गुण होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि संयोग आदिमान् है व आश्रित नहीं है गुण किसीमें आश्रित होता है व उसमें संयोग नहीं होता ॥ १४६ ॥ अब यह शंका है कि यह उत्तर यथार्थ नहीं हैं 'मैं जानता हूं' ऐसा बोध होनेहीसे धर्म धर्मी भावका अनुभव होनेसे पुरुषका ज्ञान धर्मवान् होना सिद्ध होता है, इसका उत्तर वर्णन करते हैं—

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ॥ १४७ ॥

श्रुतिसे सिद्धका उसके प्रत्यक्षसे बाधा होनेसे अपलाप नहीं है ॥ १४७ ॥

आत्माका निर्गुण होना केवल अनुमानसे नहीं कहा जाता किन्तु श्रुतिसे भी सिद्ध है श्रुतिमें कहा है—"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" अर्थ—साक्षी ज्ञानवान् केवल निर्गुण है जो श्रुतिसे अर्थात् श्रुति प्रमाणसे निर्गुण सिद्ध है उसके प्रत्यक्षसे बाधा होनेसे अर्थात् प्रत्यक्षसे निर्गुण होना सिद्ध न होनेसे उसका अपलाप (मिथ्या वा असत् कथन) नहीं होसकता जो श्रुतिप्रमाणसे सिद्ध है वही माननेके योग्य है इससे धर्म धर्मी भेद रहित ज्ञानरूपी आत्माका होना सिद्ध होता है 'मैं जानता हूं' ऐसा बोध होनेमें जो धर्म धर्मी भेद होनेका अनुभव होता है तो 'मैं गोरा हूं' ऐसा बोध होनेसे शरीर व पुरुषके भेद न होनेका अनुभव होना यथार्थ मानना चाहिये व शरीरसे भिन्न होनेके युक्ति हेतुओंका निषेध होना चाहिये परन्तु ऐसा मानना यथार्थ नहीं होसकता प्रमाण विरुद्ध है इसी प्रकारसे 'मैं जानता हूं' इसमें धर्मभेद मानना उचित नहीं है अथवा यह मानना चाहिये कि ज्ञान धर्म नित्य परि-

णाम रहित विशेष धर्म चेतन पुरुषमें होनेसे धर्म धर्मीको अभेद मानकर ज्ञानस्वरूपही पुरुषको मानाहै इससे निर्गुण कहाहै व अन्य बुद्धि वृत्ति-योंके भेदको अंतःकरणका गुण माना है इससे बुद्धि वृत्तिभेद गुण पुरु-षमें न होनेसे गुणगुणी भावका ग्रहण न करके व श्रुति प्रमाणको मुख्य अंगीकार करके पुरुष निर्गुण है यह कहाहै । अब यह शंकाहै कि, जो आत्मा नित्य ज्ञानस्वरूप है तो ज्ञान नाश न होनेसे सुषुप्ति आदि अवस्थाओंका भेद न होना चाहिये इसका उत्तर वर्णन करतेहैं ॥ १४७ ॥

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ॥ १४८ ॥

सुषुप्ति है आदिमें जिसके ऐसा जो अवस्थात्रय है उसका साक्षी होना मात्र पुरुषमें है ॥ १४८ ॥

सुषुप्ति है आदिमें जिसके ऐसा अवस्थात्रय जो अवस्थाका तीन होना है उसका साक्षी मात्र होना पुरुषमें सिद्ध होता है अर्थात् सुषुप्ति स्वप्न जाग्रत् अवस्थाओंका साक्षी पुरुष है तीनों अवस्थाके साक्षी होनेसे पुरुषका विलक्षण व शरीर आदिसे पृथक् साक्षी होना सिद्ध होता है, इन्द्रियद्वारा बुद्धिका विषयोंके आकार-रूप परिणाम होना जाग्रत् अवस्था है व संस्कार मात्रसे जन्म उसी प्रकार परिणाम होना स्वप्न अवस्था है, सुषुप्ति अवस्था अर्द्धलय व समग्र लयके भेदसे दो प्रकारकी होती है अर्द्धलय सुषुप्ति अवस्थामें विषयाकार वृत्ति नहीं होती केवल अपनेमें प्राप्त सुख दुःख मोह आकारही बुद्धिवृत्ति होती है जो सुखरूप बुद्धि वृत्ति न होवे तो सोकर उठे हुएको मैं सुखसे सोया ऐसा सुषुप्ति कालके सुख आदिका स्मरण न होवे समग्र लयरूप सुषुप्तिमें सब बुद्धिवृत्तियोंका अभाव होता है मृतके तुल्य हो जाता है समग्र सुषुप्ति जो वृत्ति-योंका अभावरूप है उसका पुरुष साक्षी नहीं होता पुरुष वृत्तिही

मात्रका साक्षी होता है अन्यथा संस्कार आदि बुद्धिधर्मका भी साक्षी होना संभव होगा सुषुप्ति आदिका साक्षी होना जिस प्रकारसे बुद्धिवृत्तियां अपनमें प्रतिबिम्बित होती हैं उनका उसी प्रकारसे प्रकाश कर देना है इसका आगे वर्णन किया जायगा अब यह आशंका है कि, यदि सुषुप्ति बुद्धिवृत्तिही सुख दुःख गोचर मानी जाती है तो जाग्रत् आदिमें भी सम्पूर्ण वृत्तियोंका वृत्ति ग्राह्य होना अंगीकार करना युक्त है अपने गोचर वृत्ति होनेहीसे अपने व्यवहार हेतुका सामान्यसे कहना यथार्थ होनेसे वृत्ति-योंका कोई साक्षी पुरुष कल्पना करना व्यर्थ है इसका उत्तर यह है कि, ऐसा मानना युक्त नहीं है क्योंकि नियमके साथ अपने गोचर वृत्तियोंके कल्पना करनेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी अनवस्था दोषकी प्राप्ति यह है कि 'मैं सुखी हूँ' इत्यादि वृत्तियोंमें सुख आदिके विशेषणता सहित होनेसे आदिमें उनका ज्ञान निर्विकल्पक होना अपेक्षित है अनन्त निर्वि-कल्पक वृत्तियोंकी अपेक्षा होनेसे अनवस्थाकी प्राप्ति है इससे नित्य एकही आत्मा ज्ञानस्वरूपके ज्ञानकी कल्पना कीजाती है व एकही आत्माका मानना यथार्थ विदित होता है 'मैं सुखी हूँ' इत्यादि विशिष्ट ज्ञानके अर्थ बुद्धिवृत्तिहीका तादृशाकार (उसीके आकाररूप) होना संभव है पुरुषमें वृत्तिसारूप्य मात्र माननेसे वृत्ति आकारसे भिन्न आकार होना अंगीकारके योग्य न होने व पुरु-षही स्वतंत्र आकार माननेसे परिणाम होनेकी प्राप्ति व परिणामसे अनित्य होनेकी सिद्धि होगी इससे पुरुषको साक्षी मात्र मानना युक्त है अब यह प्रश्न है कि सुषुप्ति आदिमें साक्षीमात्र होनेसे कोई पुरुष होना सिद्ध होनेमें भी यह संशय होता है कि पुरुष एकही है अथवा अनेक हैं इसपर पूर्वपक्ष यह है कि जाग्रत् आदि अवस्थारूप जे विरुद्ध धर्म हैं वह बुद्धिधर्म होना संभव होनेसे व श्रुतिमें भी एक होना कहनेसे आत्मा एकही है परन्तु

यद्यपि एक आत्मा सब बुद्धियोंका साक्षी है तथापि जिस बुद्धिकी वृत्ति होती है वही बुद्धि अपनी वृत्ति विशिष्टके साथ साक्षीको ग्रहण करती है अथवा प्राप्त होती है यथा मैं घटका जानता हूँ इत्यादि रूपोंसे। उत्तर—यह कहना यथार्थ नहीं है क्योंकि ऐसा कहनेसे यह घट है यह एक बुद्धिकी वृत्ति होनेमें मैं घटको जानता हूँ यह अनुभव अन्य बुद्धिकी वृत्तिद्वारा नहीं होसकता अब सिद्धांत इसका अगले सूत्रमें वर्णन करते हैं॥ १४८॥

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्॥ १४९॥

जन्म आदिके व्यवस्थासे पुरुषोंका बहुत होना है अर्थात् बहुत होना सिद्ध होता है॥ १४९॥

पुण्यवान् स्वर्गको जाता है पापी नरकको जाताहै अज्ञानी बंधको व ज्ञानी मोक्षको प्राप्त होता है कोई मनुष्यजाति कोई पशुजाति आदि अनेक योनियोंमें भिन्न भिन्न शरीरमें उत्पन्न हो भिन्न भिन्न अवस्था व दुःख सुखको प्राप्त होतेहैं इस प्रकारसे पुरुषका बहुत होना सिद्ध होताहै परन्तु जन्म मरणमें न पुरुषकी उत्पत्ति है न पुरुषका विनाश है केवल अपूर्व देह इन्द्रिह आदिके संघात विशेषसे संयोग व वियोग होता है॥ १४९॥ अब पुरुषके एक होनेके प्रतिपादनका पूर्वपक्ष यह है—

उपाधिभेदेप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः॥ १५०॥

उपाधि भेदमें एकका भी नाना योग होता है यथा आकाशका घट आदिकोंके साथ होता है॥ १५०॥

उपाधिसे एकही पुरुषका नाना शरीरके साथ योग होता है यथा एकही आकाशका नाना घट ग्रह आदिसे संयोग होता है जैसे एक

घट न रहने व द्वितीय घटक योग होनेसे आकाश प्रदेशकी व्यवस्था होतीहै इसीप्रकारसे विविध देहके जन्ममरण आदिसे पुरुषकी व्यवस्था है ॥ १५० ॥

उपाधिर्भिद्यते नतु तद्वान् ॥ १५१ ॥

उपाधि भेदको प्राप्त होती है उस उपाधिवालेमें भेद नहीं होता ॥ १५१ ॥

उपाधि भेदको प्राप्त होती है अर्थात् नानारूप होती है उपाधिमें भेद होनेसे उस उपाधि विशिष्टमें अर्थात् पुरुषमें भेद नहीं होता इसका विशेष वर्णन छठवें अध्यायमें किया जायगा ॥ १५१ ॥

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः ॥ १५२ ॥

इस प्रकारसे एक भावसे सर्वत्र वर्तमानका विरुद्ध धर्मका प्रसंग नहीं है ॥ १५२ ॥

इस प्रकारसे अर्थात् उपाधि मात्रसे भेदको प्राप्त तत्त्व भावसे आकाशके समान एक भावसे सर्वत्र सब दिशामें वर्तमान आत्माका विरुद्ध धर्म जन्म मरणमें प्रसंग नहीं है अर्थात् सर्व व्यापकका जन्म मरण होना संभव नहीं होता जन्म मरण परिच्छिन्न पदार्थका होता है पुरुषमें बुद्धि धर्म सुख दुःख आदि व शरीर धर्मोंकी व्यवस्था स्फटिकमें अरुण नीलरूप आदि धर्मोंकी व्यवस्था होनेके तुल्य होती है ॥ १५२ ॥

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात्तत्सिद्धिरेकत्वात् ॥ १५३ ॥

निश्चय करके अन्यक धर्म होनेमें भी आरोप करनेसे उसकी सिद्धि नहीं है एक होनेसे ॥ १५३ ॥

अन्यके धर्म होनेमें अर्थात् पुरुष भिन्न प्रकृतिके धर्म होनेमें सुख आदि धर्म आरोप करनेसे पुरुषमें उसकी अर्थात् व्यवस्थाकी सिद्धि नहीं है अभिप्राय यह है कि, पुरुषमें सुख आदि आरोप न करनेसे भी आरोपका अधिष्ठान पुरुषके एक होनेसे भेद होनेकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि आकाश यद्यपि एक है परन्तु घट अवच्छिन्न आकाशोंकी घटोंके भेदसे भिन्नता होनेसे औपाधिक धर्म व्यवस्था घटित होती है, आत्मत्व व जीवत्व आदि उपाधि अवच्छिन्नकी व्यवस्था होना घटित नहीं होता क्योंकि उपाधिके वियोगमें घटोंके आकाशोंके नाश होनेके समान उपाधिके नाशसे जीव नहीं मरता व एकही जीव वा पुरुषमें सुख दुःख जन्म मरण विरुद्धधर्म सिद्ध नहीं होते इससे चेतन जातिही मात्रसे एकता और व्यवस्था व व्यक्तिसे पुरुषोंमें अनेकता जैसा पूर्वही कहा गया है वैसा मानना उचित है ॥ १५३ ॥

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ॥ १५४ ॥

जातिपर होनेसे अद्वैत श्रुतिका विरोध नहीं है ॥ १५४ ॥

पूर्वपक्ष यह है कि, कहीं श्रुति स्मृतिमें पुरुष व ब्रह्मका भेद कहा है व कहीं अभेद अद्वैत वर्णन किया है द्वैत प्रतिपादक वाक्योंका अद्वैत प्रतिपादक श्रुतिवाक्योंसे विरोध होगा इसका उत्तर यह है कि अद्वैत श्रुतिका अभिप्राय जातिपर होनेसे अद्वैत श्रुतियोंका विरोध नहीं है सामान्य धर्म होना जाति है समधर्म होना मात्र जो जाति है उसीके प्रतिपादनमें अद्वैत श्रुतियोंका तात्पर्य है और जो द्वैत नाना पुरुष होनेके वर्णनमें श्रुतिवाक्य हैं वह साधारण यथा सुख दुःख अवस्थाभेदसे व्यवस्था लोकमें सिद्ध है उसके प्रतिपादन विषयमें है व्यक्ति व व्यवस्था भेदसे व्यवस्थाप्रतिपादक वाक्य होने व अद्वैत श्रुतिके तत्त्वरूप जाति प्रतिपादक होनेसे अर्थात् विजाती द्वैतके निषेध पर होनेसे द्वैत व अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियोंमें विरोध नहीं है यथा

अनेक दीप उपाधि व व्यक्तिभेदसे अनेक कहे जाते हैं और जो भेद अंगीकार न करके तत्त्वरूपसे सबको तेज रूप मात्रसे एकही पदार्थ मानें तो कुछ विरोध नहीं है इसी प्रकारसे पुरुषमें भेद व अभेदका होना जानना चाहिये ॥ १५४ ॥

शंका—आत्माके एक न होनेके समान एक जाति व रूप होनेमें भी नानारूप व भेद प्रत्यक्ष होनेसे विरोध होना सिद्ध होता है इससे एक जाति कहना भी यथार्थ नहीं है इसके उत्तरमें यह सूत्र है—

विदितबंधकारणस्य दृष्ट्यातद्रूपम् ॥ १५५ ॥

विदितबंध कारणकी दृष्टिसे रूपभेद नहीं है ॥ १५५ ॥

विदित बंध कारण जो अविवेक है उस अविवेकहीकी दृष्टिसे पुरुषमें रूप भेद है भ्रांति दृष्टिसे रूपभेद होनेसे रूपभेदकी सिद्धि नहीं है ॥ १५५ ॥ तथा—

नान्धदृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलंभः ॥ १५६ ॥

अन्धकी दृष्टिमें न प्राप्त होनेसे नेत्रवालोंको अप्राप्त नहीं है ॥ १५६ ॥

अभिप्राय यह है कि, अंध जो मूढ अज्ञानी हैं उनकी दृष्टिमें न प्राप्त होनेसे अर्थात् न देखने अथवा न जाननेसे नेत्रवान् जो ज्ञानी हैं उनको अप्राप्त अर्थात् अदृश्य नहीं है अज्ञानीको नहीं बोध होता परंतु ज्ञानीको एकरूप होना बोध होता है इससे प्रत्यक्षसे बोधगत न होनेसे गतिसे एकरूप होनेकी असिद्धि नहीं है ॥ १५६ ॥

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ॥ १५७ ॥

वामदेव आदि मुक्त हैं अद्वैत नहीं हैं ॥ १५७ ॥

अभिप्राय यह है कि जब कहनेवाला कहता है कि, वामदेव आदि मुक्त हैं इस कहनेसे यह विदित होता है कि, कहनेवाला अपनेमें बंध

होना मानकर यह कहता है कि वामदेव आदि मुक्त हैं मैं अभी बंधमें हूं इससे द्वैतका होना सिद्ध है एक बद्ध व एक मुक्त होनेसे अखण्ड अद्वैत नहीं है ॥ १५७ ॥ वामदेव आदिभी परम मोक्षको नहीं प्राप्त हुए इस वर्णनमें यह सूत्र है-

अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम् १५८॥

अनादिकालसे वर्तमान कालतक अभाव होनेसे भविष्यत्कालमेंभी इसी प्रकारसे ॥ १५८ ॥

अनादि कालसे अबतक कोई परम मोक्षको नहीं प्राप्त हुआ तो होनेवाले कालमें भी इसी प्रकारसे किसीको परम मोक्ष नहीं होगा क्योंकि जो होने योग्य होता तौ अबतक किसीको अवश्य होता ॥ १५८ ॥

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ १५९॥

इस कालके समान सर्वत्र (सब कालमें) अत्यंत निवृत्ति नहीं है ॥ १५९ ॥

वर्तमान कालके समान सर्वत्र अर्थात् सब कालमें, अत्यन्त बंधकी निवृत्ति कि, जिससे फिर कभी बंध न हो किसी पुरुषकी नहीं है यह अनुमानसे सिद्ध होता है क्योंकि जो परम मोक्षको प्राप्त होते जाते तो सबके मुक्त होजानेपर संसारकी उत्पत्ति प्रलयका अभाव होजाता अथवा किसी कालमें होजाना संभव है परन्तु श्रुतिप्रमाण व अनुमानसे, ऐसा होना सिद्ध नहीं होता ॥ १५९ ॥ शंका-जो पुरुषको एकरूप होना कहा है व वर्त्तमानमें उसके विरुद्ध बोध होता है तो यह जानना चाहिये कि मोक्ष कालमें वा सब कालमें किस कालमें पुरुषका एक होना प्रतिपादन किया है ? समाधान यह है-

व्यावृत्तोभयरूपः ॥ १६० ॥

दोनोंरूप निवृत्त है ॥ १६० ॥

मोक्षकाल व जब मोक्ष नहीं है दोनों कालोंमें पुरुष बंधसे निवृत्त है व श्रुति स्मृतिसे नित्यमुक्त एकरूप पुरुष सिद्ध है अनेकरूप व भेद मायासे अज्ञानसे है ॥ १६० ॥ शंका–साक्षी होनेके अनित्यता होनेसे पुरुषोंका सदा एकरूप होना किस प्रकारसे होसकता है ? समाधान–

साक्षात्संबंधात्साक्षित्वम् ॥ १६१ ॥

साक्षात् सम्बंधसे साक्षित्व है ॥ १६१ ॥

पुरुषका साक्षी होना जो कहा है वह साक्षात् उसके सम्बंध मात्रसे कहा है परिणाम रूप होनेसे नहीं कहा साक्षात् सम्बंध करके बुद्धि मात्रके साक्षी होनेका बोध होता है पुरुषमें साक्षात् सम्बंध अपनी बुद्धि वृत्ति हीका होता है व सम्बंध प्रतिबिम्बमात्रका है जस स्फटिकमें अरुण पदार्थके प्रतिबिम्बसे अरुणताकी प्रत्यक्षता होती है संयोगमात्रका सम्बन्ध नहीं है ॥ १६१ ॥ व द्वयमुक्त होने दोनों कालमें पुरुषके बंधरहित होनेमें विशेष वर्णन करते हैं–

नित्यमुक्तत्वम् ॥ १६२ ॥

नित्यही मुक्त होना मानने योग्य है ॥ १६२ ॥

नित्यमुक्त होना अर्थात् नित्यही पुरुष सब दुःखसे शून्य है दुःख आदि बुद्धिके परिणामसे होते हैं पुरुषार्थ दुःख भोगकी निवृत्तिको कहते हैं वह प्रतिबिम्बरूप दुःखकी निवृत्ति है यह पूर्वही कहा गया है॥१६२॥

औदासीन्यं चेति ॥ १६३ ॥

उदासीन होनाभी ॥ १६३ ॥

उदासीन होना अर्थात् कुछ कर्म न करना भी पुरुषमें सिद्ध होता है पुरुष कर्तृत्वरहित है श्रुतिमें कहा है " कामः संकल्पो विचिकित्सा

श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्धीर्ह्रीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति " अर्थ-काम विचिकित्सा (संशय) श्रद्धा अश्रद्धा धैर्य अधैर्य विवेक लज्जा और भय ये सब मनही है अर्थात् ये सब मनहीके कार्य हैं इससे पुरुष दुःख व कर्मबंधसे रहित है 'इति' शब्द सूत्रमें पुरुषधर्मप्रतिपादनकी समाप्ति सूचनके अर्थ है ॥ १६३ ॥

शंका-जैसा वर्णन किया है इस प्रकारसे पुरुष व प्रकृतिका विवेकसे परस्पर विरुद्ध धर्म होना सिद्ध होनेमें पुरुषका कर्ता होना व बुद्धिका ज्ञाता होना कैसे सिद्ध होता है ? उत्तर-

उपरागात्कर्तृत्वं चित्सान्निध्याच्चित्सान्निध्यात् ॥ १६४ ॥

उपरागसे कर्ता होना ज्ञानसंयोग होनेसे ज्ञानसंयोग होनेसे ॥ १६४ ॥

पुरुष व बुद्धिका यथायोग्य परस्पर सम्बन्ध है पुरुषमें जो कर्त्ता होनेका धर्म है वह बुद्धिके उपराग वा बुद्धिप्रतिबिंबसे है व बुद्धिमें जो ज्ञान है वह पुरुषके समीप होनेके सम्बन्धसे ज्ञानका प्रकाश है न पुरुषमें अपना स्वाभाविक कर्ता होनेका धर्म है न बुद्धिमें स्वाभाविक ज्ञान है एक दूसरेके सम्बन्धद्वारा है जैसे अग्नि व लोहके परस्पर संयोग विशेषसे परस्पर धर्म अर्थात् उपाधिसे एक दूसरेमें उष्णता व कठिनता होती है दोबार ज्ञानसंयोग होनेसे कहना अध्यायकी समाप्तिसूचनके अर्थ है ॥ १६४ ॥

इति श्रीप्यारेलालात्मजबांदामण्डलान्तर्गततरेहतियाख्यग्रामवासिश्रीप्रभुदयालुनिर्मिते सांख्यदर्शने देशभाषाभाष्ये विषयोऽध्यायः समाप्तः ॥ समाप्तश्चायं प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

सृष्टिविषयवर्णनमें द्वितीय अध्यायका आरंभ किया जाता है इस अध्यायमें सृष्टिका वर्णन है इस संशय निवारणके अर्थ कि, प्रकृतिका सृष्टि करनेमें प्रयोजन क्या है क्योंकि विना प्रयोजन सृष्टि होनेमें मुक्तकाभी बंध होनेका प्रसंग है और विना प्रयोजन प्रवृत्ति नहीं होती न होना संभव है प्रथम सृष्टि उत्पन्न करनेका प्रयोजन वर्ण करते हैं—

विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ॥ १ ॥

विमुक्तके मोक्षके अर्थ अथवा प्रधानका अपने अर्थहै, ॥ १

स्वभावसे दुःखबंधसे रहित विमुक्त पुरुषके प्रतिबिम्बरूप दुःखसे मोक्षके अर्थ वा विमुक्त नाम बद्धके मोक्षके अर्थ अथवा अपने पारमार्थिक दुःखसे मोक्षके अर्थ प्रधानका जगत् उत्पत्तिरूप कर्म है उत्पत्ति करने अर्थ पूर्व अध्यायके सम्बन्धसे ग्रहण किया जाता है जगत्के कर्ता होनेके वर्णनमें अध्याय समाप्त हुवा है उस सम्बन्धसे सृष्टि करनेका अर्थका ग्रहण होता है यद्यपि मोक्षके समान भोगभी सृष्टि उत्पत्तिका प्रयोजन है क्योंकि विना सृष्टि व शरीर आदिके पुरुषको सांसारिक अनेक विषय सुख प्राप्त नहीं होसकता विना सृष्टि जिन पदार्थोंमें सुख उत्पन्न करने अथवा दुःख उत्पन्न करनेका धर्म है उनका सफल होना व पुरुषको अनेक प्रकारसे सांसारिक विषय भोग होना संभव नहीं होता

---

१ मुक्तका मोक्ष कहना अयुक्त है क्योंकि बद्धका मोक्ष होना संभव है इससे विमुक्तका अर्थ बद्धहीका ग्रहण करना युक्त है और विमुक्तका अर्थ बद्धका इस प्रकारसे होता है. विगतं मुक्तं मोचनं यस्य सः, विमुक्तः बद्धः तस्य मोक्षार्थं विमुक्तमोक्षार्थम्' !

तथापि मुख्य होनेसे मोक्षहीको कहा है विना बंध मोक्ष सुख बोध होना संभव नहीं है क्योंकि विना निकृष्टके उत्कृष्टका ज्ञान नहीं होसकता इससे बंधके पश्चात् मोक्षके अर्थ अर्थात् मोक्षसुखके लिये सृष्टिका प्रयोजन है यह भाव सूत्रका विदित होता है जो यह संशय होवे कि, प्रकृति जडमें यह ज्ञान होना कि किसके अर्थ क्या कार्य करना चाहिये संभव नहीं है तो यद्यपि प्रकृति जड है परन्तु पुरुषके संयोगसे चेतनताको प्राप्त हो सृष्टिके करने व बुद्धि संयुक्त होनेका अनुमान होता है ॥ १ ॥

शंका–जो मोक्षके अर्थ सृष्टि है तो एक वारकी सृष्टिसे संभव होनेमें वारंवार सृष्टि होना जैसा श्रुति स्मृति प्रमाणसे सिद्ध है न होना चाहिये, उत्तर–

विरक्तस्य तत्सिद्धेः ॥ २॥

विरक्तको उसकी सिद्धि होनेसे ॥ २ ॥

एक वारकी सृष्टिसे मोक्ष संभव नहीं है जन्म मरण व्याधि आदि विविध दुःखसे जब जीव क्लेशित होता है तब प्रकृति पुरुषके विवेकसे उत्पन्न वैराग्यको प्राप्त होता है उस विरक्तको उसकी (मोक्षकी) सिद्धि होती है ॥ २ ॥ एक वारकी सृष्टिसे वैराग्य न होनेका हेतु कहते हैं––

न श्रवणमात्रात्तत्सिद्धिरनादिवासना-या बलवत्त्वात् ॥ ३ ॥

अनादि वासनाके बलवान् होनेसे श्रवणमात्रसे उसकी सिद्धि नहीं है ॥ ३ ॥

बहुत जन्मके पुण्यसे धर्म उपदेशका श्रवण होताहै उस श्रवणमात्रसे भी विना साक्षात्कार भये वैराग्य सिद्ध नहीं होता साक्षात्कार अनेक जन्मकी अनादि वासनाके बलवान् होनेसे शीघ्र (जलदी) नहीं होता योगनिष्ठासे होता है योगमें अनेक विघ्न होते हैं इससे अनेक जन्मके वैराग्य अभ्यासकी सिद्धिसे कभी किसीकी मोक्ष होती है ॥ ३ ॥

बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ॥ ४ ॥

अथवा बहुत भृत्यके समान प्रत्येकको ॥ ४ ॥

जैसे गृहस्थोंको प्रत्येकको स्त्री पुत्र भृत्य आदि भेदसे बहुत भरण पोषणके योग्य होते हैं इसी प्रकारसे सत्त्व आदि गुणोंको प्रत्येकको असंख्य पुरुष मोक्षके योग्य होते हैं इससे कितनेही पुरुषके मोक्ष प्राप्त होनेपर भी अन्य पुरुषोंके मोचनके अर्थ सृष्टिका प्रवाह होना घटित होता है क्योंकि पुरुष अनन्त है ॥ ४ ॥

शंका-श्रुतिमें कहा है "एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इत्यादि । अर्थ-इस आत्मासे आकाश उत्पन्न हुवा इत्यादि इससे प्रकृतिमात्रका सृष्टि उत्पन्न करना क्यों कहना चाहिये पुरुषका भी सृष्टि करना श्रुतिसे सिद्ध होता है. उत्तर-

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्यासासिद्धिः॥ ५ ॥

प्रकृतिमें वास्तवरूप होनेमें पुरुषके अध्यासकी भी सिद्धि होती है ॥ ५ ॥

प्रकृतिमें सृष्टि उत्पन्न करना वास्तवमें सिद्ध होता है व पुरुषका प्रकृतिके सम्बंधसे सृष्टिके उत्पन्न करनेमें अध्यासमात्र श्रुतिसे सिद्ध होता है यथा सेवक स्वामी सम्बंध होनेसे राजाके सेवक योद्धाओंको जो जय अथवा पराजय होता है उसका अध्यास (उपचार या आरोप) राजामें किया जाता है इसी प्रकारसे पुरुषकी शक्तिरूप प्रकृतिमें वर्तमान सृष्टि उत्पन्न करनेके धर्मका शक्ति व शक्तिमान्‌को अभेदभाव ग्रहण करके शक्तिमान् पुरुषमें उपचार किया जाता है ॥ ५ ॥

शंका-प्रकृतिमें क्यों वास्तवरूप सृष्टि करना निश्चय किया जाता है क्योंकि सृष्टि स्वप्न आदिके तुल्यभी सुनी जाती है. उत्तर-

कार्यतस्तत्सिद्धेः ॥ ६ ॥

कार्यसे उसकी सिद्धि होनेसे ॥ ६ ॥

महत्तत्त्व आदि कार्योंसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गयाहै कारणरूप प्रकृतिका सृष्टि करना सिद्ध होताहै क्योंकि कार्य कारणके परिणामसे होता है पुरुषमें परिणाम होनेका प्रमाण नहीं होता इससे कारणरूप प्रकृतिके परिणामसे वास्तवमें प्रकृतिसे सृष्टिका उत्पन्न होना सिद्ध होता है स्वप्नवत् श्रुतिके कहनेका अभिप्राय स्वप्नवत् अनित्य माननेसे है अन्यथा सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियोंमें विरोध आवेगा ॥ ६ ॥

शंका–मुक्त पुरुषोंमें भी प्रकृति क्यों प्रवृत्त नहीं होती ? उत्तर–

चेतनोद्देशान्नियमः कंटकमोक्षवत् ॥ ७ ॥

चेतनके उद्देशसे कांटाके मोक्षके समान नियम है ॥ ७ ॥

चेतन ज्ञानवान्के उद्देश (कहने) से कांटाके मोक्षके समान प्रकृतिका नियम है अर्थात् जैसे कांटा जो ज्ञानवान्के लगता है तो उससे वह छूट जाता है ज्ञानवान् उसको यत्नसे निकाल डालता है चेतन (ज्ञानवान्) के दुःख देनेको कांटा समर्थ नहीं होता और वही अज्ञानीको पशु आदिको जो नहीं निकाल सकता दुःख देताहै इसी प्रकारसे प्रकृति ज्ञानवान् कृतार्थसे छूट जाती है उसको दुःखात्मिका नहीं होती अन्य अज्ञानियोंको दुःखात्मिका होती है यह नियमकी व्यवस्था है इससे मुक्त पुरुषोंसे छूटनेसे प्रकृतिका भी मोक्ष होना घटित होता है इसीसे मुक्तपुरुषमें प्रकृतिकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥ ७ ॥

शंका–पुरुषमें सृष्टिकी उत्पत्तिकी शक्ति होना अध्यस्त मात्र होना जो कहा जाता है यह यथार्थ नहीं है प्रकृतिके संयोगसे पुरुषका भी महत्तत्त्वआदिमें परिणाम होना उचित है, उत्तर–

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ॥ ८ ॥

अन्य योगमें भी प्रत्यक्षसे लोहके दाहके समान उसकी सिद्धि नहीं है ॥ ८ ॥

अन्यके योगमेंभी अर्थात् प्रकृतिके योगमेंभी प्रत्यक्षसे लोहके दाहके तुल्य उसकी अर्थात् पुरुषके सृष्टि उत्पन्न करनेकी सिद्धि नहीं है अभिप्राय यह है कि, जैसे लोहमें साक्षात् दग्ध करनेकी शक्ति नहीं है केवल अपने संयुक्त अग्निद्वारा दाह करनेवाला अध्यस्त मात्र है इसी प्रकारसे प्रकृतिके संयोगद्वारा पुरुषका कर्त्ता होना है स्वाभाविक कर्तृत्व नहीं है ॥ ८ ॥

अब सृष्टिका मुख्य निमित्त कारण कहते हैं–

रागविरागयोर्योगः सृष्टिः ॥ ९ ॥

रागमें सृष्टि होती है विरागमें योग होता है ॥ ९ ॥

राग सृष्टिका कारण है विरागसे योग होता है योगमें सब वृत्तियोंके निरोध होने व आत्मज्ञान होनेसे मुक्ति होती है इससे विराग मुक्तिका कारण है ॥ ९ ॥

अब सृष्टिप्रक्रिया वर्णन किया जाता है–

महदादिक्रमेण पंचभूतानाम् ॥ १० ॥

महत्तत्त्व आदिके क्रमसे पांच भूतोंकी सृष्टि ॥ १० ॥

सृष्टि शब्दकी अनुवृत्ति पूर्व सूत्रसे होती है महत्तत्त्व आदिके क्रमसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गया है पंच भूतोंकी सृष्टि होती है शंका–इस श्रुतिमें "स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुम्" अर्थ–उसने प्राणको उत्पन्न किया प्राणसे श्रद्धाको आकाशको वायुको. पंच भूतसे पहिले प्राणकी सृष्टिको कहा है उत्तर–प्राण अंतःकरणके वृत्तिका भेद है यह आगे वर्णन किया जायगा इससे इस श्रुतिमें प्राणही महत्तत्त्वके अभिप्रायसे कहा गया है अर्थात् प्राण शब्दसे महत्तत्त्वको कहा है ॥ १० ॥

आत्मार्थत्वात्सृष्टेर्नैषामात्मार्थआरंभः ॥ ११ ॥

सृष्टिका आत्माके अर्थ होनेसे इनके आत्माके अर्थमें आरंभ नहीं है ॥ ११ ॥

सृष्टिका आत्माके अर्थ अर्थात् पुरुषके मोक्षके लिये होनेसे इनके आत्मा अर्थात् महत्तत्त्व आदिकोंके आत्माके अर्थ आरंभ नहीं है अर्थात् महत्तत्त्व आदिकोंका अपने लिये सृष्टि करनेका आरंभ नहीं है क्योंकि महत्तत्त्व आदिकोंका कार्य रूप होनेसे विनाशी अनित्य होनेसे मोक्षके साथ योग नहीं है ॥ ११ ॥

दिक्कालावाकाशादिभ्यः ॥ १२ ॥

दिशा काल व आकाश आदिकोंसे ॥ १२ ॥

आकाश प्रकृति (कारण) से दिशा व काल कार्य उत्पन्न हुये हैं व आकाशके तुल्य विभु हैं आदिशब्दसे उपाधियोंको ग्रहण किया है अर्थात् दिशा व काल दोनों आकाशके कार्य व विभु हैं जो खण्डरूप दिशा व काल होते हैं वह अपने अपने उपाधिभेदसे आकाशसे उत्पन्न होते हैं आकाशके गुणविशेष जो सर्वगत विभु होना व नित्य होना है वह दिशा कालमें होने व आकाशके साथ सम्बंध होनेसे व आकाश अखण्ड नित्य होनेसे व काल दिशामें उपाधि भेदसे खण्डरूप माने जानेसे दिशा व कालको कार्य व आकाशको प्रकृतिरूप कहा है ॥ १२ ॥

अध्यवसायो बुद्धिः ॥ १३ ॥

निश्चयरूपा बुद्धि है ॥ १३ ॥

महत्तत्त्वका पर्याय बुद्धि है अर्थात् महत्तत्त्व व बुद्धि दोनों शब्दका एकही अर्थ है निश्चय करना बुद्धिकी वृत्ति है इससे निश्चयरूप कहा बुद्धिको महत्तत्त्व इससे कहते हैं कि अपने व परके सकल कार्योंमें व्यापक है सबमें व्यापक होनेसे महा उत्कृष्ट तत्त्व माना है ॥ १३ ॥

तत्कार्यं धर्मादि ॥ १४ ॥

उसके कार्य धर्म आदि हैं ॥ १४ ॥

उस (महत्तत्त्व) के कार्य धर्म आदि हैं धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य कार्योंका उपादान बुद्धि है अहंकार नहीं है बुद्धिहीका अतिशय सत्त्वका कार्य होना प्रमाणसे सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

शंका-जो महत्तत्त्वके कार्य धर्म आदि उत्तम गुण हैं तो सम्पूर्ण प्राणियोंमें अधर्मकी प्रबलता क्यों होती है ? इसका उत्तर वर्णन करते हैं—

महदुपरागाद्विपरीतम् ॥ १५ ॥

महत्तत्त्व उपरागसे विपरीत होता है ॥ १५ ॥

महत्तत्त्व रजोगुण व तमोगुणके उपरागसे वा सम्बंधसे विपरीत होता है क्षुद्रधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्यका कारण होताहै कारणरूप बुद्धि प्रकृतिमें लय हो नित्य रहती है कार्यरूप परिणामको प्राप्त होती है एवं अनित्य है ॥ १५ ॥

अभिमानोऽहंकारः ॥ १६ ॥

अभिमान अहंकार है ॥ १६ ॥

'मैं हूं मैं कर्ता हूं' इस भावको अभिमान वा अहंकार कहते हैं यह अहंकार अंतःकरण द्रव्य है अभिमान उसकी वृत्ति वा उसका धर्म है परन्तु धर्म धर्मीको अभेद मानकर अभिमान अहंकार है यह कहा है निश्चय बुद्धिकी वृत्ति है निश्चित अर्थहीमें मैं मेरा यह ज्ञान अहंकारकी वृत्तिरूप उत्पन्न होता है निश्चय व अभिमान वृत्तियोंके कार्य कारण-भावके अनुसार वृत्तिमानोंका कार्यकारणभाव माना जाता है अर्थात् बुद्धि वा महत्तत्त्वका कार्य अहंकार माना जाता है जैसा पूर्वही कहा गया है ॥ १६ ॥

एकादशपंचतन्मात्रं तत्कार्यम् ॥ १७ ॥

ग्यारह व पांच उसके मात्रा उसके कार्य हैं ॥ १७ ॥

ग्यारह इन्द्रिय व शब्द आदि पांच उसके मात्रा उसके अर्थात् अहंकारके कार्य हैं मुझे इस इन्द्रियसे यह रूप आदि भोगके योग्य हैं यही सुखका साधन है इत्यादिके अभिमानहीसे आदि सृष्टि वा उत्पत्तिमें इन्द्रिय व उनके विषयोंकी उत्पत्ति होनेसे अहंकार इन्द्रिय आदिका हेतु हैं लोकमें भोग अभिमानीहीका राग द्वारा भोगमें प्रवृत्त होना देखा जाता है भूत व इन्द्रियके मध्यमें राग धर्मयुक्त जो मन है वही आदिमें अहंकारसे उत्पन्न होता है क्योंकि मनसे राग होनेसे शब्द आदि कार्य होते हैं व शब्दरूप आदि मात्रोंके भोगमें राग होनेसे भोगके करण श्रवण चक्षु आदि इन्द्रिय कार्य उत्पन्न होते हैं स्मृतिमें मोक्षधर्ममें हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के रागहीसे चक्षु आदिकी उत्पत्ति कहा है यथा "रूपरागादभूच्चक्षुः" इत्यादि, अर्थ-रूपके रागसे चक्षु (नेत्र) उत्पन्न हुये इत्यादि । इससे अनुमान व स्मृति प्रमाणसे अहंकारस मन मनसे राग रागसे शब्द आदि पांच मात्रा व मात्राओंसे दश बाह्य इन्द्रिय कार्योंका उत्पन्न होना सिद्ध होताहै ॥ १७ ॥

सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात् ॥ १८ ॥

विकारको प्राप्त अहंकारसे ग्यारहवाँ अहंकारका सात्त्विक कार्य प्रवृत्त होता है ॥ १८ ॥

ग्यारहवाँ जो दश इन्द्रियके पश्चात् मन है वह षोडश गण मध्यमें सात्त्विक है व विकारको प्राप्त जो अहंकार है उससे प्रवृत्त होताहै, अभिप्राय यह है कि, अहंकार तीन प्रकारका होता है सात्त्विक, राजस, तामस, सात्त्विक अहंकारसे सात्त्विक मन प्रवृत्त होता है अर्थात् उत्पन्न होताहै

तथा राजस अहंकारसे दशइन्द्रिय व तामससे पंचमात्रा उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥

कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ॥ १९ ॥

कर्मइन्द्रिय ज्ञानइन्द्रिय सहित अन्तरका ग्यारहवाँ है ॥ १९ ॥

वाक्, हस्त, पाद, पायु, (गुदा) व उपस्थ (लिंग वा योनि) ये पांच कर्मइन्द्रिय हैं. कर्ण, नासिका, रसना, त्वचा नेत्र ये पांच ज्ञान इन्द्रिय हैं इन दश इन्द्रियों सहित अंतर इन्द्रिय ग्यारहवाँ मन है यह अर्थ है ॥ १९ ॥

आहंकारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि ॥ २० ॥

श्रुतिसे आहंकारिक होना सिद्ध होनेसे भौतिक नहीं हैं ॥ २० ॥

श्रुति प्रमाणसे अहंकारके कार्य होना सिद्ध होनेसे इन्द्रिय भौतिक नहीं हैं "इन्द्रिय भौतिक नहीं हैं" यह कहनेमें इन्द्रिय शब्दकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है इन्द्रियोंके आहंकारिक होनेकी जो श्रुति है वह इस कालमें वेदके शाखाओंके लोप होजानेसे नहीं मिलती तथापि आचार्यके वाक्यस माननेके योग्य है यद्यपि 'एकोहं बहु स्याम्' अर्थ-एक बहुत होऊं यहभी अहंकारसूचक श्रुति है न भौतिक होनेके प्रमाणमें भी श्रुति हैं परन्तु आहंकारिक श्रुतिके मुख्य होनेसे भौतिक श्रुति गौणी मानना चाहिये ॥ २० ॥

शंका–भौतिकश्रुतिको गौणी अंगीकार करनेसे भी आहंकारिक होना घटित नहीं होता क्योंकि यह श्रुति है " अस्य पुरुषस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यम्" अर्थ–इस पुरुषकी वाक् अग्निमें लय होती है प्राण वायुमें लय होते हैं नेत्र सूर्य्यमें लय होते हैं और देवताओंमें

इन्द्रियोंके लय होनेसे देवताओंका उपादान होना भी ग्रहण होता है क्योंकि कारणहीमें कार्य लय होता है. उत्तर–

देवताळयश्रुतिर्नारंभकस्य ॥ २१ ॥

देवताओंमें लय होनेकी जो श्रुति है वह आरंभककी नहीं है, अर्थात् आरंभक विषय सम्बंधी नहींहै ॥ २१ ॥

अग्नि आदि देवताओंमें लय होनेकी जो श्रुति है वह कार्यआरंभक कारणके विषयमें नहीं है क्योंकि जो आरंभक (आदिमें उत्पन्न करने वाला) नहीं है उसमें भी लय होना देखा जाताहै–'भूतलमें जलबिन्दुका लय होना' आदि इसी प्रकारसे देवताओंमें इन्द्रियोंके लय होनेमें श्रुति है ॥ २१ ॥

कोई मनको नित्य मानते हैं इस संदेह निवारणके अर्थ इन्द्रियोंको अनित्य वर्णन करते हैं.

तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च ॥ २२ ॥

उनकी उत्पत्ति श्रुतिसे सिद्ध होनेसे व नाश देखनेसेभी ॥ २२ ॥

उनकी अर्थात् सब इन्द्रियोंकी उत्पत्ति है यथा श्रुतिमें कहा है " एतस्माज्जायते प्राणो मनस्सर्वेन्द्रियाणि च " अर्थ–इससे आत्मासे प्राण उत्पन्न होता है तथा भाव व सब इन्द्रियां भी जो उत्पन्न होता है वह नाश होता है यह अनुमानसे सिद्ध है व वृद्धावस्था आदिमें नेत्रआदिके सदृश मनके क्षीण होनेसे विनाश होनेका निर्णय होता है मनके नित्य होनेका वचन प्रकृति बीज पर है यह मानना चाहिये ॥ २२ ॥

अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रांतानामधिष्ठाने ॥ २३ ॥

इन्द्रिय अतीन्द्रिय हैं भ्रान्तोंको अधिष्ठानमें (अधिष्ठानमें बोध होता है) ॥ २३ ॥

इन्द्रिय अतीन्द्रिय हैं अर्थात् अति सूक्ष्म हैं प्रत्यक्ष नहीं हैं भ्रान्तोंको अधिष्ठानमें अर्थात् भ्रान्त जो भ्रमको प्राप्त हैं उनको अधिष्ठानमें (गोलकमें) इन्द्रियोंका होना बोध होता है अर्थात् गोलक व इन्द्रियमें भेद नहीं मानते ॥ २३ ॥

शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकत्वम् ॥ २४ ॥

शक्ति भेद होनेमें भी भेदकी सिद्धि होनेमें एक होना सिद्ध नहीं है ॥ २४ ॥

कोई यह कहते हैं कि, इन्द्रिय एकही है शक्ति भेदसे उससे विलक्षण कार्य होते हैं इस मतके प्रतिषेधके लिये यह कहा है कि, एक इन्द्रियके शक्ति भेद अंगीकार करनेमेंभी शक्तियोंकेभी इन्द्रिय होनेसे इन्द्रिय भेद सिद्ध होता है इससे इन्द्रियका एक होना सिद्ध नहीं होता और जो भेद सिद्ध है तो भिन्न शब्द कल्पना मात्रसे अर्थात् इन्द्रिय शब्दके स्थानमें शक्ति भेद शब्द कहनेसे एकताकी सिद्धि नहीं होती ॥ २४ ॥

शंका-एक अहंकारसे नानाविधकी इन्द्रियोंकी कल्पना करनेमें विरोध होगा । उत्तर-

न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ॥ २५ ॥

प्रमाणदृष्टका कल्पनाविरोध नहीं है ॥ २५ ॥

जो प्रत्यक्ष प्रमाणसे नानाविध इन्द्रियोंका होना दृष्ट है अर्थात् देखा हुवा है एवं प्रत्यक्षसे सिद्ध है उसमें कल्पनाविरोध नहीं होसकता॥२५॥

उभयात्मकं मनः ॥ २६ ॥

दोनों इन्द्रियात्मक मन है ॥ २६ ॥

ज्ञानइन्द्रिय व कर्मइन्द्रिय दोनों इन्द्रियात्मक मन है ॥ २६ ॥

गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ॥ २७ ॥

गुणोंके परिणामभेदसे अवस्थाके तुल्य नाना भेद होना सिद्ध होता है ॥ २७ ॥

यथा एकही मनुष्य स्त्रीके साथ कामी, विरक्तके साथ विरक्त, अन्यके साथ अन्य होता है इसीप्रकारसे मन चक्षु आदिके संग चक्षु आदिमें एकभाव होकर दर्शन आदि विशेष वृत्तियोंसे नाना होता है क्यों नाना अर्थात् अनेक प्रकारका होता है सत्त्व आदि गुणोंके परिणाम भेदमें समर्थ होनेसे यह सूत्रका अर्थ है ॥ २७ ॥

रूपादिरसमलान्त उभयोः ॥ २८ ॥

रूप आदि रसमलान्त दोनोंके ॥ २८ ॥

रूप आदिसे रूप रस गंध स्पर्श शब्द अभिप्राय है अन्न रसोंका मल विष्ठा है मलतक इन्द्रियका विषय है क्योंकि गुदाइन्द्रियसे मल-त्याग होता है तात्पर्य यह है कि, रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द ये ज्ञान इन्द्रियके विषय, व बोलना, देना, चलना, मैथुन करना, मलत्याग करना ये कर्मइन्द्रियके विषय हैं यह मलत्याग पर्य्यंत दोनों इन्द्रियोंके दश विषय हैं ॥ २८ ॥

द्रष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ॥ २९ ॥

द्रष्टा होना आदि आत्माका करण होना इन्द्रियोंका ॥ २९ ॥

द्रष्टा होना आदि अर्थात् देखनेवाला होना आदि पांच रूप आदि विषयोंका ग्राहक होना व वक्ता होना आदि पांच कर्म इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त होना व संकल्प कर्त्ता होना यह द्रष्टा होना आदि आत्माका अर्थात् पुरुषका दर्शन आदि वृत्तियोंमें होता है करण होना इन्द्रियोंका धर्म है जो यह शंका हो कि अविकारी पुरुषमें द्रष्टा कर्त्ता

होना आदि कैसे घटित होता है तो पूर्वोक्तके अनुसार यथा चुम्बकके समीप होनेहीसे लोहमें सञ्चलन होता है उसका कारण चुम्बकही हो जाता है अथवा सैन्य करण करके आज्ञामात्रसे राजा युद्ध करता है शरीरसे राजा आप कुछ नहीं करता युद्ध योद्धा करते हैं परन्तु जय व पराजय होना राजाहीका कहा जाता है इसीप्रकारसे द्रष्टा होना आदि पुरुषमें कहा जाता है यह जानना चाहिये सन्निधिमात्रसे इन्द्रिय करणोंसे कर्ता है स्वरूपसे पुरुष कर्त्ता नहीं है ॥ २९ ॥

त्रयाणां स्वलाक्षण्यम् ॥ ३० ॥

तीनोंका अपने अपने लक्षणका भाव है ॥ ३० ॥

तीनोंका अर्थात् महत्तत्व अहंकार व मनका अपने अपने लक्षणका भाव है यथा निश्चय आदि उत्कृष्ट गुण होना महत्तत्त्वका लक्षण है, अपने आत्मामें विद्यमान गुणका आरोप करना अहंकारका लक्षण है, संकल्प विकल्प करना मनका लक्षण है इन लक्षणोंसे अपने अपने लक्षणोंसे तीनोंका प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥

सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पंच ॥ ३१ ॥

प्राण आदि रूप पंच वायु करणकी (अंतःकरणकी) सामान्य (साधारण) वृत्ति है ॥ ३१ ॥

वायुके समान सञ्चार होनेसे प्राण आदि रूपसे जो पांच वायु अर्थात् प्राण, अपान, समान, उदान, व व्यान नामसे प्रसिद्ध हैं वे अन्तःकरणकी सामान्य (साधारण) वृत्ति है अर्थात् अंतःकरण त्रयके परिणाम भेद हैं अन्य प्राण आदिको वायुरूप वायु भेद मानते हैं कोई आचार्य वायुसे पृथक् प्राण आदिको अन्तःकरणके परिणाम वा कार्यभेद स्वीकार करके अन्तःकरणकी वृत्ति कहा है वायुनामसे

कहनेका आशय यह है कि वायुके समान संचार होनेसे वायु नामसे कहे जाते हैं प्राण वायु हृदयमें, अपान गुदामें, समान नाभिमें उदान कण्ठमें और व्यान सब शरीरमें रहता है. ये प्राण आदिके स्थान हैं ॥ ३१ ॥

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ॥ ३२ ॥

क्रम व विनाक्रम इन्द्रियकी वृत्ति है ॥ ३२ ॥

प्रथम निर्विकल्पक ज्ञान होता है पश्चात् क्रमसे सविकल्पक ज्ञान होता है अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन विषयोंमें प्रथम इन्द्रियद्वारा आलोचन ज्ञान विना विशेषणके होता है उसको निर्विकल्प कहते हैं फिर उत्तर कालमें वस्तुके धर्मोंसे द्रव्यरूप धर्मोंसे जाति आदिसे जो विशिष्ट ज्ञान होता है उसको सविकल्पक कहते हैं आलोचन ज्ञानहीके दो भेद हैं अर्थात् निर्विकल्पक सविकल्पक दो प्रकारका ऐन्द्रियिक ज्ञान आलोचन नामसे कहा जाता है कोई निर्विकल्पक ज्ञान मात्रको आलोचन व इन्द्रियजन्य कहते हैं और सविकल्पकको मन मात्रसे जन्य (उत्पन्नके योग्य) कहते हैं परंतु सविकल्पकको अर्थात् विशिष्ट ज्ञानको भी इन्द्रियोंसे विशिष्ट ज्ञान होनेमें बाधक होनेके अभावसे सूत्रमें ऐन्द्रियिक कहा है अर्थात् इन्द्रियकी वृत्ति माना है कोई यह कहते हैं कि, बाह्य इन्द्रियोंसे लेकरके बुद्धि पर्य्यंतकी वृत्तिकी उत्पत्ति क्रमसे होती है कभी व्याघ्र आदि देखनेके कालमें भय विशेषसे विद्युल्लताके समान सब इन्द्रियोंमें एकही वार वृत्ति होजाती है यह कहना असत् है सूत्रमें इन्द्रियोंकी वृत्तियों मात्रको क्रमिक अक्रमिक कहा है बुद्धि व अहंकार वृत्तियोंका प्रसंग नहीं है एकहीबार अनेक इन्द्रियोंकी वृत्ति होनेमें संशयरूप विरुद्धपक्ष प्राप्त होनेसे उसके निर्णयके अर्थ व मनके अणु होनेके प्रतिषेधके अर्थ सूत्रमें क्रमसे व विना क्रमसे इन्द्रिय वृत्ति होनेका वर्णन किया है ॥ ३२ ॥

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ३३ ॥

क्लिष्ट अक्लिष्ट भेदसे पांच प्रकारकी वृत्तियां हैं॥ ३३ ॥

दुःखकी देनेवाली सांसारिक जो पांच वृत्तियां हैं वे क्लिष्ट कही जाती हैं और जो योगकालकी पांच वृत्तियां हैं वे अक्लिष्ट अर्थात् उनके विपरीत कही जाती हैं यथा—अविद्या (अज्ञान) अस्मिता (अहंकार होना) राग, द्वेष व अभिनिवेश (मरणकी त्रास) ये पांच क्लिष्ट हैं और प्रमाण विपर्यय, (विपरीत ज्ञान) विकल्प, निद्रा, स्मृति ये पांच अक्लिष्ट वृत्तियां हैं प्रमाणका वर्णन पूर्वही होचुका है विवेक विरुद्ध अयथार्थ ज्ञान विपर्यय है किसीसे मनुष्यके सींग सुनकर यह जानकर भी कि, मनुष्यके सींग नहीं होते तथापि यह कल्पना करना कि,होते होंगे यह विकल्पक है निद्रा स्मृति साधारण है विशेष व्याख्यान विपर्यय आदिका योगदर्शनमें देखना चाहिये ॥ ३३ ॥

तन्निवृत्तावुपशांतोपरागः स्वस्थः ॥ ३४ ॥

उनके निवृत्त होनेमें शांतोपराग हो स्वस्थ होता है ॥ ३४ ॥

उनके अर्थात् वृत्तियोंके निवृत्त होनेकी दशामें शांतोपराग हो अर्थात् सम्पूर्ण विषयोंके रागसे रहित होकर स्वस्थ होता है अर्थात् कैवल्य आनन्दको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

कुसुमवच्च मणिः ॥ ३५ ॥

कुसुमके समान जैसे मणि ॥ ३५ ॥

जैसे जपाकुसुम (गोंडहरके फूल) के प्रतिबिम्बसे स्फटिकमणि जपा कुसुमके समान अरुण होजाती है और उसके न रहनेपर फिर अपने शुद्ध रूपको प्राप्त होजाती है और उपाधि जनित अरुणता दूर

होजाती है इसी प्रकारसे प्रकृतिकी जो वृत्तियां हैं उनकी निवृत्तिसे पुरुष निज स्वरूपमें स्वस्थ होता है व आनन्दको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ॥ ३६ ॥

पुरुषके लिये करणका उत्पन्न होना भी अदृष्टके प्रकट होनेसे ॥ ३६ ॥

पुरुषके अर्थात् अदृष्टके प्रकट होनेसे जैसे प्रधानकी प्रवृत्ति होती है इसी प्रकारसे पुरुषके अर्थ करणों (इन्द्रियों) की प्रवृत्ति वा उत्पत्ति होती है अदृष्टवशसे करणोंकी प्रवृत्ति इससे कहा है कि, करणोंका प्रवृत्त करनेवाला पुरुष नहीं होसकता क्योंकि पूर्वही पुरुषको क्रिया रहित कूटस्थ अंगीकार किया है व ईश्वरको जगत्का कर्ता नहीं माना इससे अदृष्टको प्रवर्तक माना है ॥ ३६ ॥

शंका—परके अर्थ आपसे करण किस प्रकारसे प्रवृत्त होते हैं ? उसका दृष्टांत यह है—

धेनुवद्वत्साय ॥ ३७ ॥

वत्सके अर्थ धेनुके समान ॥ ३७ ॥

यथा गौ वत्सके लिये अपनेहीसे दुग्ध स्रवती है कोई यत्नकी अपेक्षा नहीं होती ऐसा स्वभावही है इसीप्रकारसे अपने स्वामी पुरुषके अर्थ करण आपही प्रवृत्त होते हैं सुषुप्तसे अपनेहीसे बुद्धिका उठना वा प्रकट होना प्रत्यक्षसे भी सिद्ध होता है ॥ ३७ ॥

करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ॥ ३८ ॥

अवान्तर भेदसे तेरह विधके करण हैं ॥ ३८ ॥

तीन अन्तःकरण व दश बाह्य इन्द्रिय ये तेरह विधके करण हैं मुख्य करण केवल एक बुद्धि है उसके ये सब भेद हैं इससे यह कहा है कि, अवान्तर भेदसे अर्थात् भिन्न कार्यभेदसे तेरह हैं ॥ ३८ ॥

शंका—जो बुद्धि मुख्य करण है और अन्य गौण हैं तो उनके गौण मानेजानेका हेतु कौन गुण वा धर्म है ? उत्तर—

इन्द्रियेषु साधकतमत्वगुणयोगात्कुठारवत् ॥ ३९ ॥

इन्द्रियोंमें अति साधक होनेके गुणयोगसे कुठारके सदृश गुण है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियोमें परम्पस करके पुरुषार्थका अतिसाधक होना कारण स्वरूप बुद्धिका गुण है इससे तेरह प्रकारके करण होना सिद्ध होता है यह पूर्वसूत्रके साथ अन्वय (सम्बंध वा मेल) है कुठारके सदृश कहनेका अभिप्राय यह है कि, यथा काटनेमें योग भिन्न करना अर्थात् योगसे पृथक् वा विभाग करदेनाही फल होनेसे प्रहारहीका मुख्य करणत्व है तथापि अतिसाधन गुणके योगसे कुठारका भी करणत्व है अर्थात् कुठारका करण होना सिद्ध होता है इसीप्रकारसे यद्यपि मुख्य करण बुद्धि है तथापि अतिसाधक होनेसे इन्द्रियोंको करणत्व है ॥ ३९ ॥

द्वयोः प्रधानं बुद्धिर्लोकवद्भृत्यवर्गेषु ॥ ४० ॥

दोनोंमें प्रधान बुद्धि भृत्यवर्गोंमें लोकके समान है ॥ ४० ॥

दोनोंमें बाह्य व अंतरके करणों (इन्द्रियों) के मध्यमें बुद्धिही प्रधान है अर्थात् मुख्य है क्योंकि सम्पूर्ण अर्थके पुरुषमें समर्पण करनेमें बाह्य व अन्तरके जो मन चक्षु आदि करण हैं उन सबमें उत्कृष्ट है जैसे राजाका कोई प्रधान भृत्य सब भृत्यवर्गोंमें अर्थात् सेवक वर्गोंमें मुख्य होता है इसीप्रकारसे बुद्धि सब करणोंमें प्रधान है ॥ ४० ॥

बुद्धिके प्रधान होनेमें हेतु वर्णन करते हैं—

अव्यभिचारात ॥ ४१ ॥

व्यभिचार न होनेसे ॥ ४१ ॥

अन्य इन्द्रिय अपने अपने विषय विशेष मात्रके ग्रहण करनेमें समर्थ हैं अन्य इन्द्रिय अन्य इन्द्रियके विषयके ग्रहणमें समर्थ नहीं हैं बुद्धि सब करणोंमें व्यापक होनेसे सब करणों (इन्द्रियों) के विषयोंको ग्रहण करती है किसी इन्द्रियके विषय ग्रहण करनेमें निश्चय वृत्ति वा धर्मवान् बुद्धिका व्यभिचार नहीं होता सबमें व्यापक होने व फलमें व्यभिचार न होनेसे बुद्धिकी प्रधानता है ॥ ४१ ॥

तथाशेषसंस्काराधारत्वात् ॥ ४२ ॥

तथा सम्पूण संस्कारके आधार होनेसे ॥ ४२ ॥

यथा व्यभिचार न होनेसे बुद्धिकी प्रधानता है तथा सम्पूर्ण संस्कारके आधार होनेसे प्रधानता है. क्योंकि चक्षु आदि अथवा अहंकार मन संस्कारके आधार नहीं होसकते जो पूर्वही देखा वा सुना है उसके स्मरणको नेत्र आदि कोई बाह्य इन्द्रियां समर्थ नहीं हैं क्योंकि स्मरण करना बाह्य इन्द्रियोंका गुण नहीं है जो बाह्य इन्द्रियोंका धर्म होता तो अंध बधिरको रूप व शब्दका स्मरण न होता यद्यपि अंध बधिरको रूप व शब्दका प्रत्यक्ष नहीं होता परन्तु स्मरण होनेसे बाह्यइन्द्रियोंका धर्म नहीं है यह सिद्ध होता है जो मन व अहंकारका धर्म कहा जाय तो तत्त्वज्ञानसे जब मन व अहंकारका लय होजाता है तबभी स्मरण होता है इससे सम्पूर्ण संस्कारकी आधार बुद्धि है व स्मरण बुद्धिका धर्म है सब संस्कारकी आधार होनेसे बुद्धिकी प्रधानता है ॥ ४२ ॥

स्मृत्यानुमानाच्च ॥ ४३ ॥

स्मृतिद्वारा अनुमानसे भी ॥ ४३ ॥

स्मृतिद्वारा अनुमान होनेसेभी बुद्धिकी प्रधानता है क्योंकि स्मृतिसे अनुमान करना बुद्धिका कार्य है अन्य इन्द्रियका नहीं है ॥ ४३ ॥

संभवेन्न स्वतः ॥ ४४ ॥

आपसे संभव न होगा ॥ ४४ ॥

जो यह कहा जाय कि स्मृति पुरुषकी वृत्ति है इसका उत्तर यह है कि, आपसे पुरुषमें स्मृति होना संभव न होगा अर्थात् विना बुद्धि पुरुषमें स्मरण न होगा अथवा जो यह कहा जाय कि, बुद्धि मुख्य करण है इससे बुद्धिमें सब ज्ञान होना चाहिये इसके उत्तरमें यह कहाहै कि, विना चक्षु आदिकारणोंके द्वारा बुद्धिका आपसे करण होना संभव न होगा व विना चक्षु आदि बुद्धिका करण होना सिद्ध नहीं होता अन्यथा अंधे आदिको भी रूप आदिका ज्ञान होना चाहिये यह अर्थ व भाव है ॥ ४४ ॥

आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रिया-विशेषात् ॥ ४५ ॥

क्रियाविशेषसे गुण प्रधानभाव आपेक्षिक है ॥ ४५ ॥

आपेक्षिक है अर्थात् एक दूसरेकी अपेक्षा अपने अपने क्रियाविशेषसे प्रधान है यथा बाह्य इन्द्रियोंके व्यापारमें मन, मनके व्यापारमें अहंकार, अहंकारके व्यापारमें बुद्धि प्रधान है ॥ ४५ ॥

तत्कर्मार्ज्जितत्वात्तदर्थमभि-चेष्टालोकवत् ॥ ४६ ॥

उसके कर्मसे अर्जित (प्राप्त वा लब्ध) होनेसे लोकके तुल्य उसके अर्थ व्यापार होता है ॥ ४६ ॥

उसके (पुरुषके) कर्मसे अर्जित (लब्ध वा प्राप्त) कियाहुआ जो करण है उसका उसके अर्थ अर्थात् उसी पुरुषके अर्थ लोकके तुल्य व्यापार होता है अर्थात् यथा लोकमें जिस पुरुषसे मोल लेने आदिका कर्मसे कुठार आदि करण अर्जित होता है उसी पुरुषके अर्थ

उसका काटने आदिका व्यापार होता है अर्थात् उसी पुरुषके काम आता है इसीप्रकारसे पुरुषके सन्निधि वा संयोगहीसे बुद्धिकी उत्पत्ति वा बुद्धिमें शक्ति होनेसे बुद्धि पुरुषहीका कारण है तथा पुरुषहीके अर्थ उसका व्यापार है यद्यपि कूटस्थतासे पुरुषमें कर्म नहीं है तथापि यथा योद्धाओंका जय पराजय राजाका जय पराजय कहा जाता है इसी प्रकारसे पुरुषके भोक्ता व स्वामी होनेसे पुरुषका कर्म उपचारसे कहा है ॥ ४६ ॥

समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवल्लोकवत् ॥ ४७ ॥

समान कर्मयोगमें बुद्धिका प्राधान्य है लोकके समान लोकके समान ॥ ४७ ॥

यद्यपि पुरुषके अर्थ साधन भावसे सब करण कर्म योगमें समान हैं तथापि बुद्धिकी प्रधानता है जैसे लोकमें सब राजाके भृत्य राजाके सेवक होनेके भावसे समान हैं तथापि जो राजाका मंत्री वा कार्यका अधिकारी होता है वही प्रधान होता है और सब उसके आज्ञाकारी व अधीन होते हैं इससे बुद्धि सबमें उत्कृष्ट महत्तत्त्व है ॥ ४७ ॥

इति श्रीप्रभुदयालुशास्त्रविन्निर्मिते सांख्यदर्शन देशभाषाभाष्ये

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

इसके उपरांत प्रधानके स्थूल कार्य महाभूत शरीरका वर्णन व विविध योनिगति आदि ज्ञान साधन अनुष्ठानके हेतु अपर वैराग्यके अर्थ उसके उपरांत पर वैराग्यके अर्थ सम्पूर्ण ज्ञान साधनके वर्णनमें तृतीय अध्यायका प्रारंभ किया जाता है—

अविशेषाद्विशेषारंभः ॥ १ ॥

अविशेषसे विशेषका आरंभ होता है ॥ १ ॥

जिनमें शांत घोर मूढ यें विशेषण नहीं हैं ऐसे जो अविशेष पंचतन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध हैं उनसे विशेष स्थूल महाभूतोंका आरंभ होता है अर्थात् मात्राओंकी अविशेष संज्ञा है स्थूलभूतोंकी विशेष संज्ञा है पंच मात्राओंसे स्थूलभूतोंकी उत्पत्ति होती है यह अर्थ है ॥ १ ॥

पूर्व अध्यायसे लेकर यहाँ तक तेईस तत्त्वोंको कहकर अब शरीरकी उत्पत्ति कहते हैं ॥

तस्माच्छरीरस्य ॥ २ ॥

तिससे शरीरका ॥ २ ॥

तिस अर्थात् उक्त (कहेहुए) सूक्ष्म स्थूल तेईस २३ तत्त्वसे शरीरका आरंभ होता है अर्थात् शरीरकी उत्पत्ति होती है आरंभ होने शब्दकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है ॥ २ ॥

तद्बीजात्संसृतिः ॥ ३ ॥

उसके बीजसे संसृति होती है ॥ ३ ॥

उसके (शरीरके) बीजसे अर्थात् शरीरका बीज जो २३ तेईस

तत्त्वरूप सूक्ष्म शरीर है उससे पुरुषकी संसृति (गमनागमन) होती है यद्यपि पूर्वोक्त हेतुओंसे पुरुषका आपसे गत आगत होना संभव नहीं होता परन्तु उपाधि अवस्थाभेदसे जैसा पूर्वही कहा गया है वैसा पुरुषका गमन आगमन होता है अर्थात् उपाधिसे पुरुष पूर्वकृत कर्मफलके भोगके अर्थ देह त्यागकर अन्य देहको जाता है ॥ ३ ॥

अविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ॥ ४ ॥

अविवेकसे अविशेषोंका प्रवर्तन होता है ॥ ४ ॥

अविवेकसे अविशेष अर्थात् ईश्वरत्व अनीश्वरत्व आदि विशेषत रहित सब पुरुषोंको जवतक विवेक नहीं होता तबतक प्रवर्तन अर्थात् संसृति होती है विवेकसे उत्तर संसृतिका नाश होता है ॥ ४ ॥

विना विवेक संसृतिके नाश न होनेका हेतु क्या है यह वर्णन करते हैं—

उपभोगादितरस्य ॥ ५ ॥

इतरके उपभोगसे ॥ ५ ॥

इतर विवेकीसे भिन्न जो अविवेकी है उसके उपभोगसे अर्थात् अज्ञानीके कियेहुए कर्मका फलभोग अवश्य होनेसे अज्ञानीकी संसृतिका नाश नहीं होता ॥ ५ ॥

संसृतिपरिमुक्तो द्वाभ्याम् ॥ ६ ॥

वर्तमान संसृति कालमें दोनोंसे मुक्त होता है ॥ ६ ॥

संसृति कालमें दोनोंसे अर्थात् शीत उष्णके सुख दुःख आदि द्वंद्वसे पुरुष मुक्त अर्थात् रहित होजाता है ॥ ६ ॥

मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा ॥७॥

बाहुल्यसे स्थूल शरीर मातापितासे उत्पन्न है इतर वैसा अर्थात् ऐसा नहीं है ॥ ७ ॥

बाहुल्य करके वा बाहुल्यसे अर्थात् अधिकतासे वा बहुधा स्थूल शरीर मातापितासे उत्पन्न है बाहुल्यसे इससे कहा है कि, कहीं तपोबल आदि कर्म विशेषसे विना योनिभी स्थूल शरीर होना सुना जाता है सामान्यसे मातापितासे स्थूल शरीर उत्पन्न होता है इस प्रकार इतर सूक्ष्म नहीं है अर्थात् सूक्ष्म शरीर मातापितासे उत्पन्न नहीं होता ॥ ७ ॥

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्यनेतरस्य ८॥

सृष्टिके आदिमें जिसकी उत्पत्ति है ऐसे लिंगशरीर-हीको एकका भोग होनेसे अन्यको न होनेसे उसका कार्यत्व (सुख दुःख) है ॥ ८ ॥

सृष्टिके आदिमें सूक्ष्म लिंगशरीर जो उत्पन्न होता है उसीका सुख दुःख कार्य संयुक्त होना सिद्ध होता है क्योंकि लिंग शरीरहीको सुख दुःखका भोग होता है स्थूल मृतशरीरमें सुख दुःखका अभाव होता है इससे स्थूलमें भोग होना सिद्ध नहीं होता ॥ ८ ॥

सप्तदशैकं लिंगम् ॥ ९ ॥

सत्रह तत्त्वोंका लिङ्गशरीर होताहै ॥ ९ ॥

ग्यारह इन्द्रिय पांच तन्मात्रा व बुद्धि यह सतरह तत्वसंयुक्त लिंग-शरीर होता है अहंकारको लिंगशरीरमें बुद्धिके अंतर्गत मानकर भिन्न नहीं कहा ॥ ९ ॥

व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ॥ १० ॥

व्यक्तिभेद कर्मविशेषसे होता है ॥ १० ॥

कर्मविशेषसे व्यक्तिभेद अर्थात् पुरुष स्त्री पशुयोनि आदि शरीरोंका भेद होता है कर्म अनुसार कर्म भोगके अर्थ नाना प्रकारके शरीर होते हैं यह भाव है ॥ १० ॥

तदधिष्ठानाश्रयदेहे तद्वादात्तद्वादः ॥ ११ ॥

उसके अधिष्ठानके आश्रय देहमें उसके वादसे उसका वाद है ॥ ११ ॥

उसके अर्थात् लिंगके अधिष्ठान (आश्रय) देहमें अर्थात् लिंगका आश्रय जो सूक्ष्म पंचभूत रचित देह है जिसका आगे वर्णन होगा उसका आश्रय जो षाट्कौशिक देह है उसमें उसके वादसे अर्थात् लिंगके अधिष्ठान देहके वादसे उसका वाद है. अर्थात् षाट्कौशिक जो स्थूल देह है उसका वाद है यह अर्थ है—लिंगके सम्बंधसे अधिष्ठानका देह होना सिद्ध होता है व अधिष्ठानका आश्रय होनेसे स्थूलका देह होना सिद्ध होता है यह भावार्थ है इस प्रकारसे तीन शरीर सिद्ध होते हैं अन्यत्र जो लिंगशरीर व स्थूलशरीर दोनोंहीका वर्णन किया है तीसरा अधिष्ठानशरीर जो लिंगशरीरका आश्रय (स्थान) है नहीं कहा उसका हेतु यह है कि लिंगशरीर व अधिष्ठानशरीर दोनोंके सूक्ष्म होने व आधार आधेयभावसे वर्तमान होनेसे अधिष्ठानको लिंगशरीरके अंतर्गत मानकर एकही माना है ॥ ११ ॥

शंका—स्थूलशरीरसे भिन्न लिंगशरीरका अधिष्ठानरूप तीसरे शरीर कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता है ? उत्तर—

न स्वातंत्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ॥ १२॥

छायाके समान व चित्रके समान विना उसके स्वतंत्र (स्वाधीन) न होनेसे ॥ १२ ॥

लिंगशरीर उसके विना अर्थात् अधिष्ठानशरीरके विना स्वतंत्रतासे (विना अन्य आश्रयके आप अपने सामर्थ्यसे) नहीं रहसकता यथा छाया निराधार नहीं रहती तथा चित्रभी निराधार स्थिर नहीं होता अथवा नहीं रहता इसीप्रकारसे विना अधिष्ठान लिंगशरीरका न रहना अनुमान किया जाता है स्थूलदेह त्यागकर लोकान्तरके गमनके अर्थ लिंग देहका आधारभूत अन्यशरीर अनुमानसे सिद्ध होता है ॥ १२ ॥

शंका-लिंगशरीर मूर्त्तिमान् होनेपरभी वायु आदिके तुल्य आकाशही आधारमें रहे अन्य शरीर कल्पना करना मिथ्या है ? उत्तर-

मूर्त्तत्वेपि न संगात् योगात् तरणिवत् १३॥

मूर्तहोनेपरभी नहीं होता संगसे योगसे सूर्यके समान होता है ॥ १३ ॥

मूर्तिमान् होनेपरभी स्वतंत्रतासे विना संग स्थिर नहीं होसक्ता सूर्य्यके तुल्य यथा प्रकाशरूप तेजवान् सूर्य आकाश संचारी है परन्तु विना पार्थिव द्रव्यके स्थिर नहीं है यह अनुमानसे सिद्ध होता है क्योंकि पिण्डरूप मूर्तिमान् द्रव्य होना पार्थिव द्रव्यमें होना विदित होता है इससे सूर्य आदि तेजवान् सब पार्थिव द्रव्यके संगही अवस्थित हैं इसी प्रकारसे लिंगशरीर सत्वप्रकाशमय है वह भूतोंके संगमें स्थिर होता है व गमन आगमन करता है ॥ १३ ॥

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ॥ १४ ॥

कृतिश्रुतिसे वह अणुपरिमाण है ॥ १४ ॥

कृतिश्रुति जो क्रिया वर्णनमें श्रुति है उससे वह अर्थात् लिंगशरीर सूक्ष्म अणु परिमाण परिच्छिन्न है श्रुति यह है " विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्मांणि " इस श्रुतिमें बुद्धिकी प्रधानतासे विज्ञान संज्ञा लिंगकी वर्णन किया है अर्थात् विज्ञान (लिंग) अनेक कर्म कर्ता है तथा लिंगशरीरके क्रियामें यह श्रुति है "तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनुत्क्रामति प्राणमनुत्क्रामन्तं स विज्ञानो भवति" अर्थ-उसके पुरुषके निकलते हुए अर्थात् शरीरसे गमन करते हुए प्राण गमन करता है और प्राण निकलते वा जाते हुए लिंगशरीर संयुक्त होता है अर्थात् लिंग सहितही जाता है इससे लिंगशरीरका अणु व परिच्छिन्न होना सिद्ध होता है क्योंकि विभु (व्यापक) में क्रिया नहीं होसकती ॥ १४ ॥

अब परिच्छिन्न होनेमें दूसरा हेतु वर्णन करते हैं-

तदन्नमयत्वश्रुतेश्च ॥ १५ ॥

उसके अन्नमय होनेकी श्रुतिसे भी ॥ १५ ॥

उसके अर्थात् लिंगके अन्नमय होनेकी श्रुति होनेसे एकदेशीय सूक्ष्म होना सिद्ध होता है अन्न आदिके कार्य रूपका विभु होना संभव नहीं होता श्रुति यह है "ह्यन्नमयं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्" इत्यादि। अर्थ-हे सौम्य ! अन्नमय मन है. जलमय प्राण, तेजमयी वाक् है इत्यादि। यद्यपि मन आदि भौतिक नहीं हैं तथापि अन्न आदिसे उत्पन्न सजातीय अंश पूरण होनेसे अन्नमय होने आदिका व्यवहार होता है यह समझना चाहिये ॥ १५ ॥

पुरुषार्थसंसृतिर्लिङ्गानां सूपकारवद्राज्ञः ॥ १६ ॥

लिंगोंकी संसृति पुरुषके अर्थ राजाके सूपकार (रसोई बनानेवाले) के सदृश है ॥ १६ ॥

जो यह शंका होवे कि अचेतन लिंगोंकी संसृति देहसे देहान्तरमें जानेकी किस निमित्त है इसके उत्तरके लिये यह कहा है कि, यथा राजाके लिये राजाके सूपकारोंका पाकशाला (रसोई घर) में जाना होता है इसीप्रकारसे लिंगशरीरोंकी संसृति पुरुषके अर्थ होती है यह सूत्रका भाव है ॥ १६ ॥

सूक्ष्मशरीरको कहा अब स्थूलशरीरका विचार करते हैं-

पांचभौतिको देहः ॥ १७ ॥

पंचभूतरचित देह है ॥ १७ ॥

पंचभूत जो पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश हैं इनसे बनाहुआ देह है अर्थात् इन पांच भूतसंयुक्त परिणामरूप कार्य देह है ॥ १७ ॥

चातुर्भौतिकमित्येके ॥ १८ ॥

कोई चातुर्भौतिक मानते हैं ॥ १८ ॥

कोई आकाशके आरंभक न होनेसे पृथिवी जल तेज वायु चारही भूतोंसे देहकी उत्पत्ति मानते हैं अर्थात् चारही भूत सम्बंधी देहकी उत्पत्ति है यह मानते हैं ॥ १८ ॥

एकभौतिकमित्यपरे ॥ १९ ॥

कोई एकही भूतसे उत्पन्न मानते हैं ॥ १९ ॥

कोई एक भूत मुख्य पृथिवीभूतसे शरीरकी उत्पत्ति मानते हैं अथवा मनुष्य आदिमें पृथिवी तत्त्वके अधिक होनेसे पृथिवीमय सूर्य आदिमें तेज अधिक होनेसे एकतत्त्व तेजको मानकर तेजमय कहते हैं अर्थात् एक भूत जो अधिक है उसीको मुख्य व अन्य भूतोंको उपष्टम्भक (स्थितिके सहायक) मात्र मानते हैं ॥ १९ ॥

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ॥ २० ॥

पृथक् भूतमें न देखे जाने अथवा ज्ञात न होनेसे स्वाभाविक चैतन्य नहीं है ॥ २० ॥

पृथक् पृथक् पृथिवी आदि भूतोंमें चेतन होना न देखनेसे यह बोध होता है कि भौतिक अर्थात् पंचभूतसे रचित देहका चेतन होना स्वाभाविक नहीं है किन्तु औपाधिक मात्र है ॥ २० ॥

प्रपंचमरणाद्यभावश्च ॥ २१ ॥

और प्रपंचके मरण आदिका अभाव होता है ॥ २१ ॥

जो देहका चैतन्य स्वाभाविक होता तो प्रपंचके मरण आदिका अर्थात मरने व सुषुप्ति अवस्थाके प्राप्त होनेका अभाव होता देहका चैतन्यरहित होनाही मरण व सुषुप्ति होना है. स्वाभाविक चेतनता

हानेमें मरण सुषुप्तिका होना संभव नहीं होता क्योंकि स्वाभाविक गुण जब द्रव्यका नाश होता है तभी नष्ट होता है द्रव्यके रहनेमें उसका नाश नहीं होता शरीर बने रहनेमें मरण आदि होनेसे देहका स्वाभाविक चेतन होना सिद्ध नहीं होता ॥ २१ ॥

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे सांहत्ये तदुद्भवः ॥ २२ ॥

मद शक्तिके सदृश होवे प्रत्येक परिदृष्ट होनेपर मिलेहुएमें उसकी उत्पत्ति संभव है ॥ २२ ॥

जो यह शंका होवे कि यथा मादक शक्ति भिन्न द्रव्योंमें विदित नहीं होती मिलित द्रव्योंमें प्रगट होती है इसी प्रकारसे शरीरमें चैतन्य माना जावे इस पर यह कहा है कि प्रत्येक परिदृष्ट होनेपर मिले हुएमें उसकी उत्पत्ति होती है अथवा उसकी उत्पत्ति संभव है अर्थात् जो प्रत्येकमें कारण भावसे प्राप्त है यद्यपि सूक्ष्मतासे उसका प्रत्यक्ष न होवे वही मिले हुए पदार्थोंके कार्यरूप द्रव्यमें प्रकट होता है जो प्रत्येकमें परिदृष्ट नहीं है वह मिलेहुएमें भी प्रकट नहीं होसकता। मादक द्रव्यमें मादकता शक्ति उत्पन्न होके दृष्टांतमें प्रत्येक पदार्थमें जिससे मिलकर मादक वा मद्य द्रव्य बनता है शास्त्र प्रमाण व अनुभवसे सूक्ष्म मादकता शक्ति होना सिद्ध होता है व सिद्ध है शरीरके प्रत्येक भूतोंमें सूक्ष्मतासे भी चैतन्य होना किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है इससे मिले हुए भूतोंके कार्य शरीरमें चैतन्य होना संभव नहीं है जो समुच्चित भूतोंके कार्य होनेसे प्रत्येकभूतोंमें होनेका अनुमान किया जाय तो उत्पन्न हुआ चेतन अनित्य होगा श्रुति व अनुमान प्रमाणसे चेतन एकरस नित्य होना सिद्ध होता है विना नित्य होनेके कर्म फल भोग व विना कर्मके दुःख सुख भोग फल होना असंभव है इससे अनेक भूतोंमें अनेक

चातुर्भौतिकमित्येके ॥ १८ ॥

कोई चातुर्भौतिक मानते हैं ॥ १८ ॥

कोई आकाशके आरंभक न होनेसे पृथिवी जल तेज वायु चारही भूतोंसे देहकी उत्पत्ति मानते हैं अर्थात् चारही भूत सम्बंधी देहकी उत्पत्ति है यह मानते हैं ॥ १८ ॥

एकभौतिकमित्यपरे ॥ १९ ॥

कोई एकही भूतसे उत्पन्न मानते हैं ॥ १९ ॥

कोई एक भूत मुख्य पृथिवीभूतसे शरीरकी उत्पत्ति मानते हैं अथवा मनुष्य आदिमें पृथिवी तत्त्वके अधिक होनेसे पृथिवीमय सूर्य आदिमें तेज अधिक होनेसे एकतत्त्व तेजको मानकर तेजमय कहते हैं अर्थात् एक भूत जो अधिक है उसीको मुख्य व अन्य भूतोंको उपष्टम्भक (स्थितिके सहायक) मात्र मानते हैं ॥ १९ ॥

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ॥ २० ॥

पृथक् भूतमें न देखे जाने अथवा ज्ञात न होनेसे स्वाभाविक चैतन्य नहीं है ॥ २० ॥

पृथक् पृथक् पृथिवी आदि भूतोंमें चेतन होना न देखनेसे यह बोध होता है कि भौतिक अर्थात् पंचभूतसे रचित देहका चेतन होना स्वाभाविक नहीं है किन्तु औपाधिक मात्र है ॥ २० ॥

प्रपंचमरणाद्यभावश्च ॥ २१ ॥

और प्रपंचके मरण आदिका अभाव होता है ॥ २१ ॥

जो देहका चैतन्य स्वाभाविक होता तो प्रपंचके मरण आदिका अर्थात् मरने व सुषुप्ति अवस्थाके प्राप्त होनेका अभाव होता देहका चैतन्यरहित होनाही मरण व सुषुप्ति होना है. स्वाभाविक चेतनता

होनेमें मरण सुषुप्तिका होना संभव नहीं होता क्योंकि स्वाभाविक गुण जब द्रव्यका नाश होता है तभी नष्ट होता है द्रव्यके रहनेमें उसका नाश नहीं होता शरीर बने रहनेमें मरण आदि होनेसे देहका स्वाभाविक चेतन होना सिद्ध नहीं होता ॥ २१ ॥

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे सांहत्ये तदुद्भवः ॥ २२ ॥

मद शक्तिके सदृश होवे प्रत्येक परिदृष्ट होनेपर मिलेहुएमें उसकी उत्पत्ति संभव है ॥ २२ ॥

जो यह शंका होवे कि यथा मादक शक्ति भिन्न द्रव्योंमें विदित नहीं होती मिलित द्रव्योंमें प्रगट होती है इसी प्रकारसे शरीरमें चैतन्य माना जावे इस पर यह कहा है कि प्रत्येक परिदृष्ट होनेपर मिले हुएमें उसकी उत्पत्ति होती है अथवा उसकी उत्पत्ति संभव है अर्थात् जो प्रत्येकमें कारण भावसे प्राप्त है यद्यपि सूक्ष्मतासे उसका प्रत्यक्ष न होवे वही मिले हुए पदार्थोंके कार्यरूप द्रव्यमें प्रकट होता है जो प्रत्येकमें परिदृष्ट नहीं है वह मिलेहुएमें भी प्रकट नहीं होसकता. मादक द्रव्यमें मादकता शक्ति उत्पन्न होके दृष्टांतमें प्रत्येक पदार्थमें जिससे मिलकर मादक वा मद्य द्रव्य बनता है शास्त्र प्रमाण व अनुभवसे सूक्ष्म मादकता शक्ति होना सिद्ध होता है व सिद्ध है शरीरके प्रत्येक भूतोंमें सूक्ष्मतासे भी चैतन्य होना किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है इससे मिले हुए भूतोंके कार्य शरीरमें चैतन्य होना संभव नहीं है जो समुच्चित भूतोंके कार्य होनेसे प्रत्येकभूतोंमें होनेका अनुमान किया जाय तो उत्पन्न हुआ चेतन अनित्य होगा श्रुति व अनुमान प्रमाणसे चेतन एकरस नित्य होना सिद्ध होता है विना नित्य होनेके कर्म फल भोग व विना कर्मके दुःख सुख भोग फल होना असंभव है इससे अनेक भूतोंमें अनेक

चैतन्य शक्ति कल्पना करनेसे एकही प्रमाण सिद्ध नित्य चित्त स्वरूप मानना उचित्त है ॥ २२ ॥

शरीरका वर्णन करके पुरुषार्थ प्राप्त होनेके विषयमें वर्णन करते हैं—

ज्ञानान्मुक्तिः ॥ २३ ॥

ज्ञानसे मुक्ति है ॥ २३ ॥

ज्ञानसे मुक्ति होती है अर्थात् जन्म मरण क्लेशके त्याग हेतु विवेकसे आत्मतत्व विचारनेमें अज्ञानकी हानि व तत्त्वज्ञानके लाभसे मुक्ति होती है ॥ २३ ॥

बंधो विपर्ययात् ॥ २४ ॥

विपर्ययसे बंध ॥ २४ ॥

विपर्ययसे अर्थात् ज्ञानके विपरीत अज्ञान वा अविवेकसे सुख दुःखात्मक रूप बंध होता है ज्ञान व विपर्ययसे मुक्ति व बंध कहकर ज्ञानसे मुक्ति होनेका विचार करते हैं ॥ २४ ॥

नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ॥ २५ ॥

नियत कारण होनेसे समुच्चय विकल्प नहीं है ॥ २५ ॥

यद्यपि विद्या व अविद्या सहित दोनों कर्म वेदमें सुने जाते हैं तथापि अविवेककी निवृत्ति व तत्त्वज्ञानका होना नियत कारण मोक्षका सिद्ध होनेसे अविद्याकर्म सहित जो ज्ञान है उसका मोक्षके प्राप्तकरनेमें समुच्चय विकल्प दोनों नहीं हैं अर्थात् अविद्याके कर्म सहित जो ज्ञान है न वह अवश्य करके मोक्ष प्राप्त करसकता है न यही कहा जासकता है कि, कभी प्राप्त करता है कभी नहीं प्राप्त करता अर्थात् अविद्या कर्मके सहित जो ज्ञान है उससे किसी प्रकारसे मोक्ष होना संभव नहीं है केवल अविवेक रहित मोक्षका नियत कारण है ॥ २५ ॥

समुच्चय विकल्पका दृष्टांत कहते हैं—

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ॥ २६ ॥

जैसे स्वप्न व जाग्रतसे ऐसेही मायिक व अमायिकोंसे दोनोंमें पुरुषकी मुक्ति नहीं है ॥ २६ ॥

जो मायाका कार्य वा माया सम्बंधी हो वह मायिक कहा जाता है यहां अभिप्राय असत्य होनेसे है अमायिक वह है जो स्थिर होवे व सत्य हो मायिक कर्मकी संज्ञा, अमायिक ज्ञानकी संज्ञा है यथा—स्वप्नके असत्य कार्य व जाग्रतके सत्यकार्य वा पदार्थोंसे पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि यद्यपि स्वप्नकी अपेक्षा जाग्रत सत्यही है परन्तु कूटस्थ नित्य पुरुषकी अपेक्षा असत्य है असत् पदार्थसे सत् पुरुषार्थ फल नहीं होता इसी प्रकारसे मायिक जो असत् मायाका कार्य है व अमायिक जो कर्म सम्बंधी ज्ञान है इन दोनोंमें पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं है क्योंकि अविद्या कर्म सहित जो ज्ञान है वह यथार्थ ज्ञान नहीं है जाग्रत अवस्थाकी ऐसी सत्यता है कि, स्वप्नकी अपेक्षा सत्यहै परन्तु यथार्थमें नाशवान् होनेसे नित्य पुरुषकी अपेक्षा असत्य है माया कर्म रहित निष्कर्म तत्त्वज्ञान मोक्ष साधक है माया कार्य अनित्य है. अनित्य कर्म संयुक्त होनेसे मोक्ष साधक नहीं हो सकता यह अभिप्राय है ॥ २६ ॥

शंका—उपास्यके अमायिक होनेसे आत्मोपासना ज्ञान सहित तत्त्वज्ञानका मोक्षमें समुच्चय वा विकल्प होवे ? उत्तर—

इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ॥ २७ ॥

इतरको भी आत्यन्तिक नहीं है ॥ २७ ॥

जो यह कहा जावे कि, विकल्प करके अन्य देव अथवा उत्कृष्ट पुरुषकी उपासनासे पुरुषार्थ सिद्ध होगा इसके उत्तरमें यह कहा है कि इतरको भी आत्यन्तिक नहीं है अर्थात् इतर जो आत्मासे भिन्न उपास्य

(उपासना योग्य) है उसका भी आत्यन्तिक माया रहित होना सिद्ध नहीं होता जो उपास्यही मायारहित नहीं है तो उसके उपासकका मायारहित होना असंभव है ॥ २७ ॥

संकल्पितेऽप्येवम् ॥ २८ ॥

संकल्पितमें भी इसीप्रकारसे ॥ २८ ॥

संकल्पित उपास्य जो देवता आदि हैं वेभी मायिक हैं मायारहित नहीं हैं क्योंकि जो शरीरवान् देवता अथवा महात्माओंके शरीर हैं वे सब माया कार्य हैं क्योंकि जो इन्द्रियगोचर रूप शरीर आदि हैं सब अनित्य व मायिक व्यापार हैं ॥ २८ ॥

शंका-यह उपासना वेदमें कहा है " सर्वं खल्विदं ब्रह्म " अर्थ-यह सब निश्चय करके ब्रह्म है इत्यादि उपासना अथवा सिद्ध शिव विष्णु आदिकी उपासना करनेसे क्या फल है ? उत्तर-

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतवत् २९॥

भावना सिद्धि होनेसे श्रद्धावान्को सब प्रकृतके तुल्य है ॥ २९ ॥

भावना रूप जो उपासना है वह श्रद्धावान् उपासना करनेवालेको सिद्ध होनेसे उपासना करनेवाले शुद्ध पाप रहित पुरुषको प्रकृतके तुल्य ऐश्वर्य व सामर्थ्य, अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति, संहार करनेकी शक्ति प्राप्ति होती है परन्तु मुक्ति केवल ज्ञानहीसे होती है उपासना आदि कर्मसे नहीं होती यह भाव है ॥ २९ ॥

अब ज्ञान जो मोक्षका हेतु है उसका साधन वर्णन किया जाता है.

रागोपहतिर्ध्यानम् ॥ ३० ॥

रागोंके नाशका हेतु ध्यान है ॥ ३० ॥

ज्ञानका प्रतिबंधक (रोकनेवाला) जो विषयोंका राग अर्थात् विषयोंकी चाह अथवा प्रीति है उसके नाश होनेका हेतु ध्यान है अर्थात् ध्यान

साधनासे सम्पूर्ण विषयोंके रागका नाश होजाता है, यहां ध्यान शब्दसे धारणा, ध्यान, समाधि, इन तीनोंको ग्रहण करना चाहिये ॥ ३० ॥

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ॥ ३१ ॥

वृत्तिके निरोधसे उसकी सिद्धि होती है ॥ ३१ ॥

ध्येयसे भिन्न सम्पूर्ण पदार्थोंसे वृत्तियोंके रोकनेसे उसकी अर्थात् ध्यानकी सिद्धि होतीहै व ध्यानकी सिद्धि होनेपर ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ध्यान आरंभ करने मात्रसे ज्ञान नहीं होता ॥ ३१ ॥

धरणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ॥ ३२ ॥

धारणा आसन व अपने कर्मसे उसकी सिद्धि होती है ॥ ३२ ॥

धारणा आसन व अपने आश्रम कर्मसे उसकी; अर्थात् ध्यानकी सिद्धि होती है ॥ ३२ ॥

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ॥ ३३ ॥

छर्दि व विधारणसे निरोध होता है ॥ ३३ ॥

छर्दि वमनको कहते हैं यहां अभिप्राय श्वासके बाहर निकालनेसे है व विधारण शब्दका अर्थ विशेष धारण करना है यहां विधारणसे दो अर्थ ग्राह्य हैं एक बाहरके वायुको भीतर धारण करना दूसरे वायुको रोकना स्तंभन करना अर्थात् छर्दिसे रेचक व विधारणसे पूरक व कुंभकके अर्थ ग्रहण करना चाहिये रेचक पूरक कुंभक द्वारा वायुका निरोध होता है अर्थात् वायु वश होताहै वायु वश होनेसे चित्त स्थिर हो ध्यानमें एकाग्र होताहै इससे प्राणायामसे वायुको वश करना चाहिये यह अभिप्राय है ॥ ३३ ॥

स्थिरसुखमासनम् ॥ ३४ ॥

जो स्थिर व सुख साधन हो वह आसन है ॥ ३४ ॥

जो स्थिर व सुखका साधन है वह आसन है अर्थात् किसी आसनसे बैठना जिसमें स्थिर रहना व सुखसे रहना साधनसे होसके वह आसन है व विशेष आसनके भेद व नामभी अन्य ग्रंथकारोंने लिखा है, यथा सिद्धासन, पद्मासन, व स्वस्तिक इत्यादि ॥ ३४ ॥

स्वकर्मस्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ॥ ३५ ॥

अपने आश्रमविहित कर्मका अनुष्ठान करना स्वकर्म है ॥ ३५ ॥

ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, इन चार आश्रमोंमें जिस आश्रममें हो उस अपने आश्रमका जो विहित कर्म है वह स्वकर्म है उसको करना चाहिये ॥ ३५ ॥

वैराग्यादभ्यासाच्च ॥ ३६ ॥

वैराग्यसे व अभ्याससे ॥ ३६ ॥

विना यम, नियम, प्राणायामके उत्तम अधिकारियोंको वैराग्यसे व ध्यानके अभ्याससे योग सिद्ध होता है क्योंकि वृत्तियोंका रोकना चित्तका एकाग्र होना विषय रागका छूटना योगमें मुख्य है यह वैराग्य व अभ्याससे होजाता है अन्य जे उत्तम अधिकारी नहीं है उनको यम नियम आदि करनेसे कठिनतासे योगकी सिद्धि होती है ॥ ३६ ॥

विपर्ययभेदाः पंच ॥ ३७ ॥

विपर्ययके भेद पांच हैं ॥ ३७ ॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, ये पांच विपर्ययके भेद हैं व यही बंधके हेतु हैं अनित्य अशुचि दुःख अनात्मामें यथा नित्य शुचि सुख आत्माका बोध करना अविद्या है, आत्मा व अनात्माका एक होना जानना अस्मिता है, यथा—मैं शरीरहूं, यह बोध होना, राग द्वेष प्रसिद्ध है अभिनिवेश मरण आदि त्रासको कहते हैं ये पांच विपर्यय हैं ॥ ३७ ॥

अशक्तिरष्टाविंशतिधा तु ॥ ३८ ॥

अशक्ति अट्ठाईस प्रकारकी है ॥ ३८ ॥

विपर्यय कारणसे अट्ठाईस प्रकारकी अशक्ति है ग्यारह इन्द्रियोंका नाश होना व नव तुष्टि व आठ सिद्धिका बध होना ये अट्ठाईस अशक्ति हैं इन्द्रियोंका बध होना बधिर होना कुष्ठ होना अंध होना नपुंसक होना मूक होना आदि ग्यारह इन्द्रियोंकी अपनी अपनी बाधा है व नव तुष्टि व आठ सिद्धियोंके भेद आगे वर्णन किया है इस प्रकारसे अट्ठाईस अशक्ति हैं ॥ ३८ ॥

तुष्टिर्नवधा ॥ ३९ ॥

तुष्टि नव प्रकारकी है ॥ ३९ ॥

नव प्रकारके भेदको आगे सूत्रकार आपही वर्णन करेंगे ॥ ३९ ॥

सिद्धिरष्टधा ॥ ४० ॥

सिद्धि आठ प्रकारकी है ॥ ४० ॥

सिद्धियोंके भेद आगे वर्णन किये हैं ॥ ४० ॥

अवान्तरभेदाः पूर्ववत् ॥ ४१ ॥

अवान्तरभेद पूर्वके समान हैं ॥ ४१ ॥

अवान्तर भेद विपर्ययके पूर्वके तुल्य हैं अर्थात् जो पांच भेद अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश, पूर्वही कहा हैं वे विपर्ययके भेदहैं यहां संक्षेपसे इतनाही कहा है विस्तारसे कहनेमें विपर्ययके बासठ भेद हैं वे ये हैं अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, व पांच तन्मात्रा इन आठ अनात्माओंमें आत्मबुद्धि होना जो अविद्या है ये आठ तमके भेद हैं अर्थात् तम आठ प्रकारका होता है इनही आठका अस्मिता वृत्तिसे ग्रहण होनेसे अष्टप्रकारका मोह होताहै शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन पांचके

दिव्य आदिव्य भेदसे ग्रहण करनेमें राग दश प्रकारका है इसीको महामोह शब्दसे वाच्य करके दश प्रकारका महामोह होना कहते हैं अविद्या व अस्मिताके आठ विषय व रागके दश विषय अठारा विषयमें अठारा विधका तामिस्र होता है अर्थात् द्वेष होताहै और उन अठाराके विनाश आदिसे अठारा विधका अंधतामिस्र होता है अर्थात् अभिनिवेश होता है ये बासठ भेद हैं ॥ ४१ ॥

एवमितरस्याः ॥ ४२ ॥

इसी प्रकारसे इतरके ॥ ४२ ॥

इसी प्रकारसे इतरके अर्थात् अशक्तिके अवान्तर भेद अट्ठाईस गिनने चाहिये ॥ ४२ ॥

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः॥ ४३ ॥

आध्यात्मिक आदि भेदसे नवप्रकारकी तुष्टि है ॥ ४३ ॥

आध्यात्मिक आदि नव तुष्टियोंके भेद इस प्रकारसे हैं कि प्रकृति, उपादान, काल, भाग्य इन चार तुष्टियोंकी आध्यात्मिका संज्ञा है ये चार तुष्टियां व बाह्य विषय शब्द आदिमें अर्जन (लभकरना) रक्षण, क्षय, भोग, हिंसा, आदि दोष निमित्तकोंके उपरम (निवृत्ति होने) से तुष्टि होती है इन पांच सहित नव तुष्टियां हैं प्रकृति नामक जो तुष्टि है वह यह है कि, आत्माके साक्षात्कार होने पर्यंत जो परिणाम है उसमें यह मानना कि, 'सब प्रकृतिही करती है मैं कूटस्थ पूर्ण हुं' ऐसी आत्माकी भावना करनेसे जो परितोष होता है उसको प्रकृति तुष्टि कहते हैं व अम्भ भी कहते हैं और उससे सन्यास ग्रहण करनेसे जो तुष्टि होती है उसको उपादान तुष्टि व सलिल भी कहते हैं बहुत कालके समाधि व अनुष्ठानसे जो तुष्टि होती है उसको काल तुष्टि व तुष्टिरोध

कहते हैं प्रज्ञान परम काष्ठारूप धर्म मेघ्य समाधिमें जो तुष्टि होती है उसको भाग्य व वृष्टि कहते हैं ये चार आध्यात्मिक तुष्टियां कही जाती हैं और पांच जो पांच बाह्य विषयके अर्जन आदि दोष निमित्तककी निवृत्तिसे जैसा पूर्वही कहा गया है तुष्टियां होती हैं ये नव तुष्टी वा तुष्टियां हैं इनमें बाध होना नवतुष्टियोंकी अशक्ति कही जाती है ॥ ४३ ॥

ऊहादिभिः सिद्धिः ॥ ४४ ॥

ऊहा आदिकोंसे सिद्धि होती है ॥ ४४ ॥

ऊहा१ शब्द २ अध्ययन ३ आध्यात्मिक दुःखनाश ४ आधिभौतिक दुःख नाश ५ आधिदैविक दुःखनाश ६ सुहृत्प्राप्ति ७ दान ८ इन ऊहा आदिसे आठ सिद्धियां होती हैं यथा—विना उपदेश पूर्वसंस्कारके अभ्याससे आपसे तत्त्व विषयमें संभावना होना ऊहासिद्धि है, अन्यका पाठ सुनकर अपनेमें शास्त्र ज्ञान हो जाना शब्दसिद्धि है, शिष्य आचार्य भावकरके शास्त्र अध्ययनसे तत्त्वज्ञान होना अध्ययनसिद्धि है, अनायास अपने घरमें परम दयालु अपने उपदेशको प्राप्त होजानेसे उपदेश लाभ होना सुहृत्प्राप्ति सिद्धि है, धन आदि दानसे प्रसन्न करके उपदेश लाभ करना दानसिद्धि है, आध्यात्मिक आधिदैविक अधिभौतिकका पूर्वही वर्णन किया गया है आध्यात्मिक आदि, दुःखोंका नाश होना आध्यात्मिक आदि सिद्धियां हैं, इनमें बाधा वा विघ्न होना अष्टसिद्धि अशक्ति कही जाती हैं ॥ ४४ ॥

शंका—ऊहा आदिहीसे अष्ट सिद्धियां क्यों कही गई हैं योगतपबलसे अणिमा आदि अष्टसिद्धियां होनेका प्रमाण है ? उत्तर—

नेतरादितरहानेन विना ॥ ४५ ॥

विना इतरके हान इतरसे भिन्न नहीं है ॥ ४५ ॥

इतरसे अर्थात् ऊहन आदि पांचसे भिन्न तप आदिसे तात्त्विकी सिद्धियां नहीं हैं क्यों नहीं हैं विना इतरके हान होनेसे अर्थात् इतर जो विपर्यय (असत् ज्ञान) है विना उसके हान (नाश) के वे सिद्धियां होती हैं इससे वे केवल संसारी मूढ जनोंको सिद्धियां भासित होती हैं परन्तु यथार्थ तात्त्विकी सिद्धियां नहीं हैं ॥ ४५ ॥

समष्टि सृष्टिका वर्णन करके अब व्यष्टि सृष्टिका वर्णन करते हैं–

दैवादिप्रभेदा: ॥ ४६ ॥

देव आदि हैं भेद जिसके ऐसी सृष्टि है ॥ ४६ ॥

दैव आदि भेद संयुक्त यह सृष्टि है अर्थात् ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाचकी सृष्टि दैवसृष्टि है, पशु, मृग, पक्षी, सर्प, स्थावर, यह तैर्यग्योनि सृष्टि है व मानुष्य एकही प्रकारकी सृष्टि है ये दैव आदि सृष्टिके भेद हैं ॥ ४६ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृता सृष्टिरा-विवेकात् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मासे स्थावर पर्यंत उससे कीगई सृष्टि विवेकपर्यंत पुरुषार्थरूप होती है ॥ ४७ ॥

ब्रह्मासे आरंभ करके स्थावर पर्यंत उससे अर्थात् प्रकृतिसे कीगई व्यष्टि सृष्टि भी समष्टिरूप विराट् सृष्टिके तुल्य पुरुषोंको विवेकपर्यंत पुरुषार्थके अर्थ होती है अर्थात् पुरुषार्थके लिये उपयोगी होती है ॥ ४७ ॥

ऊर्द्ध्वं सत्त्वविशाला ॥ ४८ ॥

ऊर्द्ध्वमें सत्त्वगुण अधिक युक्त सृष्टि है ॥ ४८ ॥

ऊर्ध्वमें भूर्लोकके ऊपर सत्त्वगुण अधिक युक्त सृष्टि है अर्थात् भूर्लोकके ऊपर जो सृष्टि है उसमें सत्त्वगुण अधिक है ॥ ४८ ॥

तमोविशाला मूलतः ॥ ४९ ॥

नीचे तमोगुण अधिक युक्त सृष्टि है ॥ ४९ ॥

भूर्लोकसे नीचे जो सृष्टि है उसमें तमोगुण अधिक है ॥ ४९ ॥

मध्ये रजोविशाला ॥ ५० ॥

मध्यमें रजोगुण अधिक युक्त सृष्टि है ॥ ५० ॥

मध्यमें भूर्लोकमें जो सृष्टि है उसमें रजोगुण अधिक है ॥ ५० ॥

शंका—प्रकृति एक है एकके चित्र विचित्र सृष्टि करनेका हेतु क्या है? उत्तर—

कर्मवैचित्र्यात्प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ॥५१॥

कर्मकी विचित्रतासे प्रधानकी चेष्टा गर्भदासके समान है ॥ ५१ ॥

विचित्र कर्म निमित्तहीसे प्रधान अर्थात् प्रकृति विचित्रकार्य करनेकी चेष्टा करती है जैसे जो आदि गर्भअवस्थासे दास है वह अपनी सेवा करनेकी प्रवीणतासे स्वामीके अर्थ नाना प्रकारकी चेष्टा सेवामें करता है ॥ ५१ ॥

आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः ५२ ॥

तिसमें भी आवृत्ति है एक एकसे उत्तर योनिके योग होनेसे त्यागके योग्य है ॥ ५२ ॥

तिसमें अर्थात् पूर्वोक्त ऊर्ध्व लोकमें अर्थात् स्वर्ग, महः, जनः, व तपलोकमें प्राप्त होनेमें भी आवृत्ति है वहाँसे फिर पतित होता है एक एकसे उत्तर अर्थात् फिर एक एकके पश्चात् योनिके योग होनेसे नीचेसे नीचेमें जन्म होनेसे ऊर्ध्वलोकभी त्यागके योग्य हैं ॥ ५२ ॥

समानं जरामरणादिजं दुःखम् ॥ ५३ ॥

जरा मरण आदिसे उत्पन्न दुःख समान है ॥ ५३ ॥

ऊर्ध्व व अधोगतवालोंको ब्रह्मासे स्थावरतकको जरामरणसे उत्पन्न दुःख सबको है इससे सब त्यागके योग्य हैं ॥ ५३ ॥

न कारणलयात्कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ॥ ५४ ॥

कारणमें लय होनेसे कृतार्थता (कृतार्थ होना) नहीं है मग्न (डूबेहुये) के समान फिर उठनेसे ॥५४॥

विना विवेक जब प्रकृतिके उपासनासे महत्तत्वादिमें वैराग्य होता है तब उपासक प्रकृतिमें लय होता है वैराग्यसे प्रकृतिमें लय होनेपर भी कृतार्थता नहीं होती जैसे जलमें डूबाहुवा फिर उठता है इसी प्रकारसे प्रकृतिमें लीनपुरुष ईश्वरभावसे अर्थात् ब्रह्मा विष्णु आदिरूपसे फिर उत्पन्न होते हैं विना विवेक कोई कर्म व उपासना दोष नाश करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ५४ ॥ अब यह शंका है कि, कारणरूप प्रकृति किसीका कार्य नहीं है कि अन्य कारणके अधीन हो स्वतंत्र होकर अपने उपासकोंका फिर दुःख निदानरूप उत्थानको क्यों करती है ? उत्तर—

अकार्यत्वेपि तद्योगः पारवश्यात् ॥ ५५ ॥

कार्य न होनेमें भी उसका योग है परवश होनेसे ॥ ५५॥

यद्यपि प्रकृति कार्य नहीं है तथापि कार्य न होनेमें भी उसका अर्थात् प्रकृतिमें लीनके फिर उत्थान होने अर्थात् उत्पन्न होनेका योग है क्यों योग है परवश होनेसे अर्थात् पुरुषोंके कर्मसंस्कार परपुरुषके अधीन होनेसे, भाव इसका यह है कि विना पुरुषोंके कर्मसंस्कार क

चेतन पर पुरुष (परमात्मा) के संयोग जड प्रकृति सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं है पुरुषोंके कर्मसंस्कार रूप अदृष्ट संयुक्त होनेपर भी जड प्रकृति विना चेतन पुरुषके संयोग सृष्टि नहीं करसकती इससे स्वतंत्र नहीं है । यद्यपि पुरुषके इच्छाके अधीन न होने व पुरुषके अकर्ता प्रतिपादन किये जानेसे स्वतंत्र कही गई है तथापि चेतनकी सन्निधि विना समर्थ न होनेसे स्वतंत्र (सर्वथा स्वतंत्र) नहीं है. परपुरुषकी सन्निधि मात्रसे विना इच्छा सम्बंध स्वाभाविक धर्मसे जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) से लोहा प्रेरित होकर क्रियामें प्रवृत्त होता है इसीप्रकारसे पुरुषसे प्रेरित प्रकृति सृष्टि उत्पत्तिमें प्रवृत्त होती है इससे कार्य न होनेपर भी पुरुषके अधीन है, जो यह संशय हो कि, यहाँ अयस्कांत (चुम्बक) के तुल्य प्रवृत्तिका निमित्त मात्र माननेका क्या हेतु है सूत्रमें परवश होना मात्र कहा है इससे परमात्मा ईश्वरकी इच्छाके अधीन प्रकृति है यही अर्थ ग्रहण करना योग्य है इसका उत्तर यह है कि पूर्वही अपनी इच्छासे सृष्टि उत्पन्न करनेवाला ईश्वर सिद्ध होनेका निषेध किया है ऐसा अर्थ ग्रहण करनेमें पूर्वापर विरोध होगा इससे अयस्कान्तहीके तुल्य पुरुषके प्रेरक होने व लोहेके तुल्य प्रकृतिका प्रवृत्त होनेमें अधीन मानना कहनेका अभिप्राय समझना उचित है परपुरुषकी सन्निधि व पुरुषोंके कर्म प्रकृतिके प्रवृत्त होनेमें प्रेरक होनेसे प्रकृतिमें लीन पुरुषोंके संस्कार क्षय न होनेसे प्रकृति उनको फिर उत्पन्न करती है अब वह परपुरुष जिसकी सन्निधि मात्रसे प्रेरित होनेसे प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करनेमें समर्थ होती है कैसा है यह बर्णन करते हैं ॥ ५५ ॥

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ॥ ५६ ॥

वह निश्चयसे सर्वज्ञ व सबका कर्ता है ॥ ५६ ॥

वह परपुरुष निश्चयसे सर्वज्ञान शक्तिमान् सर्वकर्तृत्व शक्तिमान् अर्थात्

सब करनेमें समर्थ है अर्थात् सर्वज्ञ तो अपने स्वरूपहीसे है व अयस्कान्तके तुल्य सन्निधिमात्रसे प्रेरक होनेसे व उसकी प्रेरणा व ज्ञान शक्तिको प्राप्त हो प्रकृति सम्पूर्ण सृष्टिका कारण होनेसे मुख्य आदिसृष्टिका निमित्त कारण पुरुषही सिद्ध होनेसे पुरुष सबका कर्ता है यह भाव है ॥ ५६॥

इसपर यह शंका होती है कि, पूर्वही यह कहा है कि ईश्वरका सृष्टिकरना सिद्ध नहीं होता और यहां सर्वज्ञ सर्वकर्ता कहनेसे ईश्वरके प्रतिषेधमें विरोध होगा इसके उत्तरमें यह कहा है कि-

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥ ५७ ॥

ऐसे ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध है ॥ ५७॥

इस प्रकारकी अर्थात् सन्निधि मात्रसे प्रकृतिका प्रेरक व सृष्टिका निमित्त कारण होनेवाले ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध है ऐसे ईश्वर माननेका प्रतिषेध नहीं किया गया अपनी इच्छासे सृष्टि उत्पन्न करनेवाला अथवा उपादानकारण होकर सृष्टि उत्पन्न करनेवाला ईश्वरके प्रमाणसे सिद्ध होनेका प्रतिषेध किया गया है यह अभिप्राय सूत्रका ग्रहण करना यथार्थ है बहुतेरे पूर्वसूत्र व इस सूत्रका अर्थ इस प्रकारसे कहते हैं कि-जो पूर्व सृष्टिमें उपासना व कर्म विशेषसे कारण (प्रकृति) में लीन हुए हैं वे सर्गान्तरमें अर्थात् अन्य सृष्टिमें सर्वज्ञ सर्वकर्ता ईश्वर ब्रह्म विष्णु आदि पुरुष होते हैं इस प्रकारके ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध है परन्तु ऐसा अर्थ ग्रहण करना यथार्थ नहीं है क्योंकि, जिनका जन्म व नाश है वे अपनी उत्पत्तिके आप अपने जन्मसे प्रथम कारण नहीं होसकते और जब आपही जन्म व नाशसे रहित नहीं हैं तौ स्वतंत्रभी नहीं हैं यह भी सिद्ध होता है स्वतंत्र न होने व सदा न होनेसे सर्वज्ञ व सर्वकर्ता व सर्व शक्तिमान् होना भी संभव नहीं है यद्यपि सिद्धरूप ईश्वरोंमें सृष्टिकी सामर्थ्य हो परन्तु अपनी उत्पत्तिसे पूर्व आदि सृष्टिमें सृष्टिके हेतु नहीं होसकते इससे

सिद्धरूप ईश्वरोंके माननेसे परमेश्वरका प्रतिषेध नहीं होसकता. न सूत्र कारका ऐसा भाव होना सिद्ध होता है ईश्वरके सर्वथा प्रतिषेधमें जो अर्थ इस शास्त्रके विशेष सूत्रोंका कहते वा समझते हैं वह केवल भ्रममात्र समझना चाहिये ॥ ५७ ॥

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वा-दुष्ट्रकुंकुमवहनवत् ॥ ५८ ॥

आपसे करनेपरभी अर्थात् प्रधानका आपसे सृष्टि करनेपरभी, भोक्ता होनेका सामर्थ्य न होनेसे ऊँट-का कुंकुम (केसर) लेचलनेके समान प्रधानकी सृष्टि परके (पुरुषके) लिये है ॥ ५८ ॥

जैसे ऊँट केसर लेचलता है परंतु उसका लेचलना अज्ञान होनेसे अपने भोगके अर्थ नहीं होता केवल स्वामीके अर्थ होता है इसी प्रकारसे प्रधानका सृष्टि करना परके अर्थ अर्थात् पुरुषकेलिये है ॥ ५८ ॥

शंका—अचेतन प्रधानका आपसे सृष्टि करना संभव नहीं है ? उत्तर—

अचेतनत्वेपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ॥ ५९ ॥

अचेतन होनेमें भी क्षीरके समान प्रधानका चेष्टित कार्य होता है ॥ ५९ ॥

जैसे क्षीर विना चेतन पुरुषके प्रयत्न आपसे दधिरूप होजाता है इसी प्रकारसे अचेतन प्रधानकाभी आपसे विना दूसरेके प्रयत्न महत्तत्त्व आदिके रूपमें परिणाम होता है ॥ ५९ ॥

कर्मवद्दृष्टेर्वा कालादेः ॥ ६० ॥

अथवा काल आदिके कर्मके समान देखने (जानने) से ॥ ६० ॥

अथवा काल आदिके कर्मके तुल्य प्रधानका आपसे चेष्टाकरना सिद्ध होता है अर्थात् यह देखनेसे कि एक काल जाता है दूसरा आपसे विना उनके प्रयत्न आता है इसी प्रकारसे आपसे अर्थात् स्वभावसे विना चेतनके प्रयत्न प्रकृतके कर्म करनेका अनुमान होता है ॥ ६० ॥

स्वभावाच्चेष्टितमनभिसंधानाद्भृत्यवत् ॥ ६१ ॥

विना अभिसंधान सेवकके समान स्वभावसे चेष्टित है ॥ ६१ ॥

जैसे अच्छा सेवक स्वभाव (संस्कारही) से आवश्यक जो प्रतिदिनकी नियत अपने स्वामीकी सेवा है उसमें प्रवृत्त होता है अपने भोगके मनोरथ वा प्रयोजनसे प्रवृत्त नहीं होता इसी प्रकारसे संस्कार स्वभावहीसे पुरुषके लिये प्रकृतिका चेष्टित कर्म है ॥ ६१ ॥

कर्माकृष्टेर्वानादितः ॥ ६२ ॥

अथवा कर्मके आकर्षणके अनादिसे ॥ ६२ ॥

कर्मके अनादि होनेसे अनादि कर्म संस्कारके आकर्षणसे भी प्रधानकी आवश्यकी व्यवस्थित प्रवृत्ति है ॥ ६२ ॥

विविक्तबोधात्सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत्पाके ॥ ६३ ॥

विविक्त पुरुषके ज्ञान होनेसे पाकमें रसोई बनानेवालेक सदृश प्रधानके सृष्टिकी निवृत्ति होती है ॥ ६३ ॥

पुरुषके पृथक् होनेके ज्ञान होनेसे पर वैराग्यसे पुरुषके अर्थ समाप्त होनेपर प्रधानके सृष्टि व्यापारकी निवृत्ति होती है जैसे पाक सिद्ध होजाने पर पाक बनानेवालेका व्यापार निवृत्त होजाता है इसीको अत्यन्त प्रलय कहते हैं ॥ ६३ ॥

शंका—एकही पुरुषकी उपाधिमें विवेक ज्ञान उत्पन्न होनेसे प्रकृतिकी सृष्टि निवृत्ति होनेपर सबकी मुक्ति होना चाहिये ? उत्तर—

इतर इतरवत् तद्दोषात् ॥ ६४ ॥

इतर इतरके तुल्य उसके दोषसे ॥ ६४ ॥

इतर जो विविक्त ज्ञानरहित है वह अज्ञान अज्ञानके तुल्य बद्ध रहता है क्यों बद्ध रहता है उसके प्रकृतिके दोषसे अर्थात् अज्ञानके प्रकृतिके दोष निवृत्त न होनेसे अज्ञान बद्ध रहता है ॥ ६४ ॥

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ॥६५॥

दोनों वा एकका उदासीन होना मोक्ष है ॥ ६५ ॥

दोनों प्रकृति व पुरुषका उदासीन होना अर्थात् परस्पर वियोग होना अथवा एक पुरुषहीका उदासीन होना कि, 'मैं मुक्तहोऊं' यही पुरुषार्थता है यह विचारकर प्रकृति संयोगसे निवृत्त होना मोक्ष है ॥ ६५ ॥

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यते प्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्यैवोरगः ॥६६॥

अन्यके सृष्टि उपरागमें विरक्त नहीं होती यथा केवल रस्सीके ज्ञान प्राप्त हुएको सर्प ॥ ६६ ॥

तत्त्वज्ञान जिसको प्राप्त हुआ उससे विरक्त होने अथवा पृथक् होजाने पर भी प्रकृति अन्य मूढ (अज्ञानी) पुरुषमें सृष्टि उपरागके लिये विरक्त नहीं होती अर्थात् मूढके अर्थ सृष्टि उत्पन्न करती है जैसे केवल उसी पुरुषको जिसको 'सर्प नहीं रस्सी है' यह बोध होगया है सर्प-बोध वा भ्रम रस्सीमें भ्रमसे सर्पआकार भयको उत्पन्न नहीं करता मूढ जिसको बोध नहीं हुआ उसको उत्पन्न करता है ॥ ६६ ॥

कर्मनिमित्तयोगाच्च ॥ ६७ ॥

कर्मनिमित्त योगसे भी ॥ ६७ ॥

सृष्टि होनेमें निमित्त जो कर्म है उसके संबंधसे भी बद्ध मूढ पुरुषके अर्थ सृष्टि करती है ॥ ६७ ॥

अब यह शंका है कि, विना सब पुरुषोंकी प्रार्थना बिना अपेक्षा विशेष किसीमें प्रधानकी प्रवृत्ति किसीमें निवृत्ति होती है इसमें नियामक क्या है किस पुरुषका कौन कर्म है इसमें कोई नियामक न होनेसे कर्मका कोई नियामक नहीं है वा ज्ञात नहीं होता ? इसके उत्तरमें यह कहाहै–

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ॥ ६८ ॥

अपेक्षा न होनेमें भी प्रकृतिके उपकारमें अविवेक निमित्त है ॥ ६८ ॥

पुरुषोंको अपेक्षा न होनेपर भी पुरुष व प्रकृतिमें भेद होनेका विवेक न होनेसे यह मेरा स्वामी है यही मैं हूँ, इस अविवेकहीसे प्रकृति सृष्टि आदिसे पुरुषोंका उपकार करती है जिस पुरुषमें व अपनेमें भेद ज्ञान होनेका विवेक प्रकृति नहीं देखती व उसमें अविवेक होनेसे वासना होती है उसीमें प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है इससे प्रकृतिकी प्रवृत्तिमें अविवेक निमित्त है यही नियामक है ॥ ६८ ॥

प्रश्न–प्रकृतिके प्रवृत्तिस्वभाव होनेसे विवेक होनेपर भी निवृत्ति होना संभव नहीं होता प्रकृतिकी निवृत्ति कैसे होती है ? उत्तर–

नर्तकीवत्प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ॥ ६९ ॥

नर्तकी (नाचनेवाली) के तुल्य चरितार्थ (किये गयेकी सिद्धि) होनेसे प्रवृत्तकी भी निवृत्ति होती है ॥ ६९ ॥

प्रधानका सामान्यसे प्रवृत्ति स्वभाव नहीं है जिसका निवृत्त होना संभव न हो प्रधानका प्रवृत्त होना केवल पुरुषके निमित्त है इससे पुरुषार्थ समाप्तिरूप चरितार्थ होनेमें प्रवृत्त प्रधानकी निवृत्ति युक्त है यथा नर्तकी जो नृत्य दर्शनके अर्थ प्रवृत्त होती है नृत्यका मनोरथ सिद्ध होनेपर निवृत्त होती है ॥ ६९ ॥

दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ॥ ७० ॥

दोष बोध होनेहीमें कुलवधूके समान प्रधानका उपसर्पण (पासजाना) नहीं होता ॥ ७० ॥

परिणामी होना दुःखात्मक होना आदि प्रकृतिके धर्म पुरुषसे देखे जानेसे अर्थात् समझे जानेसे लज्जाको प्राप्त प्रकृतिका फिर पुरुषके पास जाना नहीं होता जैसे कुलवधू यह जानकर कि, 'मेरा स्वामी मेरा दोष जान लिया' लज्जित कुलवधू स्वामीके पास नहीं जाती अर्थात् प्रकृतिका दुःखात्मक होनेका बोध होनेसे फिर पुरुष बंधको नहीं प्राप्त होता ॥ ७० ॥

नैकान्ततो बंधमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ॥ ७१ ॥

विना अविवेक पुरुषको एकान्त (एकरस) से बंध व मोक्ष नहीं है ॥ ७१ ॥

दुःखके योग व वियोग रूप जो बंध व मोक्ष हैं वे पुरुषको तत्त्वसे सदा नहीं हैं केवल अविवेकसे हैं विनां अविवेक पुरुषको बंध नहीं है ॥ ७१ ॥

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससंगत्वात्पशुवत् ॥७२॥

प्रकृतिहीके साथ संग होनेसे तत्त्वसे दुःखसे पशुके सदृश बंध होताहै ॥ ७२ ॥

प्रकृतिहीके साथ संग होनेसे अर्थात् दुःख साधन धर्मोंके साथ लिप्त होनेसे तत्त्वसे दुःखसे बंध होता है अन्यथा नहीं. तथा; संग रहित होनेसे मोक्ष होता है यथा रस्सीके संग वा सम्बंध, होनेसे पशुका बंध व संग रहित होनेसे मोक्ष होता है ॥ ७२ ॥

रूपैस्सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोश-कारवद्विमोचयत्येकरूपेण ॥ ७३ ॥

आत्माको कुसियारीके कीडेके समान सातरूपसे प्रकृति बांधती हे व एकरूपसे छोडाती है ॥ ७३ ॥

धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य इन सात रूप दुःख हेतुओंसे प्रकृति आत्माको बांधती है जैसे कुसियारीका कीडा अपने बनायेहुए वासस्थानसे अपने आत्माको बांधती है वही प्रकृति एकरूपसे अर्थात् केवल एक ज्ञानसे दुःखसे आत्माको छोडाती है ॥ ७३ ॥

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः ॥७४ ॥

अविवेकके निमित्त होनेसे दृष्टकी हानि नहीं है ॥ ७४ ॥

बंध व मुक्ति होना जो अविवेकसे कहा है उसमें यह शंका निवारणके अर्थ कि वंध व मुक्ति अविवेकसे कहना यथार्थ नहीं है क्योंकि

अविवेक न त्यागके योग्य है न ग्रहणके योग्य है लोकमें यह दृष्ट (देखा गया वा विदित) है कि, दुःख व उसका अभाव जो सुखहै उसीसे आपही त्याग व ग्रहणके योग्य होना विदित होता है अन्यथा दृष्टकी हानि है अर्थात् प्रत्यक्षसे सिद्ध हुएकी हानि है, सूत्रमें यह कहा है कि पुरुषमें अविवेक बंध मोक्षका निमित्त होना मात्र कहा गया है अविवेकही बंध व मोक्ष नहीं है इससे अविवेकके निमित्त मात्र होनेमें दृष्टकी हानि नहीं है ॥ ७४ ॥

अब विवेक सिद्ध होनेके उपायमें अभ्यासका वर्णन किया जाता है.

तत्त्वाभ्यासान्नेतिनेतीतित्यागाद्विवेकासिद्धिः ॥ ७५ ॥

यह नहीं है यह नहीं है इस त्यागरूप तत्त्वअभ्याससे विवेककी सिद्धि है ॥ ७५ ॥

प्रकृतिपर्यन्त जड पदार्थोंमें यह नहीं है यह नहीं है (यह आत्मा नहीं है) इस अभिमान त्यागरूप तत्त्वके अभ्याससे आत्माके विवेककी सिद्धि होती है अर्थात् यह विचार करनेसे कि, यह मैं नहीं हूँ यह शरीर जो अस्थि नाडी मांस लोहूसे बना चर्मसे बँधा मूत्रपुरीषसे पूर्ण दुर्गंध युक्त जरा शोकसे व्याप्त रोगका स्थान है यह मिथ्या नाशमान व निषिद्ध है यह मैं नहीं हूँ इस शरीरमें मोहित होना अज्ञान मात्र है यथा नदीके कँगारके वृक्ष अथवा वृक्षके पक्षीका कँगार व वृक्षसे वियोग होता है इसी प्रकारसे इस देहसे वियोग अवश्य होना है और देहसे भिन्न यावत् पदार्थ हैं इन सब नाश होनेवालोंसे 'मैं भिन्न हूँ' ऐसी भावना करनेके अभ्याससे आत्माके विवेककी सिद्धि होती है ॥ ७५ ॥

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः ॥ ७६ ॥

अधिकारियोंके भेदसे नियम नहीं है ॥ ७६ ॥

मन्द आदि अधिकारियोंके भेद होनेसे अभ्यास करनेमें इसी जन्ममें क्रियमाण अभ्यासमें विवेककी सिद्धि होती है यह नियम नहीं है इससे अभ्यासमें परिश्रम व साधन विचार विशेष करके आत्मज्ञानमें उत्तम अधिकार प्राप्त करना उचित है ॥ ७६ ॥

बाधितानुवृत्त्या मध्यविवेकतोऽप्युप-भोगः ॥ ७७ ॥

बाधितोंकी अनुवृत्तिसे मध्य विवेकसे भी उप-भोग है ॥ ७७ ॥

मन्द, मध्यम, उत्तम विवेकके भेद हैं उत्तम विवेकसे भी असम्प्रज्ञात योग होता है जिसमें सब वृत्तियोंका निरोध होजाता है उससे मोक्ष होता है फिर दुःख नहीं होता व सम्प्रज्ञात योगमें वृत्तियोंका संस्कार सम्बन्ध रहताहै इससे प्रारब्धवशसे फिर दुःख प्राप्त होताहै इससे यह कहा है कि, बाधित जो दुःख आदि हैं उनकी अनुवृत्तिसे अर्थात् नाश होनेके पश्चात् फिर प्राप्त होनेसे मध्यम विवेकसे भी उपभोग है अर्थात् मन्दविवेक जिसमें आत्मसाक्षात्कार नहीं होता वह तो उपभोगही है उसमें दुःख निवृत्त नहीं होता मध्यम विवेक जिसमें कहीं सम्प्रज्ञात योगसे आत्मसाक्षात्कार होता है और दुःखसे निवृत्त होजाता है उसमें भी संस्कारका नाश नहीं होता प्रारब्ध वशसे फिर दुःख प्राप्त होता है इससे उत्तम विवेकहीसे मोक्ष होना सिद्ध होता है अन्यथा नहीं यह भाव है ॥ ७७ ॥

जीवन्मुक्तश्च ॥ ७८ ॥

जीवन्मुक्त भी ॥ ७८ ॥

जीवन्मुक्त भी मध्यमविवेकमें स्थित होता है जीवन्मुक्तमें प्रमाण कहते हैं ॥ ७८ ॥

उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धिः ॥ ७९ ॥

उपदेशके योग्य व उपदेश करनेवालेके भावसे उसकी सिद्धि है ॥ ७९ ॥

शास्त्रमें विवेक विषयमें उपदेश करनेवाला गुरु व उपदेशके योग्य जो शिष्य है इन दोनोंके भावसे अर्थात् गुरु व शिष्यके भावसे जीवन्मुक्तका मध्यम विवेकवान् होना सिद्ध होता है उपदेश करनेवालेके उपदेशसे जीवन्मुक्त होनेकी सिद्धि कहनेसे यह अभिप्राय सूचित होता है कि, जीवन्मुक्तहीका उपदेश कनरेमें अधिकार है ॥ ७९ ॥

श्रुतिश्च ॥ ८० ॥

श्रुति भी ॥ ८० ॥

श्रुति भी जीवन्मुक्त होनेमें प्रमाण है यथा "ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति" इत्यादि। अर्थ-ब्रह्महीं हो ब्रह्ममें लय होता है अर्थात् ब्रह्मभाव व प्रेममें मग्न हो ब्रह्ममें लय होता है इत्यादि ॥ ८० ॥

शंका-मध्यमविवेकवान् जीवन्मुक्तहीका उपदेष्टा होना कहाहै मन्द विवेकवान्के उपदेश करनेमें क्या हानि है ? उत्तर-

इतरथान्धपरम्परा ॥ ८१ ॥

अन्यथा अन्धपरंपरा होनेकी प्राप्ति है ॥ ८१ ॥

अन्यथा अर्थात् मध्यम विवेकवान्के उपदेशक न होने व मन्दविवेकवान्के उपदेशक होनेमें अन्धपरम्पराकी प्राप्ति होगी क्योंकि मन्दविवेकवान् उपदेश करनेवालेहीको जब यथार्थ बोध नहीं है तो जिस अंशमें उसको निश्चय है उसमें यथार्थ उपदेश करेगा और जिसमें उसीको भ्रम है उसमें मिथ्या उपदेश करेगा शिष्यको भी भ्रांतियुक्त करदेवेगा फिर वह अन्यको भ्रांत करेगा इसी प्रकारसे एक दूसरेमें अंधपरम्पराकी प्राप्ति होगी इससे जीवन्मुक्त मध्यम विवेकवान् ही उपदेश कर्त्ता होना योग्य है ॥ ८१ ॥

शंका-ज्ञानसे कर्मक्षय होजानेपर फिर जीवन्मुक्त कैसे जीवन धारण करता है क्योंकि विना कर्म शरीर न रहना चाहिये ? उत्तर-

चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः ॥ ८२ ॥

चक्रभ्रमणके तुल्य शरीर धारण करता है ॥ ८२ ॥

जैसे कुम्हारके कर्म निवृत्त होजानेपरभी पूर्व कर्मके वेगसे आपही कुछ कालतक चक्र (कुम्हारका चाक) घूमता रहता है इसी प्रकारसे ज्ञान होनेसे कर्म निवृत्त हो जानेपरभी प्रारब्ध कर्मोंके संस्कार वेग करके (वेगसे) जीवन्मुक्त शरीर धारण किये रहता है ॥ ८२ ॥

संस्कारलेशात्तत्सिद्धिः ॥ ८३ ॥

संस्कारलेशसे उसकी सिद्धि है ॥ ८३ ॥

संस्कारलेशसे अर्थात् किंचित् कर्म संस्कार होने अथवा रहनेसे उसकी अर्थात् शरीर होनेकी सिद्धि है अर्थात् जब सर्वथा कर्मसंस्कारका नाश होता है तब शरीर धारण नहीं होता और जो कुछभी संस्कार रहता है तो फिर जन्म होता है ॥ ८३ ॥

विवेकान्निश्शेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात् ॥ ८४ ॥

विवेकसे सर्वथा दुःख निवृत्त होनेमें कृतकृत्यता (कृतार्थ होना) है दूसरेसे नहीं दूसरेसे नहीं ॥ ८४ ॥

विवेकसे परम वैराग्यद्वारा सब वृत्तियोंका निरोध होनेसे जब सब दुःखोंसे छूटता है तभी पुरुष कृतार्थ होता है औरसे जीवन्मुक्ति आदिसे भी कृतार्थ होना संभव नहीं है इससे कहा है कि, केवल विवेकसे कृतार्थ होना सिद्ध होता है दूसरे उपायसे पुरुष कृतार्थ नहीं होता यह निश्चय है दूसरेसे नहीं यह दो वार कहना अध्यायकी समाप्ति सूचनके अर्थ है ॥ ८४ ॥

इति श्रीप्यारेलालात्मजर्बांदामण्डलान्तर्गततेरहित्याख्यग्रामवासिश्रीप्रभुदयालुशास्त्रविन्निर्मिते सांख्यदर्शन देशभाषाभाष्ये वैराग्याध्यायस्तृतीयः॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

विवेकसे ज्ञान साधनेके वर्णनमें चतुर्थाध्यायका प्रारंभ किया जाताहै व साधारण समझनेके लिये विवेक ज्ञान साधनमें दृष्टांत इतिहास सहित वर्णन करते हैं-

राजपुत्रवत्तत्त्वोपदेशात् ॥ १ ॥

राजाके पुत्रके समान तत्त्व उपदेशसे ॥ १ ॥

राजाके पुत्रके समान तत्त्वउपदेशसे विवेक उत्पन्न होता है यह सूत्रका अर्थ है विवेक होनेका अर्थ पूर्व अध्यायके सम्बंधसे ग्रहण किया जाता है राजाके पुत्रके तुल्य कहनेसे इस इतिहाससे अभिप्राय है कि कोई राजाका पुत्र किसी दोष विशेषसे जब वह छोटाथा किसीके साथ निकाल दिया गयाथा उसको किसी चांडालने लेकर पालन पोषण किया चाण्डालके गृहमें रहनेसे अज्ञानवश उसने अपनेको भी चाण्डाल मान लिया कुछ कालगत हुए कोई इसके हालके जाननेवालेने आकर कहा कि 'हे बालक तू राजपुत्र है चाण्डाल नहीं है' यह सुनकर वह उसी क्षण चाण्डालका अभिमान छोडकर सच्चा जो राजा होनेका भावथा उसको प्राप्त हुवा कि, मैं राजाहूं' इसी प्रकारसे परिपूर्ण चेतन अविनाशी शुद्ध निर्विकाररूप तू है प्रकृतिरूप नहीं है यह तत्त्व उपदेश करुणावान् गुरुसे सुनकर प्रकृति अभिमानको छोडकर 'मैं ब्रह्मरूप हूं अर्थात् तत्त्व पदार्थ वा जातिसे एकही होनेसे उससे विजातीय संसारी नहीं हूं' ऐसा जानकर अपने स्वरूपको आलम्बन करता है ॥ १ ॥

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ॥ २ ॥

पिशाचके समान अन्यके अर्थ उपदेशमें भी ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी अन्यके अर्थ अर्थात् अर्जुनके लिये उपदेश करते थे वहां समीपही एक पिशाच था अर्जुनके अर्थ जो उपदेश कियागया उसके सुननेसे पिशाचको विवेक उत्पन्न होगया अन्यके लिये उपदेश होनेमें भी पिशाचके तुल्य समीपस्थको विवेक उत्पन्न होता है इससे सज्जन महात्माओंके समीप जाना सत्संग करना उचित है यह भाव है ॥ २ ॥

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ३ ॥

अनेकवारके उपदेशसे आवृत्ति करना चाहिये ॥ ३ ॥

एक वारके उपदेशसे ज्ञान न होनेसे उपदेशकी आवृत्ति अर्थात् फिर फिर चिन्तन करना चाहिये क्योंकि छान्दोग्य आदिमें जो इतिहास श्वेतकेतु आदिके हैं उनमें अनेकवार वारम्वार चिन्तन व मनन करनेका उपदेश है इससे आवृत्ति करना आवश्यक है आवृत्ति करना चाहिये ॥ ३ ॥

पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

पिता पुत्रके सदृश जाननेवाला होनेसे ॥ ४ ॥

अपने पिता व पुत्रके तुल्य अपना मरण व उत्पन्न होना जानलेनेसे (अनुमान करनेसे) वैराग्य सहित विवेक होता है अर्थात् विना अन्यके उपदेश अपने पिता व पुत्रहीके देखने व स्मरण करनेसे व यह विचारनेसे कि, जैसे मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है इसी प्रकारसे एक दिन मैं उत्पन्न हुआ हूंगा व जैसे मेरे पिताका मरण हुआ है इसी प्रकारसे मेराभी मरण होगा इससे वैराग्य सहित विवेक उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

श्वानवत् सुखिदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ॥ ५ ॥

कुत्ताके समान त्याग व वियोगसे सुखी व दुःखी होता है ॥ ५ ॥

परिग्रह न करना चाहिये क्योंकि द्रव्योंके त्यागसे लोक सुखी होता है वियोगसे दुःखी होता है जैसे कुत्ता मांसको लिये जाता है जो किसीने मारकर अथवा बली कुत्ता बलसे छीनलेताहै तो वह अति दुःखी होता है और जो आपसे छोड देता है तो दुःखसे छूटता है ॥ ५ ॥

अहिनिर्ल्वयिनीवत् ॥ ६ ॥

सांपकी केंचुलके समान ॥ ६ ॥

जैसे सांप पुरानी खाल (केंचुल) को छोड देता है इसीप्रकारसे मुमुक्षु (मोक्षका इच्छा करनेवाला) प्रकृतिको बहुतकाल भोग कीहुई जीर्ण त्यागके योग्य जानकर त्याग करता है ॥ ६ ॥

छिन्नहस्तवद्वा ॥ ७ ॥

अथवा छिन्न हस्तके समान ॥ ७ ॥

अथवा जैसे कटेहुये हाथको फिर कोई अंगीकार नहीं करता न उसका कोई अभिमान करता है इसी प्रकारसे त्याग की हुई प्रकृतिका फिर ज्ञानी अभिमान नहीं करता ॥ ७ ॥

असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ॥८॥

असाधनमें अनुचिन्तन करना भरतके तुल्य बंधके अर्थ होता है ॥ ८ ॥

विवेक जो अंतरंग साधन अंतःकरणसे नहीं होता तो यद्यपि धर्म होवे तो भी अनुष्ठान करनेवालेके बंधका कारण होता है जैसे जडभरतने दया करके हरिणके बच्चाका पोषण किया वह दया उन्हींके बंधकी कारण हुई इससे विना विवेक धर्म कर्मका अनुष्ठानभी भरतके तुल्य बंधका हेतु होता है ॥ ८ ॥

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशंखवत् ॥ ९ ॥

बहुतके साथ योग होनेसे राग आदिसे कुमारीके चूडियोंके समान विरोध होता है ॥ ९ ॥

बहुतसे संग न करना चाहिये क्योंकि बहुतके संगमें राग आदिकोंसे कलह होता है वह कलह योगको भ्रष्ट करता है, जैसे कुमारीके हाथकी चूडी इस कुमारीके हाथकी चूडियोंके दृष्टांतका व्याख्यान यह है कि, एक कुमारीके घरमें महिमान आये महिमानोंके लिये कुमारी धान कूटने लगी कूटनेमें उसकी चूडियां झनकार करतीथीं उसको यह लज्जा होतीथी कि, महिमान मेरी चूडियोंका शब्द सुनकर यह समझेंगे कि, इसके घरमें कुछ और अन्न नहीं है और रंक है इससे अपने हाथसे धान कूटती है इस लज्जासे वह एक एक फोर चली जब दो रहगईं तवतक शब्द होना वंद न हुआ जब एक रहगई तब शब्द होना बंद होगया उसको सुख हुआ इच्छानुसार अपना काम किया इसी-प्रकारसे एकाकी होनेमें योगीको सुख होता है संगमें कलह व दुःख होता है ॥ ९ ॥

द्वाभ्यामतितथैव ॥ १० ॥

दोके साथ भी उसीप्रकारसे ॥ १० ॥

जो यह समझा जाय कि, बहुतसे संग न करना चाहिये दो होनेमें हानि नहीं है तो दो होनेमें भी हानि होना जानकर संगका निषेध किया है कि दोके साथमेंभी उसीप्रकारसे कलह व विरोध होता है इससे एका-न्तमें एकाकी रहना चाहिये ॥ १० ॥

निराशः सुखी पिङ्गलावत् ॥ ११ ॥

आशा रहित पिंगला वेश्याके समान सुखीहोवे॥ ११॥

आशाको त्याग करके पुरुष सन्तोषको प्राप्त हो सुखको लाभ करे जबतक आशा त्याग नहीं करता सुखको नहीं प्राप्त होता जैसे एक

पिंगला नाम वेश्या एक दिन कान्तकी इच्छा करती रही परन्तु कोई उसदिन उसके मनोरथ पूर्ण करनेको न आया तब उसको बडा खेद हुआ कुछ कालमें खेदके पश्चात् उसको ज्ञान हुआ कि, तुच्छ मनुष्यों-की आशा करके मैं सब जन्म गतकर दिया मनुष्योंकी आशासे कुछ नहीं है ऐसा विचारकर आशाको छोड दिया. जबतक वह आशा करती रही नींद न आई दुःखी रही जब आशा त्याग कर दिया सुखपूर्वक सो-गई आशा त्यागनेसे यथा पिंगला सुखी हुई है तथा आशा त्यागकर पुरुष सुखी होवे यह उपदेश है ॥ ११ ॥

अनारंभेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ॥ १२ ॥

विना घर बनायेभी सर्पके तुल्य परके घरमें सुखी होवे ॥ १२ ॥

ज्ञानी घर बनानेका आरंभ न करे विना घर बनाये सर्पके तुल्य सुखी रहे सर्प जहां छिद्र पाता है वहां घर बना लेता है इसी प्रकारसे ज्ञानी जहां पहुँच जाय वहीं घर है परके घरमें सुखी रहे ॥ १२ ॥

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादानं षट्-पदवत् ॥ १३ ॥

बहु शास्त्र व गुरु उपासनमें भी भ्रमरके समान सारका ग्रहण करे ॥ १३ ॥

जैसे भ्रमर फूलोंसे सारको ग्रहण करता है इसी प्रकारसे विवेकी सब शास्त्रों व गुरुके उपदेशमें सारको ग्रहण करे ॥ १३ ॥

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः॥ १४॥

बाण बनानेवालेके समान एकाग्रचित्त हुएकी समाधिकी हानि नहीं होती ॥ १४ ॥

यथा एक बाणका बनानेवाला बाणको बना रहा था उसी समयमें एक राजा बडी भीड समेत पाससे चलागया उसने न जाना इसी प्रकारसे जिसका अच्छे प्रकारसे एकाग्र चित्त हो जाता है उसका चित्त अन्य विषयोंमें नहीं जाता व एकाग्रताहीसे समाधिके द्वारा विवेकके साक्षात्कार होनेकी सिद्धि होती है ॥ १४ ॥

कृतनियमोल्लंघनादानर्थक्यं लोकवत् ॥ १५ ॥

कृत नियमके उल्लंघनसे लोकके समान अनर्थक होता है ॥ १५ ॥

शास्त्रमें जो नियम योगियोंके लिये किया है उस कृत नियमके उल्लंघनमें ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती उल्लंघन करनेसे केवल अनर्थक होता है जैसे लोकमें भोजन आदिमें जो विहित पथ्य है उसके उल्लंघनसे रोगनाशकी सिद्धि नहीं होती ॥ १५ ॥

तद्विस्मरणेपि भेकीवत् ॥ १६ ॥

उसके भूलनेमें भी भेकीके समान ॥ १६ ॥

उसके अर्थात् नियमके भूलनेमें भी अनर्थ होता है जैसा कि, भेकीका दृष्टांत है इसकी कथा यह है कि, कोई राजा शिकार खेलने गयाथा वहाँ एक मायारूपिणी सुन्दरी कन्याको देखा राजा उसकी सुन्दरताको देखकर उससे अपनी भार्या होनेकी प्रार्थना किया उस कन्याने अंगीकार किया परंतु यह नियम किया कि, जब तुम मुझे जल दिखाओगे तब मैं जलमें प्रवेश करजाऊंगी एक समय क्रीडा करके दोनों श्रमित भये उस कन्याने कहा कि, जल कहाँ है राजाको जो उसके किये हुए नियमको भूलकर जल देखाया कि, 'यह जल है' जल दिखातेही वह कन्या मायारूपा इच्छाचारी भेकी रूप हो जलमें प्रवेश करगई राजाने बहुत प्रकारसे जलमें खोजा परन्तु उसका कुछ पता न लगा जिस प्रकारसे राजाको नियम भूलनेसे अत्यंत दुःख हुवा, इसी प्रकारसे नियम भूलनेसे योगमें अनर्थ होता है यह अभिप्राय है ॥ १६ ॥

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ॥ १७ ॥

विना परामर्श (विचार) विरोचनके सदृश उपदेश श्रवणमें भी कृतार्थता नहीं है ॥ १७ ॥

विना परामर्श अर्थात् गुरुवाक्यके तात्पर्यनिर्णय करनेवाले विचारके उपदेश वाक्य सुननेमें भी तत्वज्ञान होनेका नियम नहीं है ब्रह्माके उपदेश सुननेमें इन्द्र व विरोचन दोनोंमेंसे विरोचनको परामर्शके अभावसे भ्रान्ति बनी रही इससे गुरुके उपदेशमें मनन करना भी आवश्यक है केवल सुननेसे कृतार्थता नहीं होती अर्थात् सुनलेनेसे कोई कृतार्थ नहीं होजाता॥ १७॥

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ॥ १८ ॥

उन दोनोंके मध्यमें इन्द्रका परामर्श जानागया ॥ १८॥

उन दोनों इन्द्र व विरोचनमेंसे केवल इन्द्रका परामर्श जानागया इन्द्रमें परामर्श होनेसे उपदेशका बोध हुआ, विरोचनको परामर्शके अभावसे उपदेशका बोध न हुआ इससें परामर्श आवश्यक है ॥ १८ ॥

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात्तद्वत् ॥ १९ ॥

बहुकालसे प्रणति ब्रह्मचर्य (वेदाध्ययन) व सेवा करके उसके समान सिद्धि होती है ॥ १९ ॥

बहु कालसे प्रणति (नम्रता) वेदाध्ययन व सेवा करके अर्थात् बहुतकाल गुरुकी सेवासे उसके समान अर्थात् इन्द्रके समान अन्यको भी सिद्धि (तत्त्वज्ञानकी सिद्धि) होती है ॥ १९ ॥

न कालनियमो वामदेववत् ॥ २० ॥

वामदेवके सदृश कालका नियम नहीं है ॥ २० ॥

पूर्वजन्मके साधनके संस्कारसे शीघ्र (जल्दी) भी सिद्धि होती है सबको बहुतकालका नियम नहीं है यथा वामदेवको जन्मान्तरके साधनसे गर्भहीमें ज्ञान उदय हुवा और यह कहा "अहं मनुरभवं सूर्यश्च" इति ।

अर्थ–मैं मनु हुआथा और सूर्य हुआथा इस प्रकारसे जन्मान्तरका ज्ञान व ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ यह श्रुति बृहदारण्यकमें है इसी प्रकारसे जन्मान्तरके साधनसे अन्यको भी शीघ्रही तत्त्वज्ञान हो सकता है॥२०॥

अध्यस्तरूपोपासनात्पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ॥ २१ ॥

अध्यस्तरूपोंके उपासनासे परम्पराक्रम होनेके द्वारा यज्ञ उपासकोंके समान ॥ २१ ॥

अध्यस्तरूप जो ब्रह्मा विष्णु हर आदि है उनके उपासकोंको परम्परा क्रमसे यज्ञ उपासकोंके तुल्य उच्चलोकोंकी अर्थात् ब्रह्म आदिलोकोंकी क्रमसे प्राप्ति होती है अथवा सत्त्व शुद्धिद्वारा क्रमसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है परन्तु साक्षात् ज्ञानकी सिद्धि नहीं है इससे साक्षात् ज्ञानकी सिद्धि शुद्ध परमात्मज्ञानहीसे है ॥ २१ ॥

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पंचाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ॥ २२ ॥

इतरके लाभ होनेपर भी आवृत्ति होती है पंचाग्नि योगसे जन्म सुननेसे ॥ २२ ॥

निर्गुण आत्मासे इतर जो अध्यस्तरूप ब्रह्मलोक पर्यंतहैं उनके लाभ होनेपर भी फिर आवृत्ति होती है अर्थात् फिर जन्म आदि व दुःखकी प्राप्ति होती है किस प्रमाणसे आवृत्ति होनेकी सिद्धि है पंचाग्नियोगसे

जन्म सुननेसे अर्थात् छान्दोग्य उपनिषद्के पंचम प्रपाठकमें यह वर्णन किया है कि, देवयानमार्गसे ब्रह्मलोकमें प्राप्त हुवा जो पुरुष है उसकाभी स्वर्ग, मेघ, पृथ्वी, देवता, स्त्रीरूप, पंच अग्निमें आहुति होनेसे फिर जन्म होता है और जो ब्रह्मलोकसे आवृत्ति न होनेमें वाक्य है वह जिसको ज्ञान उत्पन्न है उसके विषयमें है जो प्रकृति कार्य विषयमें बँधा व तत्त्व-ज्ञान रहित है उसके लिये नहीं है ॥ २२ ॥

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयमुपादानं हंसक्षीरवत् ॥ २३ ॥

विरक्तका त्यागके योग्यका त्याग करना व ग्रहणके योग्यका ग्रहण करना हंसके क्षीर ग्रहण करनेके समान होता है ॥ २३ ॥

यथा हंस दूध व जलके एक भाव होनेपर अर्थात् दोनोंके मिलजानेपर असार जलको त्यागकर सार दूधको ग्रहण करता है इसी प्रकारसे विरक्तको हेय (त्यागके योग्य) जो प्रकृति है उसका त्याग व विवेकसे आत्मज्ञानका धारण वा ग्रहण होता है जैसे हंसही जलसे भिन्न करके दूधको ग्रहण करता है काक आदि नहीं करते इसी प्रकारसे विरक्तही आत्मज्ञानको धारण कर्ता है वा प्राप्त होता है अज्ञानी विषयी नहीं प्राप्त होता ॥ २३ ॥

लब्धातिशययोगाद्वा तद्वत् ॥ २४ ॥

जिसको अतिशय ज्ञान प्राप्त है उसके योगसे भी उसके समान होता है ॥ २४ ॥

जिसने अतियोगसाधनसे अतिशय ज्ञान व अधिकारको लाभ किया है उसके संगसे भी उसके सदृश विवेक उदय होता है यथा अलर्कको दत्तात्रेय महात्माके संगमात्रसे आपसे विवेक उदय हुआ ॥ २४ ॥

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ॥२५॥

रागोपहत पुरुषके समीप शुक (सुवा) के सदृश कामाचारी न होना चाहिये ॥ २५ ॥

रागोपहत पुरुषके समीप अर्थात् जिसका चित्त राग करके ग्रस्त है अच्छे रूप आदि विषयके ग्रहणकी इच्छा युक्त है उसके समीप इच्छा अनुसार गमन न करना चाहिये यह अभिप्राय है क्योंकि उसके संगसे अपने चित्तको रागग्रस्त वा बद्ध होजानेका भय है; बँध जानेके भयसे इस प्रकारसे रागोपहतका संग न करना चाहिये जैसे बहेलिया अथवा अन्य मनुष्यसे बांधे जानेके भयसे शुकपक्षी इच्छासे गमन नहीं करता अथवा जैसे दानाके लालचमें शुक कामचारी हो (इच्छा अनुसार जाकर) फँस जाता है ऐसा कामचारी इन्द्रिय विषयमें न होना चाहिये ॥ २५ ॥

गुणयोगाद्बद्धः शुकवत् ॥ २६ ॥

गुणयोगसे शुकके समान बद्ध होता है ॥ २६ ॥

कामी विषयी पुरुषोंका संग न करना चाहिये क्योंकि उनहीके गुणोंके योगसे बद्ध होता है अर्थात् बँध जाता है यथा शुक पक्षी व्याधके गुण योग अर्थात् जाल रस्सीके योगसे बंध जाता है अथवा रूप गुणके योगसे रूपलोलुप पुरुषोंके बांधनेसे बँध जाता है ॥ २६ ॥

न भोगाद्रागशांतिर्मुनिवत् ॥ २७॥

मुनिके सदृश भोगसे रागकी शांति नहीं होती ॥ २७ ॥

विषयभोगसे यथा सौभरिमुनिके रागकी शांति नहीं हुई इसी प्रकारसे विषयभोगसे रागकी शांति नहीं होती. अर्थात् जो यह संकल्प करे कि अच्छेप्रकारसे भोगकरके जब चित्त शांत हो जायगा तब छोड-

देना होगा तो विषयभोगसे चित्त कभी शांत नहीं होता इच्छा बनीही रहती है केवल विवेक वैराग्यहीसे रागकी शांति होती है ॥ २७ ॥

दोषदर्शनादुभयोः ॥ २८ ॥

दोनोंमें दोष देखने (विचारने) से ॥ २८ ॥

दोनोंमें अर्थात् प्रकृति व प्रकृतिके कार्यमें परिणामी होना दुःखात्मक होना आदि दोष देखनेसे अर्थात् विचारनेसे विषयके रागकी शांति होती है यथा सौभरिमुनि जबतक भोगमें प्रवृत्त रहे तबतक रागकी शांति न हुई जब संग दोषका विचार किया तब वैराग्यसे रागका नाश हुवा ॥ २८ ॥

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ॥ २९ ॥

अजके समान मलिन चित्तमें उपदेशका बीज नहीं जमता ॥ २९ ॥

उपदेशरूप जो ज्ञान वृक्षका बीज है उसका अंकुर विषय प्रीतिसे जिसका चित्त मलिन है उसके चित्तमें नहीं जमता जैसे राजा अजको अपनी स्त्रीका शोकथा स्त्रीकी प्रीतिसे चित्त मलिन होनेके कारणसे वसिष्ठ ऐसे उपदेश करता राजाको उपदेश किया परन्तु राजाके मलिन चित्तमें उपदेशके बीजका अंकुर उत्पन्न न हुवा ॥ २९ ॥

नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ॥ ३० ॥

मलिन दर्पणके समान आभास मात्रभी नहीं होता ॥ ३० ॥

जैसे मलिन दर्पणमें किंचित् आभास अर्थात् प्रतिबिंबकी छाया मात्रभी नहीं देख पडती ऐसेही मलिन चित्तमें ज्ञानका आभास नहीं होता ३० ॥

न तज्जस्यापि तद्रूपता पंकजवत् ॥ ३१ ॥

उससे उत्पन्नकाभी कमलके सदृश वही रूप होना सिद्ध नहीं होता ॥ ३१ ॥

उससे अर्थात् उपदेशसे उत्पन्नकाभी वही रूप होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् जैसा उत्तम उपदेश है वैसाही उत्तम ज्ञान मलिन चित्तमें भी होवे यह नहीं होता जो कुछ हुवा भी तो वह उपदेशके अनुसार नहीं होता जैसा उत्तम कमलका बीज जो निकृष्ट पंकमें पडजाताहै तो उससे यद्यपि कमल उत्पन्न होता है परंतु पंक (कीचड) के दोषसे बीजके समान उत्तम नहीं होता ॥ ३१ ॥

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धि वदुपास्यसिद्धिवत् ॥ ३२ ॥

ऐश्वर्य योगमें भी कृतार्थता नहीं है उपास्योंकी सिद्धिके तुल्य उपास्योंकी सिद्धिके तुल्य ॥ ३२ ॥

ऐश्वर्य योगमें (ऐश्वर्य होनेमें) भी कृतार्थता नहीं है अर्थात् क्षय होनेके भयका दुःख होनेसे कृतार्थता नहीं है जैसे उपास्य जो ब्रह्मा आदि हैं उनको सिद्धि प्राप्त होनेमें भी कृतार्थता नहीं है क्योंकि उनका भी योगनिद्रा आदिमें योगाभ्यास करना सुना जाता है अर्थात् ऐश्वर्य व सिद्धिको प्राप्त उपास्य ब्रह्मा आदि भी सर्वथा मुक्त नहीं हैं वे भी योग-साधक हैं इससे ऐश्वर्य योगमें कृतार्थता नहीं है ॥ ३२ ॥

इति श्रीप्यारेलालात्मजबांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिप्रभुदयालुशास्त्रविन्निर्मिते सांख्यदर्शन देशभाषाभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

पंचम अध्यायमें इस शास्त्रमें अन्यके पूर्वपक्षोंका समाधान करनेके अर्थ व अपने मत सिद्ध करनेमें हेतु व प्रमाणोंको सूत्रकार वर्णन करते हैं—

मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ॥ १ ॥

मंगलाचरण किया गया है शिष्टाचारसे फल दर्शनसे और श्रुतिप्रमाणसे ॥ १ ॥

इस शंकाके निवारणके अर्थ प्रथम सूत्रके आदिमें 'अथ' शब्द व्यर्थ कहा है इस सूत्रमें यह कहा है कि, 'अथ' शब्दसे मंगलाचरण किया गया है यह मंगलाचरण शिष्टाचारसे (अच्छे पुरुषोंके करनेसे) फल दर्शनसे व श्रुतिप्रमाणसे अर्थात् श्रुतिमें कथित होनेसे आदिमें कियाजाना यथार्थ व उचित है ॥ १ ॥

नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः ॥ २ ॥

ईश्वरके अधिष्ठित होनेमें फलकी सिद्धि नहीं है कर्मसे उसकी (फलकी) सिद्धि होनेसे ॥ २ ॥

पूर्वही ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे इत्यादि सूत्रोंसे ईश्वरके इच्छापूर्वक सृष्टि कर्ता होनेके प्रमाणका प्रतिषेध किया है परन्तु जो ईश्वरके प्रतिपादनमें यह कहते हैं कि, कोई कर्म फलका देनेवाला ईश्वर सिद्ध होता है इत्यादि पूर्वपक्ष स्थापन करनेवालोंके हेतुओंके प्रतिषेध करनेका

अभिप्रायसे प्रथम ईश्वरके फल दाता होनेके प्रतिषेधमें, इस सूत्रमें यह कहा है कि ईश्वर अधिष्ठित कारणमें कर्म फलरूप परिणामकी सिद्धि मानना युक्त नहीं है क्योंकि आवश्यक कर्महीसे फलकी सिद्धि होना संभव है अर्थात् आवश्यक कर्म विशेष व प्रकृतिके संयोग विशेषसे स्वाभाविक फल विशेष होता है यह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे सिद्ध है इससे आवश्यक कर्महीसे फलकी सिद्धि होनेसे ईश्वरसे फल होनेकी सिद्धि नहीं है ॥ २ ॥

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत्॥ ३ ॥

अपने उपकारसे लोकके समान अधिष्ठान होवे ॥ ३ ॥

ईश्वरको फलदाता न मानकर और ईश्वरका सृष्टि करनेमें कुछ प्रयोजन न माननेसे जो ईश्वरके सृष्टि कर्ता होनेका प्रतिषेध किया गया है उस प्रतिषेधका यथार्थ होना अंगीकार न करके ऐसा माना जावे कि ईश्वरके अधिष्ठाता होनेमें ईश्वरकाभी कुछ अपना उपकार होना माना जावे और अपने उपकारसे अधिष्ठान होवे जैसे लोकमें राजा आदि अपने भृत्य आदि व राज आदि कार्यमें अपने उपकार समेत अधिष्ठाता होते हैं ऐसा माननेमें क्या दोष है ? इसका उत्तर आगे सूत्रमें कहते हैं ॥ ३ ॥

लौकिकेश्वरवदितरथा ॥ ४ ॥

अन्यथा लोकवाले ईश्वरोंके सदृश होगा ॥ ४ ॥

अन्य प्रकारसे अर्थात् जैसा ईश्वरका लक्षण पूर्ण काम आदि हैं उसके विरुद्ध जो ईश्वरका भी उपकार होना अंगीकार किया जावे तो लोकवाले ईश्वरोंके सदृश वह भी संसारी अपूर्ण काम होगा ॥ ४ ॥

पारिभाषिको वा ॥ ५ ॥

अथवा पारिभाषिक होगा ॥ ५ ॥

पारिभाषिक होगा अर्थात् उसमें परिभाषा मात्र होगी. भाव इसका यह है कि, संसारी सृष्टि आदिमें उत्पन्न पुरुषको जो ईश्वर मानोगे तो संसारी सृष्टिके आदिमें उत्पन्न पुरुषमें ईश्वर शब्दका कथनमात्र होगा जैसा हम मानते हैं वैसाही तुम्हारा मानना होजायगा अर्थात् योग व तप विशेषसे प्रकृतिमें लीन हुए जो सृष्टिकी आदिमें समर्थ ऐश्वर्यको प्राप्त पुरुष उत्पन्न होते हैं उनको हम सिद्ध कहते हैं तुम ईश्वर कहते हो यह समझा जायगा अथवा शब्द कहनेका अभिप्राय यह है कि सृष्टि करनेमें ईश्वरका उपकार वा प्रयोजन माननेमें लौकिक ईश्वरके तुल्य ईश्वरके आप्त काम होनेमें प्रतिषेध होता है इससे दोमें एक मानना चाहिये अर्थात् चाहे यह माने कि रागसे अपने उपकारके अर्थ लौकिक ईश्वरके तुल्य सृष्टि करता नहीं है अथवा है तो पारिभाषिक नाममात्र है ॥ ५ ॥

शंका—विना रागही सृष्टि कर्ता माना जावे ? उत्तर—

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ॥ ६ ॥

विना राग उसकी सिद्धि नहीं है प्रतिनियत कारण होनेसे ॥ ६ ॥

विना राग उसकी अर्थात् सृष्टिकी सिद्धि नहीं होसकती किस हेतुसे नहीं हो सकती, प्रतिनियत कारण होनेसे. प्रतिनियत कारण वह है कि, जो कार्यकी उत्पत्तिका विशेष कारण हो विना उसके वह कार्य न होसके विना रागके प्रवृत्ति नहीं होती इससे राग प्रवृत्तिका प्रतिनियत कारण है प्रवृत्ति विना सृष्टिकार्य होना संभव नहीं है इससे रागके प्रतिनियत कारण होनेसे विना रागके सृष्टिकी सिद्धि नहीं होसकती ॥ ६ ॥

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

उसके योगमें भी ईश्वर माननेमें नित्य मुक्त न होगा ॥ ७ ॥

उसके अर्थात रागके योग होनेमें भी ईश्वर होना अंगीकार करनेमें ईश्वर नित्य मुक्त होगा नित्य मुक्त न होनेसे तुम्हारे सिद्धांतकी हानि होगी ॥ ७ ॥

शंका—तीनों गुणोंकी सम अवस्था रूप जड प्रकृतिमें नित्य इच्छा आदिका होना संभव नहीं है इससे दोप्रकारसे इच्छा आदिका होना मानने योग्य है एक यह कि प्रधानकी शक्तिके योगसे साक्षात् चेतनसंबंधसे इच्छा आदि धर्म होते हैं अथवा अयस्कान्त मणिके तुल्य सन्निधि सत्ता मात्रसे प्रेरक होनेसे होते हैं ? इन दोनोंमेंसे प्रथम प्रधान शक्तिके योग होनेका उत्तर वर्णन करते हैं—

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः ॥ ८ ॥

प्रधानके शक्तिके योगसे माना जाय तो संगकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

प्रधानशक्ति, इच्छा आदिका पुरुषमें योग होनेसे सृष्टि करना पुरुषमें माना जाय तो पुरुषमेंभी संग होनेका धर्म प्राप्त होगा व श्रुतिमें पुरुषको असंग वर्णन किया है इससे श्रुतिविरुद्ध होगा अतएव प्रधान शक्तिका योग अंगीकार करना युक्त नहीं है पुरुषके असंग वर्णन करनेमें श्रुति यह है " सयत्तत्र पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गोह्ययं पुरुषः " अर्थ—जिससे कि, वह उक्त ज्ञानवान् विवेकको प्राप्त तिसमें विवेक प्राप्तहोनेमें आत्मज्ञान होनेकी दशामें पुरुष अपने आत्माको प्रकृतिसे भिन्न जानता है इससे पुरुष असंग है ॥ ८ ॥

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ॥ ९ ॥

सत्तामात्रसे चेतनका ऐश्वर्य माना जावे तो सबका ऐश्वर्य सिद्ध है ॥ ९ ॥

जो अयस्कांतके तुल्य सन्निधि सत्तामात्रसे चेतनका ऐश्वर्य होना माना जायगा तो सब भोक्ता पुरुषोंका विशेषण रहित ऐश्वर्य जैसा हम कहते हैं उसी प्रकारसे होना सिद्ध होता है क्योंकि अखिल (सम्पूर्ण) भोक्ताओंके संयोगहीसे प्रधान करके महत्तत्त्व आदिकी उत्पत्ति होनेका अनुमान होता है अन्यथा नहीं होता सन्निधि सत्तामात्रसे ईश्वरका होना यद्यपि सिद्ध होता है परन्तु सन्निधि सत्तामात्रसे ऐश्वर्य होना व प्रकृतिका स्वामी व भोक्ता होना सब पुरुषोंका सिद्ध होता है सब पुरुषोंका व ईश्वरका एकही सदृश सन्निधि सत्ता मात्रसे चेतनैश्वर्य सिद्ध होनेसे ईश्वरकी विशेषता नहीं रहती व ईश्वर होनेमें भी जो हमारा सिद्धान्त है वही सिद्ध होता है अपनी इच्छासे सृष्टिका उत्पन्न करनेवाला सर्व समर्थ होना आदि जैसा तुम मानते हो उस प्रकारसे सिद्ध नहीं होता इससे तुम्हारे सिद्धांतकी हानि है ॥ ९ ॥

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ॥ १० ॥

प्रमाणके अभावसे उसकी सिद्धि नहीं है ॥ १० ॥

जो यह कहाजावे कि, ईश्वरके सृष्टि कर्ता होनेके प्रमाणमें विरुद्ध तर्क करना असत् तर्क है कुतर्क करके ईश्वरका प्रतिषेध करना युक्त नहीं है इस शंकाके निवारणके लिये यह कहा है कि, प्रमाणके अभावसे उसकी अर्थात् ईश्वरके सृष्टिकर्ता होनेकी सिद्धि नहीं है. अभिप्राय यह है कि, जो किसी प्रमाणसे ईश्वरका सृष्टिकर्त्ता होना सिद्ध होता है तो उसका प्रतिषेध करना असत् होता परन्तु प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता इससे असत् नहीं है क्योंकि प्रत्यक्षसे ईश्वरका सिद्ध न होना साधारण विदित है अनुमान शब्दसे सिद्ध न होनेके हेतु आगे सूत्रोंमें वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

सम्बंधाभावान्नानुमानम् ॥ ११ ॥

सम्बन्धके अभावसे अनुमान नहीं होसकता ॥ ११ ॥

'सम्बंध' शब्दका अर्थ यहाँ व्याप्तिका है सम्बन्धके अभावसे अर्थात् व्याप्तिकी सिद्धि न होनेसे ईश्वरका अनुमान नहीं होसकता क्योंकि सम्बन्ध (व्याप्ति) का ज्ञान पूर्व प्रत्यक्षसे होता है ईश्वरमें पूर्व प्रत्यक्षका कुछ सम्बन्ध नहीं है इससे अनुमानसे ईश्वरका प्रमाण नहीं होसकता अथवा प्रयोजन व प्रवृत्तिमें सम्बन्ध होनेसे विना प्रयोजन कर्ममें प्रवृत्ति नहीं होती ईश्वरमें प्रयोजन होना सिद्ध न होनेसे (प्रयोजनके अभावसे) ईश्वरके सृष्टि कर्त्ता होनेका अनुमान नहीं होसकता ॥ ११ ॥

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥ १२ ॥

श्रुति भी प्रधानकार्य होनेकी है ॥ १२ ॥

श्रुति भी प्रधानके कार्य होनेमें है इससे शब्दसे भी ईश्वरका सृष्टिका कारण होना व जगत् ईश्वरका कार्य होना अर्थात् प्रकृतिके सदृश ईश्वरका उपादान कारण होना सिद्ध नहीं होता जगत्के प्रधानके कार्य होनेके प्रमाणमें श्रुति यह है "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ॥ अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः" अर्थ—एका अजा (प्रकृति) लोहित शुक्ल कृष्ण रूपको अर्थात् रज सत्त्व तम गुण रूपको अपने स्वरूपसे बहुत प्रजा जिसने उत्पन्न किया उसका एक अज पुरुष उसके साथ प्रीति करता हुवा शयन करता है अर्थात् भोग करता है व दूसरा अज (पुरुष) जो विरक्त है वह इस भोग कीहुई अजाको परित्याग करता है और "तदैक्षत बहुस्याम्" इत्यादि । अर्थ—उसने इच्छा किया कि, 'मैं बहुत होऊं' इत्यादि जो चेतनकी प्रतिपादक श्रुति है वे सृष्टिकी आदिमें महत्तत्त्व औपाधिक जो महापुरुष है उसको

जो ज्ञान उत्पन्न हुवा है उसके ज्ञानवर्णनमें हैं अथवा कूल गिरनेकी इच्छा करता है, यह कहनेके समान प्रकृति विषयमें यह श्रुति गौणी है ऐसा मानना चाहिये जो ऐसा नहीं माना जावेगा तो "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" अर्थ–'साक्षी चेतन केवल निर्गुण है' इत्यादि श्रुतिसे परिणामी होना पुरुषमें संभव नहीं होता इससे प्रधानहीका कार्य जगत् है यह जो ईश्वरका प्रतिषेध है ऐश्वर्यमें वैराग्य होनेके अर्थ व विना ईश्वर ज्ञानके भी मोक्ष प्राप्त होनेके योग्य है यह प्रतिपादनके अर्थ प्रौढि वादमात्र है यह जानना चाहिये अन्यथा औपाधिकोंके नित्य ज्ञान इच्छा आदि महत्तत्त्वके परिणाम रूपोंके अंगीकार करनेमें औपाधिकोंका कूटस्थ होना संभव होगा औपाधिकोंका नित्यकूटस्थ होना सिद्ध न होनेसे प्रमाणके योग्य नहीं है इत्यादि प्रकृतिके जगत्कर्ता होनेका प्रतिषेध ब्रह्ममीमांसामें अर्थात् वेदान्त सूत्रोंमें देखना चाहिये ॥ १२ ॥

अब अविद्यासे बंध नहीं होता यह जो प्रथम अध्यायमें सिद्धांत वर्णन किया है फिर यहाँ विस्तारसे वर्णन करते हैं–

नाविद्याशक्तियोगो निःसङ्गस्य ॥ १३ ॥

निःसंगका अविद्या शक्तिके साथ योग नहीं है ॥ १३ ॥

जो यह शंका करे कि, प्रधान नहीं है अविद्या शक्ति चेतनमें रहती है उसीसे बंधन होता है उसके नाशसे मोक्ष होता है इसके उत्तरमें यह सूत्र है कि, निःसंग (संगरहित) पुरुषका अविद्याशक्तिके साथ साक्षात् योग होना संभव नहीं होता क्योंकि प्रकृति वा प्रकृतिकार्य रूप अपनेको अज्ञानसे पुरुषका मानना अविद्या है यह अविद्या विकार विशेष अधिकार हेतु संयोगरूप संगके विना संभव नहीं होता ॥ १३ ॥

शंका–अविद्यावशहीसे अविद्याका योग कहना चाहिये और अविद्याके पारमार्थिक न होनेसे अविद्याके साथ संग नहीं है ऐसा मानना चाहिये ? उत्तर–

तद्योगे तत्सिद्धावन्योन्याश्रयत्वम् ॥ १४ ॥

उसके योगमें उसकी सिद्धि होनेमें परस्पर आश्रय होना है ॥ १४ ॥

उसके योगमें उसकी सिद्धि होनेमें अर्थात् अविद्याके योगसे अविद्या सिद्धि होनेमें परस्पर एक दूसरेके आश्रय होना है और इस प्रकारसे परस्पर आश्रय होना मानेजानेमें अनवस्थादोषकी प्राप्ति है ॥ १४ ॥

शंका–बीजांकुरके तुल्य होनेमें अनवस्था दोष नहीं है अर्थात् जैसे यह नहीं जाना जाता है कि, बीज पहिले हुआ अथवा अंकुर, इसी प्रकारसे अविद्या अविद्याके आश्रय होनेमें कहना चाहिये ? उत्तर–

न बीजांकुरवत्सादिसंसारश्रुतेः ॥ १५ ॥

संसारके सादि होनेके प्रमाणमें श्रुति होनेसे बीज व अंकुरके तुल्य नहीं है ॥ १५ ॥

संसारके आदि संयुक्त होनेमें श्रुति प्रमाण होनेसे बीज व अंकुरके तुल्य नहीं है श्रुति यह है "विज्ञानघन एवैभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति" अर्थ–विज्ञानघनही इन भूतोंसे उठाकर अर्थात् उत्पन्न करके उनहीको फिर नाश करता है इत्यादि ॥ १५ ॥

विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसङ्गः ॥ १६ ॥

विद्यासे अन्य होनेमें ब्रह्मके नाश होनेका प्रसंग है ॥ १६ ॥

जो विद्यासे अन्य होनाही अविद्या शब्दका अर्थ माना जावे तो ब्रह्मज्ञानका नाश होनेसे ब्रह्म (आत्मा) का भी नाश होनेका प्रसंग है क्योंकि ब्रह्मज्ञानरूप विद्या (ज्ञान) भिन्न अर्थात् विना विद्या नहीं रह सकता ॥ १६ ॥

अबाधे नैष्फल्यम् ॥ १७ ॥

बाधा न होनेमें निष्फल होना है ॥ १७ ॥

जो अविद्या भी रही और विद्यामय जो ब्रह्म है उसमें विद्यासे अविद्याको बाधा न हुई अर्थात् अविद्याका नाश न हुवा तो विद्याका होनाहीं निष्फल है अन्यपुरुषमें भी विद्या होनेसे कुछ फल न मानना चाहिये और विद्याका हाना व माननाही वृथा हैं ॥ १७ ॥

विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् ॥ १८ ॥

विद्यासे बाधाके योग्य होनेमें जगत्का भी इसी प्रकारसे ॥ १८ ॥

जो विद्यासे बाधा (नाश) के योग्य है उसको अविद्या होना मान जावे तो जगत्का प्रकृति महत्तत्त्व आदि जो अखिलप्रपंच है सबका अविद्या होना सिद्ध होगा क्योंकि विद्यासे यह सब बाधा (नाश) के योग्य है और जो अविद्याही प्रकृति महत्तत्त्व आदि सब हैं तो ज्ञानसे अविद्याके नाश होनेमें चक्षु आदिसे स्थूल जगत्का प्रत्यक्ष न होना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता इससे विद्यासे बाधा (नाश) के योग्य अविद्याका लक्षण नहीं होसकता ॥ १८ ॥

तद्रूपत्वे सादित्वम् ॥ १९ ॥

उसीके रूप होनेमें सादि होना सिद्ध होगा ॥ १९ ॥

उसीके रूप होनेमें अर्थात् विद्यासे बाधाके योग्य पदार्थ हो अविद्या होनेमें अविद्याका अनादि होना सिद्ध नहीं होगा अर्थात् जो किसी प्रकारसे विद्यासे नाशके योग्य पदार्थही अविद्या मानलीजावे तथापि पुरुषमें अविद्याका सादि (आदि सहित) होना सिद्ध होगा अनादि होना सिद्ध न होगा क्योंकि "विज्ञानघन एव " इत्यादि । अर्थ-'विज्ञानरूपही है ' इत्यादि श्रुतियोंसे प्रलय आदिमें पुरुषका ज्ञानस्वरूप होना

सिद्ध होता है इससे अविद्या संयोग पुरुषमें अनादि पारमार्थिक सिद्ध नहीं होता अविद्याके अनादि माननेवालोंका मत मिथ्या है अविद्या बुद्धिका धर्म है पुरुषका धर्म नहीं है यह श्रुतिप्रमाणसे पुरुषके विज्ञानरूप होनेसे सिद्ध है ॥ १९ ॥

न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ॥ २० ॥

प्रकृतिके कार्योंमें विचित्रता होनेसे धर्मका अपलाप (मिथ्या कथन) संभव नहीं होता ॥ २० ॥

प्रत्यक्ष न होनेसे धर्मकर्मका अपलाप संभव नहीं होता अर्थात् यह जो कहा गया है कि कर्म निमित्तसे प्रधानकी प्रवृत्ति होती है इसपर जो यह शंका की जावे कि, इस कर्म वा धर्मका यह फल हुवा अथवा इस धर्मसे प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है यह प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं होता प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे ऐसा मानना मिथ्या है इस पूर्वपक्षके समाधानके अर्थ यह कहा है कि, प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे धर्मका अपलाप नहीं है अनुमानसे यह सिद्ध है कि, नानाप्रकारके कर्म अनुसार प्रकृतिके विचित्र कार्यरूप सृष्टि होती है अन्यथा प्रकृतिके विचित्रकार्य अनेक प्रकारके शरीर व भोग होनेका कोई हेतु सिद्ध नहीं होता ॥ २० ॥

अन्यभी प्रमाण वर्णन करते हैं—

श्रुतिलिंगादिभिस्तत्सिद्धिः ॥ २१ ॥

श्रुतिप्रमाण आदिसे उसकी सिद्धि है ॥ २१ ॥

श्रुतिप्रमाणसे धर्म आदिकी सिद्धि है श्रुति यह है " पुण्यो वै पुण्येन भवति पापः पापेन " अर्थ—पुण्यसे उत्तम व पापसे निकृष्ट होता है धर्मके प्रत्यक्ष न होनेसे मूढ वाद करते हैं कि, धर्मका मानना मिथ्या है परन्तु धर्म अनुमानसे वेदप्रमाणसे विद्यासे अर्थात् ज्ञान उदय होनेसे योगियोंको प्रत्यक्षसे सिद्ध होनेसे सिद्ध होता है ॥ २१ ॥

जो यह संशय हो कि प्रत्यक्ष नहीं है इससे न मानना चाहिये इस संशयके निवारणके लिये आगे सूत्रमें उत्तर वर्णन करते हैं–

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ॥ २२ ॥

अन्यप्रमाणोंके अवकाश होनेसे नियम नहीं है ॥२२॥

प्रत्यक्षके अभावसे वस्तुके अभाव होनेका नियम नहीं है क्योंकि जो प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं होता वह अनुमान आदि अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध होता है अन्यप्रमाणोंके अवकाश होनेसे प्रत्यक्षहीसे सिद्ध होनेका नियम नहीं है इससे अनुमान आदि प्रमाणोंसे धर्म सिद्ध होनेसे सिद्ध व सत्य है ॥ २२ ॥

धर्मके तुल्य अब अधर्मकोभी सिद्ध करते हैं–

उभयत्राप्येवम् ॥ २३ ॥

दोनोंमें भी इसी प्रकारसे ॥ २३ ॥

दोनोंमें इसी प्रकारसे कहनेका अभिप्राय यह है कि, यथा धर्ममें अनुमान व शब्द प्रमाण हैं तथा अधर्ममें हैं दोनोंमें एकही प्रकारसे जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ॥ २४॥

अर्थसे सिद्धि होवे तो दोनोंका समान प्रमाणहै ॥२४॥

वेदविहित जे कर्म हैं उनके विरुद्ध कहनेमें जो अर्थ प्राप्त होता है वह अधर्म है इस प्रकारसे अर्थात् जो धर्म नहीं है वह अधर्म है अर्थापत्तिसे अधर्मकी सिद्धि होती है अधर्मका प्रमाण नहीं है जो यह संशय हो तो इसके निवृत्त होनेके अर्थ यह कहा है कि, दोनोंका धर्म व अधर्मका समान प्रमाण है अर्थात् श्रुतिमें दोनोंका समान वर्णन है यथा विधिमें धर्मका वर्णन है तथा निषेधमें अधर्मका वर्णन है अर्थात् "परदारान्न गच्छेत्" अर्थ–परस्त्रीमें गमन न करे इत्यादि श्रुति वाक्य हैं ॥ २४ ॥

अंतःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम्॥ २५ ॥

धर्म आदिकोंका अंतःकरणधर्मत्व है॥ २५॥

धर्म आदिका अंतःकरणधर्मत्व है अर्थात् धर्म आदि अंतःकरणके धर्म हैं अंतःकरण कार्य व कारणरूपसे होता है प्रकृति अंश विशेष जो अंतःकरण है उसमें धर्म अधर्म संस्कार आदिक प्रलयमें रहते हैं ॥ २५ ॥

शंका-धर्मआदि अंतःकरणके धर्म होवें परन्तु प्रकृतिके कार्योंके विचित्र होनेसे व श्रुतिप्रमाणसे धर्मआदिकी सिद्धि जो कही है यह अयुक्त है क्योंकि त्रिगुणात्मक प्रकृति व उसके कार्योंकी श्रुतिहीसे बाधा होती है. श्रुति यह है, "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" अर्थ-साक्षी ज्ञानरूप केवल निर्गुण है तथा " अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगंधवच्च " अर्थ-शब्दरहित स्पर्शरहित रूपरहित नाश रहित रसरहित नित्यगंधरहित है, इत्यादि वाक्योंसे प्रकृति गुणके नाश होने व न रहनेका प्रमाण होता है। उत्तर-

गुणादीनां च नात्यन्तबाधः ॥ २६ ॥

गुणआदिका अत्यन्त नाश नहीं है ॥ २६ ॥

गुणआदिका अर्थात् सत्त्वआदिका व उनके धर्म सुख आदिका व उनके कार्य महत्तत्त्व आदिका स्वरूपसे नाश नहीं है संसर्ग न रहनेसे चेतनमें गुण आदिका नाश है यथा लोहेके उष्ण होनेकी बाधा होती है अर्थात् लोहेके उष्ण होनेका नाश होता है ॥ २६ ॥

शंका-स्वप्न मनोरथके तुल्य मिथ्या माननेमें कैसे स्वरूपसे नाश होना यथार्थ नहीं है ? उत्तर-

पंचावयवयोगात् सुखादिसंवित्तिः ॥ २७ ॥

पंच अवयवोंके योगसे सुख आदिकी उपलब्धि अथवा सिद्धि होती है ॥ २७ ॥

न्यायके पांच अवयव हैं, प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय व निगमन. इन पांच अवयवोंके योगसे अर्थात् मेलसे सुखआदि अप्रत्यक्ष पदार्थोंकी अनुमानद्वारा सिद्धि होती है यथा सुख सत् है यह प्रतिज्ञा है किस हेतुसे सत् है ? अर्थक्रियाकारी होनेसे यह हेतु है. जो जो अर्थ क्रियाकारी (प्रयोजन सिद्धिरूप क्रिया करनेवाला) होता है वह सत् होता है जैसे 'चेतन पुरुष' यह उदाहरण है. 'सुख पुलकादिरूप अर्थ क्रियाकारी है' यह उपनय है. 'तिससे सुख सत् है' यह निगमन है. इस प्रकारसे पांच अवयवोंके योगसे अनुमानद्वारा गुण आदि अप्रत्यक्ष पदार्थोंका सर्वथा नाश होना सिद्ध नहीं होता कारणरूपसे रहना सिद्ध होता है२७॥

अब नास्तिक जो प्रत्यक्षमात्र प्रमाण मानते हैं अन्यप्रमाणको व्याप्ति- की सिद्धि न मानकर नहीं मानते उनकी यह शंका है—

न सकृद्ग्रहणात्सम्बन्धसिद्धिः ॥ २८ ॥

एकवार सहचारके ग्रहणसे सम्बंधकी सिद्धि नहीं होती ॥ २८ ॥

एकवारके सहचारके ग्रहणसे सम्बंध (व्याप्ति) की सिद्धि नहीं होती वारम्वारकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि धूम व अग्निको कहीं साथ होते देख कर सदा साथही होना नहीं मान सक्के विना धूम भी अग्नि होता है नहीं कहीं हाथी व अग्नि एक जगह देखकर फिर कभी हाथी देखकर अग्निका होना अनुमान करना भी मानने योग्य होगा इससे व्याप्तिग्रहणके असं- भव होनेसे अनुमानसे अर्थकी सिद्धि नहीं है ॥ २८ ॥

अब इस अप्रत्यक्षपदार्थमें व्याप्तिग्रहण न होनेकी शंका निवारण व व्याप्तिसे अनुमानद्वारा अप्रत्यक्ष पदार्थोंके सिद्ध करनेके अर्थ सूत्रकार प्रथम व्याप्तिका लक्षण वर्णन करते हैं—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकत-रस्य वा व्याप्तिः ॥ २९ ॥

नियत धर्मसहित होना दोनोंका अथवा एकका व्याप्ति है ॥ २९ ॥

नियतधर्म सहित होना अर्थात् धर्मीके धर्मका उसके साथही रहना सहचार है दोनोंका अर्थात् साध्यसाधनका अथवा एक साधनमात्रका जो नियत धर्म अर्थात् व्यभिचाररहित सहचार है वह व्याप्ति है दोनोंका यह समव्याप्तिपक्षमें कहा है और नियम तर्कके साथ जो अनुकूल हो वह ग्रहणके योग्य है नियत धर्म सहित होना व्याप्ति होनेसे व्याप्तिग्रह (व्याप्तिग्रहण) असंभव नहीं है यह भाव है ॥ २९ ॥

न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ॥ ३० ॥

वस्तुकी कल्पनाका प्रसंग होनेसे तत्त्वान्तर (भिन्न तत्त्व) नहीं है ॥ ३० ॥

१-एक साधनमात्रका दृष्टान्त कार्यद्रव्यमें समझना चाहिये क्योंकि साध्यकारणके साथ साधनकार्यका सम्बंध अवश्य होता है क्योंकि कार्य बिना कारणके नहीं होता वा नहीं रहता है व कारण बिना कार्यके रहता है व होता है यथा धूम कार्य बिना अग्निके नहीं होता व अग्नि कारण बिना धूमके रहता है व चकमक पत्थर आदिसे बिना धूमके प्रकट होता है तथा बिना कार्यके कारणका होना व बिना कारणके कार्यका न होना पृथिवी घट कनककुण्डल आदि दृष्टान्तोंसे समझलेना चाहिये कार्य बिना कारण न होनेसे कारण साध्यमें कार्यसाधन मात्रका सहचार है दोनोंका सहचार (साथ रहना) पृथिवी गंध आदिमें जानना चाहिये क्योंकि बिना पृथिवी गंध नहीं होता व बिना गंध पृथिवी नहीं होती इत्यादि ।

व्याप्तिका आश्रय जो वस्तु है उसकी भी कल्पना होनेके प्रसंगसे नियत धर्म सहित होनेसे भिन्न कोई पदार्थ व्याप्ति सिद्ध नहीं होती अर्थात् जो वस्तु सिद्ध है उसीकी व्याप्ति होनेमात्रकी कल्पना कीजाती है यह हमारा (ग्रंथकारका) मत है ॥ ३० ॥

अब अन्यआचार्योंका मत वर्णन करते हैं—

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ॥ ३१ ॥

अपनी शक्तिसे उत्पन्न व्याप्ति है कोई आचार्य यह मानते हैं ॥ ३१ ॥

कोई आचार्य यह कहते हैं कि व्याप्यकी निजशक्तिसे उत्पन्न शक्ति विशेषरूप तत्त्वान्तर व्याप्ति है परन्तु निजशक्तिमात्र जबतक द्रव्यमें स्थित है व्याप्ति नहीं है और उत्पन्न हुएका द्रव्यसे वियोग होजाने व दूरदेशमें प्राप्त होजानेपर भी व्याप्तिभाव नहीं रहता यथा देशान्तरमें प्राप्त धूमकी अग्निसे व्याप्य न होनेसे व देशान्तरमें गमनसे वह शक्ति नष्ट हो जाती है इससे यह लक्षण यथार्थ नहीं है हमने अपने लक्षणमें नियत धर्मका साथ होना कहा है इससे हमारे लक्षणके अनुसार उत्पात्तिकालावच्छिन्नता सहित धूम विशेषणके योग्य है अर्थात् जिस कालमें धूम अग्निसे उत्पन्न हो रहाहै अग्नि सम्बंध रहित नहीं हुआ उस काल परिमाण युक्तही धूम लक्षणमें घटित होता है इससे दोषकी प्राप्ति नहीं है ॥ ३१ ॥

आधेयशक्तियोग इति पंचशिखः ॥ ३२ ॥

आधेयशक्तिका योग व्याप्ति है यह पंचशिख आचार्य मानते हैं ॥ ३२ ॥

प्रकृतिआदिका बुद्धिआदिमें व्यापक होने व बुद्धि आदिके व्याप्य होनेके व्यवहारसे प्रकृतिआदिकी आधारताशक्ति व्यापकता व बुद्धि-

आदिकी आधेयताशक्ति व्याप्यता है आधेयशक्ति (व्याप्य होनेके धर्म) का योग अर्थात् आधेय शक्तिमान् होना व्याप्ति है तथा आधार अग्निमें आधेय धूम होनेकी शक्तिका योग व्याप्ति है. यह पंचशिख आचार्यका मत है ॥ ३२ ॥

शंका–व्याप्य वस्तुकी स्वरूपशक्तिही व्याप्ति है यह मानना चाहिये आधेयशक्तिके कल्पना करनेका क्या प्रयोजन है ? उत्तर–

न स्वरूपशक्तिर्नियमः पुनर्वादप्रसक्तेः ॥ ३३ ॥

पुनर्वाद (पुनरुक्ति) के प्रसंगसे स्वरूपशक्ति नियम (व्याप्ति) नहीं है ॥ ॥ ३३ ॥

यथा घट (कलश) है यह कहनेके तुल्य स्वरूपशक्ति कहनेमें व्याप्य व व्याप्यके स्वरूपमें अर्थभेद ज्ञात न होनेसे पुनर्वाद होनेका प्रसंग होता है इससे स्वरूपशब्द ग्रहण न करके व्याप्तमें व्याप्यधर्मता उपपादन (प्रतिपादन) के अर्थ शक्तिपदका ग्रहण किया है ॥ ३३ ॥

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ॥ ३४ ॥

विशेषणके अनर्थक होनेके प्रसंगसे ॥ ३४ ॥

व्याप्यका व्याप्यस्वरूप विशेषण कहना पुनर्वाद होनेसे अनर्थक है अनर्थक होनेके प्रसंगसे स्वरूप शब्दको ग्रहण नहीं किया ॥ ३४ ॥

अब अन्य दूषण कहते हैं–

पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ॥ ३५ ॥

पल्लवआदिमें सिद्ध न होनेसे ॥ ३५ ॥

पल्लव आदि वृक्ष आदिसे व्याप्य हैं अर्थात् वृक्ष आदि व्यापक व पल्लव आदि व्याप्य हैं पल्लव आदि व्याप्यमें स्वरूपशक्तिमात्र कहना व्याप्तिका लक्षण संभव नहीं होता क्योंकि पल्लव छिन्न होजाने अर्थात्

कटजानेपर भी पल्लवोंके स्वरूपकी शक्ति वृक्षमें रहनेसे व्याप्यताकी सिद्ध होगी और आधेयशक्ति पल्लवोंके कटनेके समयमें नष्ट होगी इससे कटजानेपर व्याप्तिका अभाव है ॥ ३५ ॥

शंका-पंचशिखने व्याप्यकी शक्तिसे उत्पन्न शक्तिविशेषरूप व्याप्ति है यह क्यों नहीं कहा ? ऐसा नहीं कहा तो धूमके अग्निके आधेय होनेके अभावसे अग्निका व्यापक व धूमका अग्निसे व्याप्य होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् धूमकी व्याप्यता सिद्ध नहीं होती. उत्तर-

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ॥ ३६ ॥

आधेयशक्तिका व्याप्ति होना सिद्ध होनेमें समान-न्याय (समान युक्ति होने) से निजशक्तिसे उत्पन्नभी व्याप्ति रूपसे सिद्ध है ॥ ३६ ॥

जैसे भावविशेष व युक्तिसे आधेयशक्तिका व्याप्ति होना सिद्ध-होता है ऐसेही निजशक्तिसे उत्पन्नभी व्याप्ति होना सिद्ध होता है नानाविधके सहचाररूप व्याप्तियोंके होनेसे एक दूसरेके सदृश न होनेमें जैसे नाना अर्थ व शब्द होनेमें दोष नहीं है दोष न समझना चाहिये अपने मतमेंभी नानाविधके सहचारही अनेकव्याप्ति होना जाननेके योग्य हैं अनुमानके हेतु होनेमात्रमें व्याप्तियोंकी सामान्यता समझना चाहिये. यथा तृण, अरणि, मणि कार्यरूप हैं परन्तु एक दूसरेका परस्पर विजातिय होना सिद्ध होता है अर्थात् कार्यस्वरूप परजातिसे समान है व अपरजातिभेदसे भिन्न हैं इसी प्रकारसे अनुमान हेतु होने-मात्रसे सहचारोंकी समानता व प्रकारभेदसे वह अनेक व विजातीय हैं अनुमानप्रमाणके बाधक भ्रम दोष निवारणके अर्थ व व्याप्तिके निश्चित होनेके अर्थ यह व्याप्तिका वर्णन किया गया ॥ ३६ ॥

अब उक्त पंच अवयवरूप शब्दका ज्ञान जनक (उत्पन्न करने-

वाला) होना सिद्ध करनेके प्रयोजनसे शब्द शक्तिका प्रतिपादन व शब्द प्रमाणमें विरुद्ध पक्षवालोंके दूषणोंका प्रतिषेध किया जाता है ॥

वाच्यवाचकभावः सम्बंधः शब्दार्थयोः ॥ ३७ ॥

वाच्य वाच्यकभाव शब्द व अर्थका सम्बंध है ॥ ३७ ॥

अर्थमें वाच्यता शक्ति व शब्दमें वाचकता शक्तिका भाव दोनों शब्द व अर्थका सम्बंध है इस सम्बंधके ज्ञानसे शब्दसे अर्थका बोध होता है ॥ ३७ ॥

शक्तिग्राहकोंको वर्णन करते हैं—

त्रिभिस्सम्बंधसिद्धिः ॥ ३८ ॥

तीनसे संबंधकी सिद्धि है ॥ ३८ ॥

आप्तोपदेश, वृद्धव्यवहार, प्रसिद्धपदसमानाधिकरण, इन तीनसे सम्बंध ग्रहण किया जाता है ये तीन सम्बंधके सिद्ध होनेके हेतु हैं ॥ ३८ ॥

न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ॥ ३९ ॥

दोनों प्रकारसे देखनेसे कार्यमें नियम नहीं है ॥ ३९ ॥

शक्तिग्रह कार्यहीमें होता है यह नियम नहीं है क्योंकि लोकमें कार्यके तुल्य अकार्यमें भी वृद्धव्यवहार आदि देखनेमें आतेहैं यथा 'गौ लावो' इस कार्यपर वृद्धवाक्यसे गौ ले आनेका व्यवहार देखा जाताहै इसी प्रकारसे 'तेरे पुत्र उत्पन्न हुवा' इत्यादि सिद्धिपदार्थ परवाक्यसे पुलकादि होनेका व्यवहार देखा जाता है इस प्रकारसे कार्य व अकार्य दोनोंमें शक्तिग्रह देखनेसे कार्यमात्रमें नियम नहीं है ॥ ३९ ॥

शंका—लोकमें अर्थ व प्रत्यय आदिके देखनेसे सिद्ध पदार्थमें भी शक्तिग्रह होवे परन्तु वेदमें अकार्य बोधनके वृथा होनेसे कैसे अकार्यमें शक्तिग्रह होगा ? उत्तर—

लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः ॥ ४० ॥

लोकमें व्युत्पन्नको वेदार्थकी प्रतीति होती है ॥ ४० ॥

लोकमें जो पुरुष शब्दशक्तिमें व्युत्पन्न होता है उसीको लोकानुसार वेदके अर्थकी प्रतीति होती है लोकमें शब्दशक्ति भिन्न हो व वेदमें भिन्न हो ऐसा नहीं होता इससे लोकमें सिद्ध अर्थ पर शक्तिग्रह होना देखनेसे वेदमें भी उसकी सिद्धि होती है ॥ ४० ॥

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद्वेदस्य तदर्थस्यातीन्द्रियत्वात् ॥ ४१ ॥

आप्तोपदेश आदि तीनसे वेदमें शक्तिग्रहका होना वेदके अपौरुषेय होनेसे व वेदार्थके अतीन्द्रिय होनेसे संभव नहीं होता ॥ ४१ ॥

जो किसी पुरुषसे न कहा गया हो वह अपौरुषेय है वेद किसी पुरुषसे कथित सिद्ध न होनेसे अपौरुषेय है अपौरुषेय होनेसे आप्तोपदेशसे वेदार्थमें शक्तिग्रह होना संभव नहीं होता तथा वेदार्थके अतीन्द्रिय (अप्रत्यक्ष) होनेसे वेदार्थमें वृद्धव्यवहार व प्रसिद्धपद समानाधिकरण होनेका ग्रहण नहीं होसकता ॥ ४१ ॥

वेदार्थके अतीन्द्रिय होनेके प्रतिषेधमें प्रथम उत्तर वर्णन करते हैं—

न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ॥ ४२ ॥

नहीं प्रकृष्टफल करनेवाले होनेसे यज्ञ आदिके स्वरूपहीसे धर्म होना विदित होता है ॥ ४२ ॥

जो वेदार्थका अतीन्द्रिय होना कहा है यह युक्त नहीं है क्योंकि देवता उद्देश्यक द्रव्यत्याग आदिरूप यज्ञदान आदिका स्वरूपहीसे धर्म होना वैशिष्ट्यसे अर्थात् प्रकृष्टफल करनेवाले होनेसे विदित होता है

फलविशेष होने व इच्छा आदिरूप होनेसे यज्ञादिक अतीन्द्रिय नहीं हैं जो यह कहा जाय कि, देवता आदि अतीन्द्रिय हैं तो अतीन्द्रियोंमें भी पदार्थ होनेके धर्मसे सामान्यरूपसे प्रतीति होनेका आगे वर्णन किये-जानेसे अतीन्द्रिय नहीं हैं ॥ ४२ ॥

अपौरुषेय होनेसे जो आप्त उपदेशका अभाव कहा है उसका उत्तर कहते हैं ॥

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ॥४३॥

निजशक्ति व्युत्पत्तिद्वारा विभाग वा भेद सहित उपदेश कीजाती है ॥ ४३ ॥

अपौरुषेय होनेमें भी वेदोंकी जो निज अर्थात् स्वाभाविकी अर्थोंमें शक्ति है वही परम्परासे आप्तपुरुषोंकरके इस शब्दका यह अर्थ है ऐसी व्युत्पत्तिद्वारा अर्थान्तरसे पृथक् करके जो अर्थ जिस शब्दमें नियत है उसीसे उपदेश की जाती है आधुनिक शब्दके समान कोई आपसे संकेत नहीं करता जिससे पौरुषेय होनेकी अपेक्षा होवे ॥ ४३ ॥

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ॥ ४४ ॥

योग्य व अयोग्योंमें प्रतीतिजनक (उत्पत्तिकर्त्ता) होनेसे उसकी सिद्धि है ॥ ४४ ॥

योग्य व अयोग्योंमें अर्थात् प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षपदार्थोंमें सामान्य धर्मसे साधारणसे पदोंका अर्थमें प्रतीतिजनक होना अनुभवसे सिद्ध होनेसे उसकी अर्थात् शक्तिग्रह (अर्थ ग्रहणशक्ति) की सिद्धि है परन्तु जो सामान्य नहीं है ऐसा विशेष अतीन्द्रिय अपूर्ववाक्य है उसका ग्रहण इस पूर्ववर्णनमें न समझना चाहिये शब्दगतविशेषका वर्णन किया जाता है ॥ ४४ ॥

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ॥ ४५ ॥

कार्य होना श्रुतिप्रमाणसे सिद्ध होनेसे वेदोंकी नित्यता नहीं है ॥ ४५ ॥

"स तपोऽतप्यत तस्मात्तपस्तपनात् त्रयो वेदा अजायन्त" इत्यादि । अर्थ–उसने तप किया उस तप करनेसे तीन वेद उत्पन्न हुए इत्यादि श्रुतिसे वेदका कार्य होना नित्य न होना विदित होता है ॥ ४५ ॥

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ॥ ४६ ॥

उनके कर्ता पुरुषके अभावसे पौरुषेय नहीं है ॥ ४६ ॥

बहुत मनुष्य यह मानते हैं कि, वेदका कर्ता पुरुष ईश्वर है इस शास्त्रमें शास्त्रकार पुरुषको अकर्ता माना है इसीसे मुक्तरूप ईश्वरमें सृष्टि कर्तृत्वके सिद्ध होनेका प्रतिषेध किया है कर्तृत्वके अभावसे ईश्वर वेदका कर्ता नहीं होसकता व कर्ताभावसे ईश्वरका अभाव है इससे इस सूत्रमें कहा है कि, उनके (वेदोंके) कर्ता पुरुष ईश्वरके अभावसे अर्थात् कर्तृत्वके अभावसे वेद पौरुषेय नहीं हैं अर्थात् ईश्वरकृत नहीं हैं किस हेतुसे कर्ता पुरुषका अभाव है वह हेतु आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ४६ ॥

मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ॥ ४७ ॥

मुक्त व अमुक्त दोनोंके योग्य न होनेसे ॥ ४७ ॥

मुक्त वा अमुक्त दोनों होनेमें वेदके निर्माणमें योग्य नहीं होसकता मुक्त होनेमें सर्वज्ञ होनेपरभी रागरहित होनेसे सहस्र शाखा वेदके निर्माणमें अयोग्य है मुक्त न होनेमें अज्ञान सर्वज्ञ न होनेसे अयोग्य है इससे ईश्वरके वेद कर्ता न होनेसे वेद अपौरुषेय है ॥ ४७ ॥

जो ऐसा समुझा जावे कि अपौरुषेय होनेसे वेद नित्य स्वतःसिद्ध है तो अपौरुषेय होनेसे नित्य होना सिद्ध नहीं होता इसका दृष्टांत आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं–

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमंकुरादिवत् ॥ ४८ ॥

अपौरुषेय होनेसे अंकुरआदिके तुल्य नित्य होना सिद्ध नहीं होता ॥ ४८ ॥

यथा अंकुर आदि अपौरुषेय नित्य नहीं हैं तथा वेदभी नित्य नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

शंका-अंकुरके कार्यरूप होनेसे घटके सदृश पौरुषेय होनेका अनुमान किया जावे ? उत्तर-

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ॥४९॥

उनकाभी उसके साथ योग होनेमें दृष्टकी बाधा होनेका प्रसंग ॥ ४९ ॥

उनका उक्त अंकुर आदिका उसके साथ होनेमें अर्थात् पौरुषेय होनेके योगमें दृष्टकी बाधा होनेका प्रसंग है भाव इसका यह है कि, जो पौरुषेय है वह शरीरजन्य (शरीरसे उत्पन्न होनेके योग्य) है यह व्याप्ति लोकमें दृष्ट है अर्थात् प्रत्यक्षसे सिद्ध है अंकुर आदिमें ऐसा होना दृष्ट नहीं है इससे दृष्ट व्याप्तिकी बाधा होनेका प्रसंग होगा ॥ ४९ ॥

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ॥ ५० ॥

जिस अदृष्टमें भी कृत होनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है वह पौरुषेय है ॥ ५० ॥

दृष्टके समान अदृष्टमें भी जिस वस्तुमें कर्ता करके बुद्धिपूर्वक कृत होनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है वह पौरुषेय है अर्थात् वही पौरुषेय कहा जाता है अभिप्राय इसका यह है कि यद्यपि नित्य ईश्वर जो वेदका

कर्ता पुरुष माना जाता है वह वेदका कर्ता युक्तिसे सिद्ध न हो व प्रत्यक्षसे सिद्ध न हो तथापि वेदमें कृत होनेकी बुद्धि होनेसे वेदको आदि पुरुष वा ब्रह्मासे उक्त होनेसे पौरुषेय मानना चाहिये इस हेतुसे कि यथा दृष्टपदार्थ कोई मन्दिरको उत्तम रचना चित्रकारी संयुक्त देखने व उसमें भोग्यपदार्थ शय्या भोजन वस्त्र आदि पदार्थ देखनेसे कर्ताको करते व धरते हुये न देखने परभी चेतन कर्तासे बुद्धिपूर्वक कृत होनेकी बुद्धि होती है इसी प्रकारसे वेदमें धर्म अधर्म आदि उत्तम उपदेश विधि निषेध होनेसे किसी बुद्धिमान् पुरुषसे बुद्धिपूर्वक कृत होनेके अनुमानसे पौरुषेय होनेका बोध होता है कोई इस सूत्रका अर्थ इसके विरुद्ध वर्णन करते हैं वेदको सर्वथा अपौरुषेय स्वतः सुषुप्तके श्वासके निकसनेके सदृश आदिपुरुषके श्वाससे उत्पन्न मानते हैं परन्तु यह सर्वथा अयुक्त व असंभव कथन है क्योंकि किसी प्रमाणसे विना चेतन ज्ञानवान् जड शब्दका आपसे वाक्यरचना करना व यथोचित तत्त्वार्थ प्रतिपादन करना संभव नहीं होसकता ॥ ५० ॥

निजशक्त्यभिव्यक्तेःस्वतःप्रामाण्यम् ॥ ५१ ॥

निजशक्तिकी प्रकटतासे स्वतः प्रामाण्य है ॥ ५१ ॥

जो यह शंका हो कि, आप्तवाक्यमें आप्तके विश्वासमात्रसे जो पदार्थ अपनेको निश्चित नहीं होता व उसका प्रत्यक्ष नहीं होता उसका भी प्रामाण्य मान लिया जाता है ऐसाही वेदका प्रामाण्य है अपनेको यथार्थ होनेका निश्चय नहीं होसकता इस शंका निवारणके अर्थ व यह सूचित करनेके अर्थ-कि, आप्तके विश्वासहीसे वेदका प्रामाण्य नहीं है वेदकी शब्दशक्तिहीसे जो अर्थ प्रतीत है उससे स्वतः वेदोंका प्रामाण्य सिद्ध होता है सूत्रमें यह कहा है कि, निजशक्ति अर्थात् वेदोंके अपने शब्दशक्तिसे जो अर्थ सत्यताकी प्रतीति है उसकी प्रकटतासे अर्थात् मंत्र व आयुर्वेद आदिमें उसके प्रकट होनेसे सम्पूर्ण वेदोंका प्रामाण्य

आपहीसे सिद्ध होता है अभिप्राय यह है कि, मंत्र व आयुर्वेदमें जैसा कथित है उस प्रकारसे करनेसे मंत्र व औषधका फल सिद्ध होनेसे वेदके शब्दार्थहीसे वेदोंका आपही सत्य होने व प्रमाण योग्य होनेका निश्चय होता है गुण आदिकोंका अत्यन्त नाश नहीं है यह जो प्रतिज्ञा है इस प्रतिज्ञामें सुख आदि सिद्ध करनेके लिये अनुमितिके उपयोगी पंच अवयवों व पंच अवयवोंके शब्दरूप होनेसे शब्दप्रमाणका वर्णन किया ॥ ५१ ॥

अब गुण आदिकोंको अन्ययुक्तिसे सिद्ध करनेमें अन्य हेतुको वर्णन करते हैं–

नासतः ख्यानं नृशृङ्गवत् ॥ ५२ ॥

मनुष्यके सींगके समान असत्का ज्ञान होना संभव नहीं होता ॥ ५२ ॥

ज्ञानमात्रसे व पंच अवयवद्वारा अनुमानसे जो सुख आदि सिद्ध होते हैं जिनका वर्णन किया गया है वे सत् होनेहीसे ज्ञानसे सिद्ध होते हैं जो अत्यन्त असत् है उसका ज्ञान होना संभव नहीं होता यथा असत् मनुष्यके सींगका ज्ञान नहीं होता प्रमाणसे सिद्ध होनेसे सुख आदि गुण सत् हैं ॥ ५२ ॥

अब पूर्वपक्ष यह है कि, यद्यपि गुण आदिका सत् होना अंगीकार किया जाय तथापि गुण आदिकोंका अत्यन्त बाध नहीं है यह कहना मिथ्या है । मिथ्या होनेका हेतु वर्णन करते हैं–

न सतो बाधदर्शनात् ॥ ५३ ॥

नाश देखनेसे सत् नहीं हैं ॥ ५३ ॥

विनाशकालमें गुण आदिका नाश होना देखनेसे गुण आदि अत्यन्त सत् भी नहीं हैं ॥ ५३ ॥

जो यह समझा जावे कि, सत् व असत्से भिन्न जगत् माना जाय तो जो कहीं सत् व कहीं असत् होनेका भ्रम होता है यह न होवे

विलक्षण होनेसे सत् व असत् दोनों मानना चाहिये ? तो इसका उत्तर यह है--

नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ॥ ५४ ॥

अनिर्वचनीयका भाव नहीं होता उसके अभावसे ॥ ५४ ॥

उसके अभावसे अर्थात् सत् असत्से भिन्न वस्तु होनेके अभावसे अर्थात् ऐसा पदार्थ जो प्रमाणसे सिद्ध नहीं है अप्रसिद्ध है ऐसे अनिर्वचनीयका भाव नहीं होता सत् असत्से भिन्न होना व वही सत् व वही असत् समकाल व अवस्थामें होना दोनों असंभव हैं इससे ऐसा मानना अयुक्त है ॥ ५४ ॥

नान्यथा ख्यातिः स्ववचोव्याघातात् ५५॥

अपने वचनके व्याघातसे अन्यथा ख्याति नहीं है ॥ ५५॥

जो यह कहा जावे कि, अन्यपदार्थ अन्य रूपसे भासित होता है तो यह अपनेही वचनका व्याघात है कि, शब्दसे अन्यथा कहता है व भाव उसका अन्यथा कहता है और अन्यमें अन्यस्वरूप होना भी मनुष्यके सींगकी तुल्य मिथ्या है इसस अन्य वस्तुका अन्यरूपसे भासित होना कहना भी असंगत है ॥ ५५ ॥

अब अत्यन्त बाध (नाश) न होनेमें अपना सिद्धांत वर्णन करते हैं-

सदसत्ख्यातिबाधाबाधात् ॥ ५६ ॥

सत् असत् ख्याति (कथन) बाध व अबाध होनेसे ॥ ५६ ॥

प्रतिपन्न धर्मीमें निषेधबुद्धि विषय होनेको बाध कहते हैं सत् व असत् कहना बाध व अबाधसे होता है सब वस्तुओं (पदार्थों) के नित्य होनेसे स्वरूपसे गुणोंका बाध नहीं है इससे सत् हैं व संसर्गसे

सब वस्तुओंका चैतन्यमें बाध है अर्थात् जब ज्ञानसे बाह्य होते हैं बुद्धिगत नहीं होते ज्ञान संसर्गरहित होते हैं तब नष्ट सदृश ज्ञात होते हैं इससे असत् हैं यथा पट आदिमें अरुणरूप आदि जबतक पटमें दृष्ट होते हैं सत् विदित होते हैं पटसे दूर होजानेमें नष्ट समुझे जाते हैं परंतु स्वरूपसे उनका नाश सर्वथा नहीं होता इसी प्रकारसे अवस्था भेदसे कालान्तरमें गुणोंका परिणाममात्र होता है अत्यन्त बाध नहीं होता सत् असत् दोनों विरुद्ध हैं इससे दोनोंका होना कहना यथार्थ नहीं है जो यह संशय हो तो प्रकार भेद होनेसे विरोध नहीं होता यथा तत्त्व रूपसे जो चांदी है वह अपने रूपसे सत् है परन्तु सीपमें जो चांदीका बोध होता है उसमें भ्रमसे सत्यके सदृश बोध होनेसे असत् है इसी प्रकारसे जगत् प्रकृति कार्यरूप अपने स्वरूपसे सत् है चैतन्य आदिमें अध्यस्त-रूप असत् है इस प्रकारसे प्रकृति सत् असत् स्वरूप है ॥ ५६ ॥

यह सत् असत् पदार्थका निरूपण करके फिर शब्द विषयमें विशेष विचार करतेहैं ॥

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ॥ ५७ ॥

प्रतीति व अप्रतीति दोनों होनेसे शब्द स्फोटात्मक नहीं है ॥ ५७ ॥

प्रत्येक वर्णोंसे भिन्न कलश इत्यादि रूप अखण्ड एक पद वर्णोंके संयोगसे माना जाता है कलश आदि विशेष शब्द जिस अर्थके वाचक होते हैं उस अर्थके बोधको स्फुट (प्रकट) करते हैं शब्दसे अर्थ ज्ञानके प्रकट होने वा प्रतीत होनेको स्फोट कहते हैं शब्दसे यह स्फोट होता है इससे शब्दको स्फोटात्मक कहते हैं इस स्फोटके प्रतिषेधमें यह कहा है कि, शब्दको जो स्फोटात्मक मानते हैं उनका मत सत् नहीं है शब्द स्फोटात्मक नहीं है । क्यों नहीं है? प्रतीति अप्रती-

तिसे अर्थात् शब्दसे अर्थकी प्रतीति होती है और नहीं भी होती प्रथम जिसको इस स्फोटका ज्ञान हो गया है कि, ये विशेष शब्द इन विशिष्ट अर्थोंके वाचक हैं उसीको अर्थका बोध होता है जिसको स्फोटका ज्ञान नहीं है उसको शब्द विशेषसे अर्थ विशेषका ज्ञान नहीं होता अर्थात् उसको अर्थ बोध करानेकी शब्दोंमें स्वतः (आपसे) शक्ति नहीं है इससे शब्दमें स्फोटकल्पना व्यर्थ है ॥ ५७ ॥

न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ॥ ५८ ॥

कार्य होनेकी प्रतीतिसे शब्दकी नित्यता नहीं है ॥ ५८॥

शब्द उत्पन्न होता है व नष्ट होता है इससे कार्य है कार्य होनेकी प्रतीतिसे शब्द नित्य नहीं है इस हेतुसे कि, गकारका उच्चारण सुनकर यह प्रत्यभिज्ञान होता है कि, यह वही अक्षर गकार है जो पूर्वही सुना था अथवा जिसको पूर्वही गकार मानते थे शब्दको नित्य मानना युक्त नहीं है उत्पन्न गकारबोध होनेसे अनित्य हैं पूर्वगकारके सजातीय होनेसे प्रत्यभिज्ञानका होना सिद्ध होता है वही एकही होना सिद्ध नहीं होता अन्यथा घट आदिकोंकी भी प्रत्यभिज्ञा होनेसे नित्य मानना होगा ॥ ५८ ॥

पूर्वसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य५९॥

दीपसे घटके समान पूर्व सिद्ध सत्त्वकी प्रकटता है ॥ ५९ ॥

जो शब्द सत्तारूपसे पूर्वहीसे सिद्ध है वह धुनिसे केवल प्रकट होता है यही उत्पन्न होता है यथा—' घटसत्ता ' अर्थात् घटका होना पूर्वही सिद्ध होनेपर भी जब अधंकारसे दृष्ट नहीं होता तब घट नहीं है ऐसा विदित होता है दीपके प्रकाशसे उसकी अभिव्यक्ति (प्रकटता)

होती है इसी प्रकारसे पूर्व सिद्ध शब्दकी उच्चारणसे अभिव्यक्ति होती है ॥ ५९ ॥

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत्सिद्धसाधनम् ॥६०॥

सत्कार्य सिद्धांत होवे तो सिद्धसाधन है ॥ ६० ॥

अनागत अवस्थाको छोडकर जो वर्तमान अवस्थाका लाभ करना अभिव्यक्ति अंगीकार कीजावे तो सत्कार्य सिद्धांत है अर्थात् कार्यके सदा सत् होनेका सिद्धांत है ऐसी नित्यता सब कार्योंकी है सब कार्योंकी नित्यता होनेमें सिद्ध साधन दोष होगा और जो यह माना जाय कि, वर्तमानही रूपसे सत् है ज्ञान मात्र होना अभिव्यक्ति है तो घट आदि-कोंकी भी नित्यता सिद्ध होगी इससे घट आदिके तुल्य कार्यरूप शब्द अनित्य है ॥ ६० ॥

अब आत्माके अद्वैत माननेवालोंके मतका प्रतिषेध करते हैं—

नाद्वैतमात्मनो लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः ॥६१॥

आत्माके लिंग (लक्षण) से इसके (आत्माके) भेदकी प्रतीति होनेसे अद्वैत नहीं है ॥ ६१ ॥

यद्यपि यथा आत्माके भेद लिंग (लक्षण) में श्रुति वाक्य हैं तथा अभेद वाक्यभी हैं तथापि अजा वाक्यमें जिसमें यह वर्णन किया है कि, एक पुरुष प्रकृतिको भोग करता है व दूसरा विवेकको प्राप्त वैराग्यसे प्रकृतिको त्याग करता है त्याग आदि लिंग (लक्षण) से आत्माके भेदही होनेकी सिद्धि होती है अद्वैत वाक्य साधर्म्य होने व वैधर्म्य न होनेसे एकता प्रतिपादन पर है अत्यन्त अभेद प्रतिपादक नहीं है अत्यन्त अभेदमें एकका त्यागकरना अन्यका त्याग न करना यह भेद होना संभव नहीं होसक्ता इससे अद्वैत नहीं है ॥ ६१ ॥

श्रुति प्रमाणसे भेद होना वर्णन करके प्रत्यक्ष भी अद्वैत होनेका बाधक है यह वर्णन करते हैं—

नानात्मनापि प्रत्यक्षबाधात् ॥ ६२ ॥

अनात्मासे कभी प्रत्यक्ष बाधा होनेसे अद्वैत नहीं है ॥ ६२ ॥

अनात्मासे अर्थात् भोग्य प्रपंचसे प्रत्यक्षसे बाध होनेसे आत्माका अद्वैत होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि एक आत्मामें अनेक प्रकारके भोग होना सिद्ध नहीं होसकते और आत्माके भोग्योंमें भेद न होनेमें घट पट आदिका भी अभेद होना सिद्ध होगा ॥ ६२ ॥

नोभाभ्यां तेनैव ॥ ६३ ॥

उक्तहेतुहीसे दोनोंसे अद्वैत नहीं है ॥ ६३ ॥

उक्त हेतुहीसे अर्थात् प्रत्यक्ष बाधहीसे आत्मा व अनात्मा दोनोंसे अद्वैत होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् अनेक प्रकारके भोग्योंका भोग एकही आत्मामें होना अथवा एक आत्माका अनेक प्रकारके भोग एक दूसरेके विरुद्ध इष्ट अनिष्ट रूपका ग्रहण करना दोनों असंभव प्रत्यक्ष विरुद्ध होनेसे अद्वैत सिद्ध नहीं होता अथवा दोनों पूर्वोक्त हेतुओंसे आत्मा व अनात्मासे अद्वैत सिद्ध नहीं होता ॥ ६३ ॥

शंका-" आत्मैवेदं सर्वम् " तथा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थ-आत्मा ही यह सब है तथा निश्चय करके यह सब ब्रह्म है इत्यादि श्रुतियोंके द्वैतके विरुद्ध होनेका क्या हेतु है ? उत्तर-

अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ॥ ६४ ॥

तिसमें (अद्वैतमें) अविवेकियोंप्रति अन्यपरत्व अर्थात् उपासनार्थक अनुवाद है ॥ ६४ ॥

लोकमें शरीर शरीरी व भोक्ता भोग्यमें अविवेकसे अभेद व्यवहार करते हैं यथा ' मैं गोरा हूं ' यद्यपि गोरा होना देहका धर्म है आत्माका नहीं है तथापि अविवेकसे अभेद व्यवहार करते हैं इससे उसी प्रकारके व्यव-

हारको कहकर उन अविवेकियोंप्रति सत्वशुद्धि आदिके अर्थ स्तुति उपासनाका विधान करती है और इसीसे परमार्थदशामें उपास्योंके आत्मा होनेका श्रुति प्रतिषेध करती है यथा श्रुतिमें कहा है "यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" अर्थ–जो मनसे नहीं जानता अर्थात् विना मनद्वारा सब जानता है जिससे मन जाना गया ऐसा कहते हैं उसीको तू ब्रह्म जान न इसको जिसकी उपासना करता है इत्यादि ॥ ६४ ॥

नात्माविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसंगत्वात् ॥ ६५ ॥

न आत्मा व अविद्या न दोनों निःसंग होनेसे जगत्के उपादान कारण नहीं हैं ॥ ६५ ॥

आत्मा व आत्मामें आश्रित अविद्या अथवा दोनों निःसंग होनेसे अर्थात् आत्माके संग रहित होनेसे जगत्के उपादान कारण नहीं हैं क्योंकि संगहीसे द्रव्योंका विकार होता है इससे केवल अद्वितीय आत्माका असंग होनेसे उपादान होना संभव नहीं होता न अविद्याद्वारा उपादान होना संभव होता है क्योंकि अविद्याके योग होनेका पूर्वेही निषेध किया गया है ॥ ६५ ॥

नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ॥ ६६ ॥

दोनोंमें भेद होनेसे आनन्द व चैतन्य (ज्ञान) दोनों रूप होना एकका धर्म नहीं है ॥ ६६ ॥

ब्रह्मको श्रुतिमें आनन्दरूपभी वर्णन किया है यथा " सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" अर्थ–सत्य विज्ञानरूप आनन्दरूप ब्रह्म इससे आनन्दरूप ब्रह्मके होनेके प्रतिषेधसे व श्रुतिसे आनन्दरूप होनेका जो भ्रम होता है उसके निवारणके अर्थ सूत्रमें यह कहा है कि, आनन्द व चैतन्य दोनें

एकही धर्मीके धर्म होना संभव नहीं होते क्योंकि जिस कालमें दुःखका ज्ञान होता है उस कालमें सुखके अनुभव न होनेसे ज्ञान सुखका भेद सिद्ध होता है यह समुझा जावे कि, ज्ञान विशेष सुख है तो ऐसा कहनाभी युक्त नहीं है क्योंकि आत्मस्वरूप जो ज्ञान है वह अखण्ड है इसीसे चैतन्यके अनुभवकालमें सुखका आवरणभी नहीं कहा जासकता अखण्ड होनेसे आनन्दका आवरण होना संभव न होनेसे मैं दुःखको जानता हूँ, यह अनुभव होना असंभव है आत्मामें अंश भेद नहीं है कि, जिस अंशमें आनन्दका आवरण होता है उसमेंभी चैतन्य अंश माना जाय व श्रुतिभी आत्माको दुःखसुखरहित वर्णन करती है यथा "नानन्दं न निरानन्दम्" इत्यादि । अर्थ–न आनन्दरूप है न आनन्द रहित है इत्यादि इससे आनन्द आत्माका गुण नहीं है दुःख सुख प्रकृति कार्यका धर्म है ॥ ६६ ॥

शंका–आनन्दरूप प्रतिपादन करनेवाली श्रुतिका यथार्थ होना किस प्रकारसे माना जायगा ? उत्तर–

दुःखनिवृत्तेर्गौणः ॥ ६७ ॥

दुःखनिवृत्तिसे गौण है ॥ ६७ ॥

औपाधिक दुःखकी निवृत्तिसे जो आत्मा सुखरूप कहा जाता है इस भावसे आनन्द शब्द गौण श्रुतिमें कहा है श्रुति औपाधिक आनन्द पर है ॥ ६७ ॥

विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ॥ ६८ ॥

मन्दोंके अर्थ विमुक्तिकी प्रशंसा है ॥ ६८ ॥

मन्द जो अज्ञानि हैं उनकी रुचि बढानेके लिये दुःखनिवृत्तिरूप सुखमय आत्मस्वरूप मुक्तिकी श्रुति अज्ञानियोंप्रति प्रशंसा करती है ॥ ६८ ॥

मनके व्यापक न होनेका हेतु वर्णन करते हैं—

न व्यापकत्वं मनसः करणत्वा- दिन्द्रियत्वाद्वा ॥ ६९ ॥

करण होने अथवा इन्द्रिय होनेसे मनका व्यापक होना सिद्ध नहीं है ॥ ६९ ॥

मन अंतःकरण होनेसे जैसे अन्य करण व्यापक नहीं होते व्यापक नहीं है अथवा ज्ञान व कर्म इन्द्रियोंसे भिन्न अंतःकरण रूप इन्द्रिय विशेष देह मात्रमें दुःख सुख व इन्द्रिय विषयोंका ग्राहक होनेसे मनका मध्यमपरिमाण होना संभव होता है विभु होना सिद्ध नहीं होता ॥६९॥

सक्रियत्वाद्गतिश्रुतेः ॥ ७० ॥

गति सुननेसे क्रिया संयुक्त होनेसे ॥ ७० ॥

आत्माका लोकान्तरमें गमन सुननेसे अथवा आत्माके 'गमन आगमन' वर्णनमें श्रुति प्रमाण होनेसे आत्मउपाधिभूत अंतःकरणका क्रिया संयुक्त होना सिद्ध होनेसे मनका विभु (व्यापक) होना संभव नहीं होता क्योंकि विभु आत्मामें स्वाभाविक गमन होना सिद्ध नहीं होता ॥ ७० ॥

मनके निरवयव होनेका प्रतिषेध करते हैं—

न निर्भागत्वं तद्योगाद्घटवत् ॥ ७१ ॥

उनके संयोग होनेसे घटके समान भागरहित (निरवयव) नहीं है ॥ ७१ ॥

उनके अर्थात् इन्द्रियोंके साथ मनका योग होनेसे मन घटके समान निरवयव नहीं है अर्थात् यथा घट मध्यमपरिमाणयुक्त व सावयव है उसमें अनेक अवयवोंका संयोग है इसीप्रकारसे मनका अनेक इन्द्रि- योंके साथ संयोग होनेसे मनका निरवयव होना सिद्ध नहीं होता

क्योंकि निरवयवका इन्द्रियोंके साथ संयोग नहीं होसकता संयोग वियोग सावयवमें होता है ॥ ७१ ॥

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम् ॥ ७२ ॥

प्रकृति पुरुषसे अन्य सब अनित्य है ॥७२॥

कारणरूप प्रकृति व चेतन पुरुष ये दो नित्य हैं और सब कार्यरूप पदार्थ अनित्य हैं ॥ ७२ ॥

न भागलाभो भोगिनो निर्भागत्वश्रुतेः७३॥

श्रुतिप्रमाणसे भोगीके भागरहित होनेसे भोगीके भाग होनेकी सिद्धि नहीं होती ॥७३॥

भोगी (पुरुष) के भाग (अवयव) होनेकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि श्रुतिमें पुरुषको भागरहित कहा है श्रुति यह है "निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम्" अर्थ—अवयव वा अंशरहित क्रियारहित शांत निर्दोष मायारहित है जो श्रुति सावयव कहा है उसका अभिप्राय उपाधिवशसे आकाश जलके तुल्य सावयव व क्रियासहित होना है ॥ ७३ ॥

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात् ॥ ७४॥

धर्मरहित होनेसे आनन्दकी अभिव्यक्ति मुक्ति नहीं है ॥ ७४ ॥

आत्मामें आनन्दरूप व अभिव्यक्तिरूप धर्म नहीं है आत्मा अपने स्वरूप ज्ञान रूपपात्रसे नित्य है इससे आनन्दकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) मोक्ष नहीं है ॥ ७४ ॥

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ॥ ७५ ॥

इसी प्रकारसे विशेषगुणोंका नाश मोक्ष नहीं है॥७५॥

आत्माके धर्मरहित होनेसे यथा आनन्दकी अभिव्यक्ति मोक्ष नहीं है तथा अशेष विशेषगुणोंका नाश अथवा विशेषगुणोंसे रहित होना भी मोक्ष नहीं है जो यह संशय हो कि, ऐसा माननेमें दुःखकी निवृत्तिका भी मोक्ष होना संभव न होगा व दुःखका अभाव भी धर्महो है तो इसका समाधान यह है कि, भोग्यतासम्बंधहीसे जो दुःख है उसके अभावको हम पुरुषार्थता (मोक्ष) मानते हैं पुरुषमें स्वाभाविक दुःखसम्बंध व उसकी निवृत्तिको नहीं मानते ॥ ७५ ॥

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ॥ ७६ ॥

क्रियारहितकी विशेष गति नहीं है ॥ ७६ ॥

ब्रह्मलोक आदिको जाना भी मोक्ष नहीं है क्योंकि क्रियारहित आत्मामें गतिका अभाव है लिंगशरीरसे गमन मानने व लिंगशरीर अंगीकार करनेहीसे मोक्षका होना घटित नहीं होता ॥ ७६ ॥

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ॥ ७७ ॥

क्षणिक होने आदिके दोषसे आकारके उपरागका नाश मोक्ष नहीं है ॥ ७७ ॥

कोई नास्तिक यह मानते हैं कि, क्षणिक ज्ञानही आत्मा है उसका विषयाकार होना बंध है उस विषयाकारकी वासनारूप जो राग है उसका नाश मोक्ष है इसके प्रतिषेधमें सूत्रमें यह कहा है कि, क्षणिक ज्ञान मात्र मानना युक्त नहीं है क्योंकि क्षणिक होने आदिके दोषसे मोक्षका भी पुरुषार्थ होना सिद्ध नहीं होता ॥ ७७ ॥

न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ॥ ७८ ॥

पुरुषार्थ न होना आदि दोष होनेसे सर्व नाश होना मोक्ष नहीं है ॥ ७८ ॥

जो नास्तिक आत्माका सर्वथा नाश होना मानते हैं और आत्माका नाश होनाही मोक्ष मानते हैं उनके मतके दूषणमें यह कहा है कि, आत्माके समग्ररूपसे नाश होने अथवा सबके नाश होनेमें आत्माके भी नाश होनेमें पुरुषार्थरूप मोक्ष होना संभव नहीं है लोकमें नष्ट हुए आत्माका पुरुषार्थ होना देखनेमें नहीं आता इससे पुरुषार्थ न होनेके दोषसे मोक्ष असंभव है ॥ ७८ ।

एवं शून्यमपि ॥ ७९ ॥

इसी प्रकारसे शून्य भी ॥ ७९ ॥

इसी प्रकारसे ज्ञानमें ज्ञेयात्मक अखिल प्रपंचके नाश होनेमें भी आत्माके नाश होनेसे शून्य भी पुरुषार्थ सिद्ध न होनेसे मोक्ष नहीं है ७९॥

संयोगाश्च वियोगान्ता इति न देशादिलाभोऽपि ॥ ८० ॥

सब संयोग वियोगके अंततक होते हैं इससे देश आदिलाभ भी मोक्ष नहीं है ॥ ८० ॥

अति उच्च उत्तम लोक देश धन सुन्दर स्त्री आदिकोंके (स्वामी) होनेसे भी मोक्ष नहीं है इस हेतुसे कि, सब संयोग वियोगके अंततक अर्थात् मरणतक अथवा अपने नाश होनेतक रहते हैं विनाशी होनेसे उनका स्वामी होना मोक्ष नहीं है ॥ ८० ॥

न भागियोगो भागस्य ॥ ८१ ॥

अंशीअंशका योग मोक्ष नहीं है ॥ ८१ ॥

जो जीवको ईश्वरका अंश मानते हैं और ईश्वरमें योग (मेल) होना मोक्ष मानते हैं उनके इस मतके प्रतिषेधमें यह कहा है कि, भाग(अंश) रूप जीवका भागी (अंशी) परमात्मामें योग होना अथवा लय होना मोक्ष नहीं है इस हेतुसे कि योगका वियोग होता है वियोग होनेसे अनित्य है अनित्य होनेसे पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता तथा अपनेमें लय होना पुरुषार्थ नहीं है इससे मोक्ष नहीं है ॥ ८१ ॥

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यंभावित्वात्त-
दुच्छित्तेरितरयोगवत् ॥ ८२ ॥

अणिमा आदिका योगभी अन्ययोगके तुल्य उसका नाश अवश्य होनहार होनेसे मोक्ष नहीं है ॥ ८२ ॥

अणिमा आदि जो अष्ट सिद्धि हैं उनका योग होना अर्थात् उनका प्राप्त होना भी मोक्ष नहीं है क्योंकि अन्य योगके समान अणिमा आदिके योगका भी वियोग अवश्य होगा वियोग होनेसे अर्थात् नाश होनेसे पुरुषार्थ नहीं है ॥ ८२ ॥

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ॥ ८३ ॥

तथा इन्द्र आदिके पदका योग भी मोक्ष नहीं है ॥ ८३ ॥

तथा अर्थात् अणिमादिके योगके समान इन्द्र आदिके पदका योग अर्थात् प्राप्त होना भी मोक्ष नहीं है नाशवान् अनित्य होनेसे पुरुषार्थ नहीं है ॥ ८३ ॥

पूर्वही इन्द्रियोंको आहंकारिक कहा है उसके विरुद्ध जो इन्द्रियोंको भौतिक मानते हैं उनके मतका अर्थात् इन्द्रियोंके भौतिक होनेका प्रतिषेध करते हैं ॥

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहंकारि-
कत्वश्रुतेः ॥ ८४ ॥

इन्द्रियोंके आहंकारिक होनेमें श्रुतिप्रमाण होनेसे इन्द्रियोंका भूतप्रकृति होना अर्थात् भौत्तिक होना सिद्ध नहीं होता ॥ ८४ ॥

सुगम है व पूर्वही इसका व्याख्यान किया है ॥ ८४ ॥

न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ॥ ८५ ॥

षट्पदार्थका नियम व उनके बोधसे मुक्ति नहीं है॥ ८५ ॥

वैशेषिक जो यह मानते हैं कि, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, ये छः पदार्थ हैं व इनके ज्ञानसे मुक्ति होती है वे अप्रामाणिक हैं प्रकृति आदि अधिक पदार्थ हैं जिनका पदार्थज्ञान होना उचित है यद्यपि षट्पदार्थमें प्रकृतिकार्योंका वर्णन किया है परन्तु कारण प्रकृतिका जिसमें साम्यावस्थामें पृथ्वी आदिके समान गंध आदि गुण नहीं होते वर्णन नहीं किया तथा शक्तिका वर्णन नहीं किया इससे षट्पदार्थका मानना यथार्थ नहीं है ॥ ८५ ॥

षोडशादिष्वप्येवम् ॥ ८६ ॥

इसीप्रकारसे षोडश आदिमें ॥ ८६ ॥

नैयायिक जो षोडशपदार्थ व उनके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष मानते हैं यह भी षट्पदार्थके तुल्य अप्रामाणिक हैं अर्थात् षोडश पदार्थमात्र होनेका नियम नहीं है षोडश पदार्थसे अधिक पदार्थ हैं इसीसे इस शास्त्रमें पचीस तत्त्व कहे गये हैं व पचीसही द्रव्यके अन्तर्गत गुण कर्म आदि भी जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ॥ ८७ ॥

अणुकी नित्यता उसके कार्यत्व प्रतिपादक श्रुति होनेसे नहीं है अर्थात् सिद्धि नहीं होती ॥ ८७ ॥

श्रुतिप्रमाणसे अणुका कार्य होना सिद्ध होता है कार्य नित्य नहीं होता विनाशी होता है इससे अणु अर्थात् परमाणु नित्य नहीं है जो परमाणुको नित्य मानते हैं उनका नित्य मानना यथार्थ नहीं है यद्यपि अणुके कार्य होनेमें जो श्रुति है वह बहुत वेदकी शाखाओंको लुप्त हो जानेसे इस कालमें देखनेमें नहीं आई तथापि आचार्यवाक्यसे व मनुस्मृतिके प्रमाणसे माननेके योग्य है मनुस्मृतिमें यह कहा है "अण्व्यो मात्राविनाशिन्यो दशार्धानां च याः स्मृताः ॥ ताभिस्सार्द्धमिदं सर्वं

संभवत्यनुपूर्वशः” अर्थ–देशके आधे पांचके अर्थात् पृथ्वी आदि पांच भूतोंके जो अणु मात्रा विनाश होनेवाली हैं उनके सहित यह सब जगत् पूर्वसृष्टिके सदृश उत्पन्न होता है अणु शब्द यहां परमाणु वाचक है परन्तु जहांतक अणु होनेका व्यवहारहै वहाँतक कुछ आकार परिमाण होना संभव होनेसे कार्य होने व नाशवान् होनेका अनुमान होता है इससे अतिसूक्ष्म कारण सत्तामात्र प्रकृतिहीका नित्यमानना उचित है ॥ ८७ ॥

न निर्भागत्वं कार्यत्वात् ॥ ८८ ॥

कार्य होनेसे भागरहित होना सिद्ध नहीं होता॥८८॥

श्रुति प्रमाणसे अणुके कार्य होनेसे अणुका भाग रहित (निरवयव) होना सिद्ध नहीं होता इससे निरवयव मानना युक्त नहीं है ॥ ८८ ॥

न रूपनिबंधनात् प्रत्यक्षनियमः ॥ ८९ ॥

रूप निमित्तसे प्रत्यक्ष होनेका नियम नहीं है ॥ ८९ ॥

रूपहीके निमित्तसे प्रत्यक्ष होनेका नियम नहीं है धर्म आदिसे भी साक्षात्कार होना संभव होता है अर्थात् स्थूलद्रव्योंका बाह्य इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होता है सूक्ष्मका अन्तर इन्द्रियद्वारा धर्म आदिसे प्रत्यक्ष होता है अर्थात् साक्षात्कार होता है ॥ ८२ ॥

न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात् ॥ ९० ॥

परिमाण चार प्रकारका नहीं है दोसे उनके योग होनेसे ॥ ९० ॥

अणु, महत, ह्रस्व दीर्घसे चार परिमाण कहे जाते हैं परन्तु दोही करके अर्थात् अणु महत् दोके साथ उनके अर्थात् चारोंके योग होनेसे परिमाण चार नहीं हैं दीर्घमहत्का अन्तर्गत व ह्रस्व अणुके अन्तर्गत माननेसे दोही परिमाण हैं ॥ ९० ॥

सामान्यद्वारा पुरुषकी ऐक्यता व प्रकृतिकी ऐक्यताका ज्ञान होता है इससे सामान्यको वर्णन करते हैं-

अनित्यत्वेऽपि स्थिरता योगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ॥ ९१ ॥

अनित्य होनेमें भी स्थिरताको योगसे सामान्यका प्रत्यभिज्ञान होता है ॥ ९१ ॥

व्यक्तियोंके अनित्य होनेमें भी 'यह वही घट है' स्थिरतायोगसे ऐसा जो प्रत्यभिज्ञान (स्मरण) होता है वह सामान्यका प्रत्यभिज्ञान होता है अर्थात् वह प्रत्यभिज्ञान सामान्य विषयक है ॥ ९१ ॥

न तदपलापस्तस्मात् ॥ ९२ ॥

तिससे उसका अपलाप (असत् कथन) नहीं है ॥ ९२॥

तिससे उसका (सामान्यका) अपलाप (मिथ्या कथन) नहीं है अथवा नहीं होसकता सामान्यपदार्थ सत्य है ॥ ९२ ॥

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः ॥ ९३ ॥

भावकी प्रतीति होनेसे अन्यनिवृत्तिरूप होना नहीं है॥ ९३॥

'वही यह है' इस भाव प्रत्ययसे सामान्य अन्यका निवृत्तिरूप होना सिद्धि नहीं होती अन्यथा 'यह घट नहीं है' यही प्रतीत होता है. अन्यकी व्यावृत्ति माननेमें यथा घट न होनेमें घट होनेकी व्यावृत्ति (निवृत्ति) अर्थात् घटका न होना घट सामान्यसे भिन्न होनेको सामान्य मानना है इससे सामान्य भावरूपही है अभावरूप नहीं है ॥ ९३ ॥

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः ॥ ९४ ॥

प्रत्यक्षसे उपलब्धि होनेसे सादृश्य तत्त्वान्तर नहींहै॥ ९४॥

अवयव आदिके सामान्यसे भिन्न सादृश्य नहीं है सामान्यरूपही प्रत्यक्षसे विदित होनेसे सामान्यरूपही सादृश्यको मानना चाहिये ॥ ९४ ॥

शंका-जो स्वाभाविक शक्तिही सादृश्य मानी जाय तो वह सामान्य नहीं है ? उत्तर-

निजशक्त्याभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात्त-दुपलब्धेः ॥ ९५ ॥

स्वाभाविकशक्तिकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) भी सादृश्य नहीं है विलक्षणतासे उसकी उपलब्धि होनेसे ॥ ९५ ॥

स्वाभाविकशक्तिका उत्पन्न होना व प्रकट होना सादृश्य नहीं है इस हेतुसे कि, शक्तिकी उपलब्धि (ज्ञान) से सादृश्यकी उपलब्धिकी विलक्षणता है शक्तिकी उपलब्धिमें अर्थात् शक्तिके ज्ञानमें अन्यधर्मीके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती सादृश्यज्ञान अभावके ज्ञानके समान प्रतियोगीके अर्थात् जिसका अभाव होताहै उसके ज्ञानकी अपेक्षा करताहै इससे दोनोंमें विलक्षणता है धर्मीकी निजशक्ति (स्वाभाविकी शक्ति) सामान्यही है सामान्यरूप धर्मीकी शक्ति सादृश्य नहीं है धर्मीकी शक्ति सामान्य व सादृश्यमें भेद न माननेमें बाल्य अवस्थामें भी युवाके सादृश्यकी प्राप्ति हो जावेगी जो यह कहा जावे कि, युवा आदि कालसम्बंधी शक्तिविशेष, युवा आदिका सादृश्य है तो ऐसा माननेमें भी प्रतिव्यक्तिमें अनन्तशक्ति कल्पना करनेकी अपेक्षा कल्पनामात्रसे साधारण एक सामान्यकल्पना करना युक्त है इससे सामान्य व सादृश्य एक नहीं हैं ॥ ९५ ॥

अब जो शब्द व अर्थमें नित्य सम्बंध मानते हैं वे यह कहते हैं कि, घट आदि संज्ञकत्व (नाम होना) ही घट आदि व्यक्तियोंका सादृश्य है इसके प्रतिषेधमें यह सूत्र है-

न संज्ञासंज्ञिसम्बंधोऽपि ॥ ९६ ॥

संज्ञासंज्ञीका सम्बंध भी नहीं है ॥ ९६ ॥

संज्ञासंज्ञीका सम्बंध भी विलक्षणता होनेसे सादृश्य नहीं है अर्थात् जो संज्ञा (नाम) व संज्ञी (नामी) भावको नहीं जानता उसको भी

सादृश्यका ज्ञान होता है इस विलक्षणतासे संज्ञा संज्ञीका सम्बंध सादृश्य नहीं है ॥ ९६ ॥

न सम्बंधनित्यतोभयानित्यत्वात् ॥ ९७ ॥

दोनोंके अनित्य होनेसे सम्बंधकी नित्यता नहीं है॥ ९७॥

संज्ञा संज्ञीके अनित्यहोनेसे उनके सम्बंधकी नित्यता नहींहै द्रव्यके नष्ट होजानेपर उस जातिसम्बंधी शब्द व व्यक्तियोंके बने रहनेसे उस शब्दका व्यवहार होता है व शब्द नष्ट होजानेपर व संज्ञा न जानेहुए अर्थकी भी प्रतीति होनेसे दोनोंकी अनित्यतासे है क्योंकि अतीतका वर्तमानके साथ सम्बन्ध होना संभव न होनेसे सम्बन्धकी नित्यता सिद्ध नहीं होसकती ॥ ९७ ॥

नातः सम्बंधो धर्मिग्राहकमानबाधात् ॥ ९८ ॥

इससे धर्मीके ग्राहक प्रमाणसे बाध (निषेध) होनेसे संबन्ध नहीं है अर्थात् संबन्ध नित्य नहीं है ॥ ९८ ॥

कभी विभाग होनेहीसे सम्बन्ध सिद्ध होता है अन्यथा जैसा कि आगे वर्णन कियाजायगा स्वरूपहीसे प्राप्त होने वा सिद्ध होनेमें सम्बंध कल्पना करनेका अवकाश नहीं होसकता और जो कभी विभाग होना माना जावे तो नित्यसम्बन्ध होनेकी हानी होती है क्योंकि नित्यसम्बन्धमें कभी विभाग होना संभव नहीं होसकता इससे धर्मीग्राहक प्रमाणसे अर्थात् धर्म-धर्मी सम्बन्धग्राहक प्रमाणहीसे बाध होनेसे अर्थात् सम्बन्धका निषेध होजानेसे नित्यसम्बन्ध होना सिद्ध नहीं होता ॥ ९८ ॥

अब यह आशंका है कि, ऐसा माननेमें नित्य गुण व गुणीका समवाय (नित्यसम्बन्ध) होना सिद्ध न होगा नित्य गुणगुणी-का नित्य सम्बन्धमाननेके योग्य समझा जाता है इसका उत्तर वर्णन करते हैं—

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ॥ ९९ ॥

प्रमाणके अभावसे समवाय (नित्यसंबन्ध) नहीं है॥९९॥
समवायक होनेमें प्रमाणका अभाव है इससे समवाय पदार्थ नहीं है॥९९

उभयत्राप्यन्यथा सिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ॥ १०० ॥

दोनोंमें अन्यथासिद्धि होनेसे न प्रत्यक्ष है न अनुमान है ॥ १०० ॥

जिसमें विशेषपदार्थका सम्बन्ध हो उसको विशिष्ट (विषेशसंयुक्त) कहते हैं व विशिष्ट होना वैशिष्ट्य कहाजाता है दोनोंमें वैशिष्ट्यके प्रत्यक्ष अथवा अनुमानमें स्वरूपहीसे अन्यथा सिद्ध होनेसे समवायमें प्रत्यक्ष व अनुमान दोनों प्रमाण नहीं हैं यह भाव है, यथा समवायके विशिष्ट होनेकी बुद्धि प्रत्यक्ष व अनुमानके अन्यथा सिद्ध होनेपर भी अनवस्थाभयसे समवायके स्वरूपहीसे ग्रहण की जाती है इसी प्रकारसे गुणगुणी आदिके विशिष्ट होनेकी बुद्धि भी उसमें प्रत्यक्ष व अनुमान अन्यथा सिद्धि होनेपर भी गुण आदिके स्वरूपहीसे सिद्ध जानना चाहिये जो यह शंका हो कि, ऐसे तर्कसे संयोग भी सिद्ध न होगा भूतल आदिमें घट आदिके प्रत्ययको भी स्वरूपहीसे सिद्ध मानना चाहिये ? तो इसका उत्तर यह है कि, वियोगकालमें भी घट व भूतलका स्वरूप अपनी अपनी अवस्थासे बने रहनेसे विशिष्टबुद्धि होनेका प्रसंग है इससे संयोग सिद्ध होता है समवायस्थलमें समवेत (समवायसंयुक्त) का कहीं अपने आश्रयसे वियोग नहीं होता इससे समवाय सिद्ध नहीं होता जो यह कहा जावे कि, कहीं तादात्म्यसम्बन्धमें ऐसा होनेसे समवायका अन्यथा होना सिद्ध नहीं होता इससे दोष नहीं है तो शब्दमात्रके भेदसे अत्यन्त तादात्म्य (उसीके रूपमयहोना) न कहना चाहिये गुणके वियोगमें भी गुणी रहता है इससे और विशिष्ट होनेके प्रत्यय न होनेसे समवाय सिद्ध नहीं होता सम्बन्धविशेष भेद अभेद नियामक कहना योग्य है तादात्म्य शब्द कथनमात्रका भेद है तादात्म्यके सदृश (वही) कहनेमात्रसे समवायकी सिद्धि नहीं होती ॥ १०० ॥

नानुमेयत्वमेव क्रियायाने दिष्टस्य तत्त- द्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ॥ १०१ ॥

निकटस्थ देखनेवालेको उसकी व उस संयुक्त दोनोंकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होनेसे क्रियाका केवल अनुमान- हीके योग्य होना सिद्ध नहीं होता ॥ १०१ ॥

प्रकृतिके क्षोभसे प्रकृति व पुरुषके संयोगहोने रूप क्रिया होनेसे सृष्टि होती है यह सिद्धांत है इसमें यह निश्चय होनेके अर्थ कि क्रिया कोई पदार्थ है और कहीं उसका प्रत्यक्ष भी होता है जिसके द्वारा उसका अनुमान किया जाता है अथवा अनुमानके योग्य मानलेनामात्र है यह कहा है कि, देशान्तरके संयोग आदिसे क्रिया केवल अनुमानहीके योग्य नहीं है जो निकटस्थ (निकटमें स्थित) देखनेवाला है उसको उसके व उसके संयुक्तके अर्थात् क्रिया व क्रियासंयुक्त दोनोंके होनेकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है यथा 'वृक्ष हिलताहै; मनुष्य चलता है' इत्यादिमें ॥ १०१ ॥

द्वितीयाध्यायमें शरीरके विषयमें मतभेदमात्रका वर्णन किया है विशष निर्णय नहीं किया. अब यहां विशेषके निश्चय व परपक्षके प्रतिषेधमें वर्णन करते हैं–

न पांचभौतिकं शरीरं बहूनामुपादा- नायोगात् ॥ १०२ ॥

बहुतोंके उपादान होनेके योग न होनेसे शरीर पांचभौतिक नहीं है ॥ १०२ ॥

बहुत भिन्नजातियोंका उपादान होना घट पट आदि स्थलमें प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे सब शरीर पांचभौतिक (पंचभूतसे उत्पन्न) नहीं है ॥ १०२ ॥

बहुत यह कहते हैं कि, स्थूलही शरीर होता है। इसका निषेध करते हैं—

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्या-
पि विद्यमानत्वात् ॥ १०३ ॥

स्थूल ही होना नियम नहीं है आतिवाहिकके
भी विद्यमान होनेसे ॥१०३॥

स्थूल शरीर होनेका नियम नहीं है आतिवाहिक शरीरकेभी होनेसे अर्थात् आतिवाहिक शरीर भी होता है आतिवाहिक सूक्ष्म लिंगशरीरका नाम है जिससे प्राणी लोकान्तरको जाता है और वहभी भौतिक है क्योंकि विनाभूतके आश्रयहुये विना आधार चित्रके तुल्य स्थिर नहीं हो सक्ता न लोकान्तरको जासक्ताहै। शंका—सूक्ष्म लिंगशरीर सब शरीरमें कैसे व्यापक होता है ? उत्तर यह है कि, अपने प्रकाशसे दीपकके सब घरमें व्यापक होनेके सदृश व्यापक होता है ॥१०३ ॥

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः
सर्वप्राप्तेर्वा ॥ १०४ ॥

इन्द्रियोंका प्राप्त न हुयेका प्रकाशक होना
संभव नहीं है विना प्राप्तिके सब प्राप्ति होनेका
प्रसंग होनेसे ॥ १०४ ॥

प्राप्त न हुए अर्थोंका अर्थात् जिन अर्थोंके साथ सम्बन्ध प्राप्त नहीं हुवा उन अर्थोंका इन्द्रियोंका प्रकाशक होना संभव नहीं है यथा जिसमें अथवा जहाँ दीप आदिके प्रकाशका सम्बन्ध नहीं होता उस पदार्थके दीप आदि प्रकाशक नहीं होते विना प्राप्तहुएके प्रकाशक होनेमें व्यवहित (जो किसी पदार्थके आडमें है) आदि सब पदार्थोंके प्रकाशक होनेका प्रसंग होता है परन्तु व्यवहित आदि पदार्थोंका प्रत्यक्ष नहीं होता इससे दूरस्थ सूर्य आदिके सम्बंधके अर्थ गोलकसे इन्द्रिय भिन्न

है उस गोलकाभिन्न इन्द्रियके सम्बंधसे सूर्य आदिका प्रत्यक्ष होता है पुरुषमें अर्थ समर्पण करनेके द्वारा करणोंका अर्थ प्रकाशक होना है क्योंकि इन्द्रिय जड हैं जड इन्द्रियोंका दर्पणके तुल्य प्रकाशक होना है अर्थात् यथा दर्पण मुखप्रकाशक होता है परन्तु आप कुछ नहीं जानता केवल पुरुषको रूपज्ञान प्राप्त होनेका हेतु होता है इसी प्रकारसे इन्द्रियोंको जानना चाहिये ॥ १०४ ॥

न तेजोपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तित-स्तत्सिद्धेः ॥ १०५ ॥

तेजके गमनसे चक्षु (नेत्र) तैजस नहीं हैं वृत्तिसे उसकी सिद्धि होनेसे ॥ १०५ ॥

तेज फैलताहै व दूर जाकर प्राप्त होताहै यह देखकर चक्षुको तैजस न मानना चाहिये विना तैजस होनेमें भी प्राणके सदृश वृत्तिभेदसे दूर जाना सिद्ध होसकता है अर्थात् यथा प्राण नासाके अग्रसे शरीरसे बाहर कुछ दूर जाकर शरीरमें प्राप्त होता है इसी प्रकारसे चक्षु अतैजस द्रव्य होने पर भी वृत्तिद्वारा सूर्य आदिमें प्राप्त हो फिर शरीरमें प्राप्त होताहै॥ १०५॥

वृत्ति होनेमें क्या प्रमाण है ! उत्तर–

प्राप्तार्थप्रकाशलिंगाद्वृत्तिसिद्धिः ॥ १०६ ॥

प्राप्त अर्थहीमें प्रकाशहोनेके लिंगसे वृत्तिका होना सिद्ध होता है ॥ १०६ ॥

जो अर्थ दूर है उसमें गोलक प्राप्त नहीं होसक्ता शरीरही मात्रमें रहता है अप्राप्त वस्तुका प्रकाशक होना संभव नहीं होता इससे वृत्तिही द्वारा दूरस्थपदार्थमें प्रकाश वा ज्ञान होनेसे अनुमानसे वृत्ति होनेकी सिद्धि होती है ॥ १०६ ॥

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बंधार्थं सर्पतीति ॥ १०७ ॥

भाग व गुणसे भिन्न तत्त्व वृत्तिसम्बंधके अर्थ गमन करती है ॥ १०७ ॥

वृत्ति चक्षु आदिका भाग (अंश) नहीं है व रूप आदिके तुल्य गुण नहीं है क्योंकि चक्षुके भाग होनेमें चक्षु इन्द्रियका सूर्य आदिके साथ सम्बंध होना घटित न होता और गुण होनेमें गमनकी प्राप्ति न होती इससे बुद्धि वृत्तिभी दीप शिखाके समान द्रव्य रूपही परिणाम है॥१०७॥

शंका–इस प्रकारसे वृत्तियोंके द्रव्य होनेमें इच्छा आदिरूप बुद्धि गुणोंमें वृत्ति व्यवहार क्यों होता है ? उत्तर–

न द्रव्यनियमस्तद्योगात् ॥ १०८ ॥

तिसमें योग होनेसे द्रव्य होनेका नियम नहीं है॥ १०८॥

तिसमें अर्थात् वृत्तिमें योग होनेसे वृत्ति द्रव्यही होती है यह नियम नहीं है वृत्ति वर्तन व जीवनको कहते हैं यह यौगिक शब्द है जीवन स्वस्थिति (अपनी स्थिति) हेतुके व्यापारको कहते हैं क्योंकि जीव धातु बल व प्राणधारण अर्थमें है इससे जीवनका अर्थ बल व प्राणधारणारूप स्थितिका होनेसे व वैश्यवृति शूद्रवृत्ति आदि व्यवहारसे यह अर्थ सिद्ध होता है इससे यथा द्रव्य रूप वृत्ति सहित बुद्धि जीती अर्थात् जीवन धारण करती है इसी प्रकारसे इच्छा आदि वृत्तियां हैं उन सहित भी जीती है, सब वृत्तियोंके विरोधहीसे चित्तका मरण होता है ॥ १०८ ॥

शंका–इन्द्रियां भौतिक सुनी जाती हैं जो इस लोकमें भौतिक नहीं है तो अन्य लोकोंमें होंगी ? उत्तर–

न देशभेदेऽप्यन्योपादानताऽस्मदादिवन्नियमः ॥ १०९ ॥

देशभेद होनेमें भी अन्य उपादानता नहीं है अस्मदादिके समान नियम है ॥ १०९ ॥

ब्रह्मलोक आदि देशभेद होनेमें भी इन्द्रियोंका अहंकारसे भिन्न उपादान होना सिद्ध नहीं होता अस्मद् आदिके समान अर्थात् हम भूलोकवालोंके सदृश सब लोकवालोंके इन्द्रियोंका आहंकारिक होनेका नियम है देशभेदसे एक लिंगशरीरहीका सञ्चारमात्र सुना जाता है ॥ १०९ ॥

शंका-श्रुतिमें भौतिक क्यों कहा है ? उत्तर-

निमित्तव्यपदेशात्तद्व्यपदेशः ॥ ११० ॥

निमित्त व्यपदेशसे उसका व्यपदेश है ॥ ११० ॥

निमित्तमें भी प्राधान्यके कहनेकी इच्छासे उपादानका होना कहा जाता है यथा 'ईंधनसे अग्नि' यह कहनेमें ईंधन अग्निका उपादान कारण कहा जाता है, तेज आदिभूत आलम्बन करके उसके अनुगत अहंकारसे चक्षु आदि इन्द्रियोंका होना संभव होताहै यथा पार्थिव द्रव्य ईंधनको आलम्बन करके उसके अनुगत होनेसे तेजसे अग्नि होतीहै इत्यादि॥११०॥

अब स्थूल शरीरके भेदको वर्णन करते हैं-

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसांकल्पिकं सांसिद्धिकं चेति न नियमः ॥ १११ ॥

ऊष्मज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज, सांकल्पिक, सांसिद्धिक, शरीर होते हैं इससे नियम नहीं है ॥ १११ ॥

श्रुतिमें जो अण्डज जरायुज उद्भिज्ज त्रिविध शरीर कहा है वह इन त्रिविधसे अधिक होनेके अभिप्रायसे कहा है इन तीनही प्रकारके होनेका नियम नहीं है क्योंकि ऊष्मज आदि छः प्रकारके शरीर होते हैं ऊष्मज यथा मसा आदि, अण्डज पक्षी सर्प आदि, जरायुज मनुष्य आदि, उद्भिज्ज वृक्ष आदि, संकल्पज सनकादि ' सांसिद्धिक जो शरीर तप आदिकी सिद्धिसे उत्पन्न होते हैं ॥ १११ ॥

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात्तद्व्यपदेशः पूर्ववत् ॥ ११२ ॥

सबमें असाधारण्यसे पृथिवी उपादान है इसका वर्णन पूर्वहीके सदृश है ॥ ११२ ॥

असाधारण्यसे अर्थात् आधिक्य आदिसे उत्कर्ष होनेसे सब शरीरोंमें पृथिवीही उपादान कारण है शरीरमें पांचभौतिक चातुर्भौतिक आदि भेद कहना पूर्वहीके सदृश जानना चाहिये अर्थात् इन्द्रियोंका भौतिकत्व उपष्टम्भक (स्थापन करनेवाला) होना मात्र है ॥ ११२ ॥

शंका-शरीरमें प्राणके प्रधान होनेसे प्राणही शरीरका आरंभक है अथवा नहीं है ? उत्तर-

न देहारंभकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तितस्तत्सिद्धेः ॥ ११३ ॥

देह आरंभकका प्राण होना सिद्ध नहीं होता इन्द्रियोंकी शक्तिसे उसकी सिद्धि होनेसे ॥ ११३ ॥

देह आरंभ पदार्थका प्राण होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् प्राण देहका आरंभक नहीं है क्योंकि विना इन्द्रिय प्राणकी स्थिति नहीं है अन्वय व व्यतिरेकसे इन्द्रियोंके शक्ति विशेषहीसे प्राण होनेकी सिद्धि वा उत्पत्ति है करणवृत्तिरूप प्राण करणोंके वियोगमें नहीं रहता है इससे मृत देहमें करणके अभावसे प्राणका भी अभाव होनेसे प्राण देहका आरंभक नहीं है ॥ ११३ ॥

शंका-जो प्राण देहका कारण नहीं है तो विना प्राण भी देह उत्पन्न होवे ? उत्तर-

भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसंगात् ॥ ११४ ॥

भोक्ताके अधिष्ठान होनेसे भोगायतन निर्माण होता है अन्यथा पूतिभावके प्रसंग होनेसे ॥ ११४ ॥

भोक्ता प्राणीके अधिष्ठानसे (अधिष्ठानरूप प्राणसे) व्यापार होनेसे भोगायतन (भोगस्थान) शरीरका निर्माण होता है प्राणके व्यापार विना शुक्रशोणितका पूतिभाव होनेका प्रसंग होता है जैसा कि, प्राण व्यापार रहित होनेसे मृतदेहमें दुर्गंध होता है इससे रस संचार आदि व्यापारविशेषसे प्राण देहका निमित्त कारण है उपादान कारण नहीं है ॥ ११४ ॥

भृत्यद्वारास्वाम्यधिष्ठितिर्नैकान्तात् ॥ ११५ ॥

भृत्यद्वारा स्वामीकी अधिष्ठिति है, एकान्तसे नहीं है ॥

देह निर्माणमें व्यापाररूप अधिष्ठान एकान्तसे नहीं है अर्थात् साक्षात् चेतन स्वामीहीका नहीं है किन्तु प्राणरूप भृत्यद्वारा चेतनका अधिष्ठान है यथा पुर निर्माण करनेमें राजाकी भृत्यद्वारा अधिष्ठिति होती है प्राण साक्षात् देहमें व्यापारका अधिष्ठाता है पुरुषका अधिष्ठाता होना केवल प्राणके संयोग मात्रसे है यद्यपि प्राणहीके अधिष्ठानसे देहका निर्माण होता है तथापि प्राणद्वारा प्राणीके संयोगकी भी अपेक्षा होती है क्योंकि पुरुषहीके अर्थ प्राण करके देह निर्माण किया गया है इस आशयसे भोक्ताका अधिष्ठान होना कहागया है ॥ ११५ ॥

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥ ११६ ॥

समाधि व सुषुप्ति व मोक्षमें ब्रह्मरूपता होती है ॥ ११६ ॥

समाधिसे यहां असम्प्रज्ञात अवस्था सुषुप्तिसे समग्र सुषुप्ति मोक्षसे विदेह कैवल्य अभिप्राय है इन अवस्थाओंमें पुरुषको ब्रह्मरूपता प्राप्त होती है अर्थात् पुरुष ब्रह्मभावको प्राप्त होता है बुद्धिवृत्तियोंके लय होनेसे बुद्धि उपाधिकृत पदार्थके नाश होनेसे पूर्णताके साथ अपने स्वरूपमें स्थित होता है यथा घटके नाश होनेमें घटाकाशकी पूर्णता होती है नैमित्तिक उपाधिके अभाव होजानेपर पुरुषोंका ब्रह्म होनाही स्वभाव है जैसे औपाधिक अरुणताके अभाव होनेमें अर्थात् दूर

होजाने पर स्फटिकका शुक्ल होनाही स्वभाव है बुद्धिवृत्ति प्रतिबिंब वशसे जो दुःख आदिकी मलिनता पुरुषमें होती है उपाधि मात्रसे होती है पुरुष नित्यमुक्त है औषाधिक दुःखकी निवृत्तिके अर्थ प्रकृतिकी सृष्टि है जैसा पूर्वही कहागया है कि, विमुक्तके मोक्षके अर्थ प्रकृतिकी सृष्टि है ॥ ११६ ॥

शंका-जो तीनों तुल्य हैं तो सुषुप्ति समाधिसे मोक्षमें कुछ विशेषता नहीं है उसको श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिये ? उत्तर-

द्वयोः सबीजमन्यत्र तद्धतिः ॥ ११७ ॥

दोनोमें बीज सहित है अन्यमें उसका अभाव है ॥११७॥

दोनों सुषुप्ति समाधिमें पुरुषबंध बीजसहित रहता है अन्यमें अर्थात् मोक्षमें उसका अर्थात् बंध बीजका अभाव होता है इससे यह कहा है कि दोनों सुषुप्ति व समाधिमें पुरुष बंध बीजसहित है व मोक्षमें बंध बीज रहित होता है यह मोक्षमें विशेषता व उत्कृष्टता है ॥ ११७ ॥

द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्नतु द्वौ॥११८॥

दोके सदृश तीसरेके भी दृष्ट होनेसे दो नहीं है ॥ ११८॥

दोके सदृश अर्थात् सुषुप्ति समाधिके सदृश मोक्षकेभी दृष्ट होनेसे अर्थात् ज्ञात वा अनुमित होनेसे दोही नहीं हैं अर्थात् सुषुप्ति व समाधि यही दो नहीं है तीसरा इनसे भिन्न मोक्षभी पदार्थ है यह सिद्ध होता है सुषुप्ति आदिमें जो ब्रह्मभाव है वह चित्तमें राग आदि दोष संस्कार संयुक्त होता है यह दोष जब ज्ञानसे नष्ट होता है तब सुषुप्ति आदिके सदृशही मोक्ष अवस्था स्थिर होती है ॥ ११८ ॥

शंका-समाधिमें वासना बीजसंस्कार होनेपरभी वैराग्य आदिसे वासना कुंठ होजानेसे अर्थके आकाररूप वृत्ति समाधिमें न होना माननेके योग्य है परन्तु सुषुप्तिमें वासना प्रबल होनेसे अर्थज्ञान होनेसे अर्थज्ञान होना चाहिये इससे सुषुप्तिमें ब्रह्म रूपता कहना युक्त नहीं है ? उत्तर-

वासनयानर्थख्यापनं दोषयोगेऽपि निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ॥ ११९ ॥

निद्रादोष योगमें भी वासना अर्थ स्मरण कराना नहीं होता न निमित्तका प्रधानका बाधक होना सिद्ध होता है ॥ ११९ ॥

यथा वैराग्यमें तथा निद्रादोषके योग होनेमें भी वासना करके अर्थात् वासनासे अपने अर्थका स्मरण कराना नहीं होता है क्योंकि निमित्तका अर्थात् संस्कारका बलवान् निद्रा दोषका बाधक होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् निमित्तरूप संस्कार प्रधानरूप बलवान् निद्राका बाधक नहीं होता बलवान् निद्रा दोषही वासनाको दुर्बल व उसको अपने कार्यमें कुण्ठकरदेता है ॥ ११९ ॥

शंका-संस्कार लेशसे जीवन्मुक्तका शरीर धारण होता है यह तृतीयाध्यायमें कहा है उसमें यह आक्षेप है कि, जीवन्मुक्तके पूर्वसंस्कारके नाश होजानेसे व ज्ञानके प्रतिबंध होनेके कारणसे कर्मके तुल्य फिर संस्कार उदय न होनेसे जीवन्मुक्तको भोग होना किस प्रकारसे संभव होता है ? उत्तर—

एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको नतु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा बहुना कल्पनाप्रसक्तेः ॥ १२० ॥

एक संस्कारक्रिया निर्वर्तकहै बहुत कल्पना प्रसंग होनेसे प्रतिक्रिया संस्कारभेद नहीं है ॥ १२० ॥

जिस संस्कारसे देव आदि शरीरका भोग आरब्ध होता है अर्थात् आरंभको प्राप्त होताहै वह एक संस्कार उस शरीरसे साध्य जो प्रारब्ध भोग है उसका समाप्त करनेवाला होता है और वह कर्मके सदृश

भोगकी समाप्तिमें नाश होता है प्रतिक्रिया प्रतिभोगव्यक्तिमें नाना संस्कार नहीं होते नहीं बहुव्यक्तिकल्पना करनेमें गौरव दोष होनेका प्रसंग होगा यथा कुलालचक्र भ्रमण स्थलमें वेग संज्ञक भ्रमण समाप्ति पर्य्यंत रहनेवाला एकही संस्कार होता है इसीप्रकारसे एक शरीरसाध्य प्रारब्धक भोगके समाप्त होने पर्यंत एकही संस्कार जिससे शरीरभोग आरब्ध होता बना रहता है ॥ १२० ॥

शंका–उद्भिज्ज शरीर जो कहा गया है उसमें बाह्य बुद्धि नहीं है इससे शरीर होना संभव नहीं होता है ? उत्तर–

न बाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्मलतौषधि-वनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृ-भोगायतनत्वं पूर्ववत् ॥ १२१ ॥

बाह्य बुद्धिका नियम नहीं है वृक्ष गुल्म लता औषधि वनस्पति तृण वीरुध आदिकोंका भी भोक्ता व भोगायतन होना पूर्वके तुल्य है ॥ १२१ ॥

जिसमें ब्रह्मज्ञान होवे वही शरीर हो यह नियम नहीं है वृक्ष आदि अंतःसंज्ञोंका भी भोक्ता व भोगायतन अर्थात् भोगस्थान शरीर होना पूर्वके तुल्य मानना चाहिये अर्थात् यथा पूर्वही कहा गयाहै कि, भोक्तृ अधिष्ठान हुए विना मनुष्य आदि शरीरका पूती भाव होताहै इसीप्रकारसे वृक्षआदि शरीरोंमें भी शुष्कता आदि होना माननेके योग्य है व श्रुति प्रमाणसे सिद्ध है श्रुति यह है "अस्य यदेकशाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति" इत्यादि । अर्थ–इसके जिस एक शाखाको जीव त्याग करता है वह सूख जाती है इत्यादि ॥ १२१ ॥

स्मृतेश्च ॥ १२२ ॥

स्मृतिसे भी ॥ १२२ ॥

स्मृतिसे भी वृक्ष आदिके शरीर होनेका प्रमाण है स्मृतिमें यह कहा

है "शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः । वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥" अर्थ-शरीरसे उत्पन्न कर्मदोषोंसे मनुष्य स्थावर (वृक्षआदि) होता है वाचिकदोषोंसे पक्षी मृग होता है मानसदोषोंसे अन्त्यज कीट पतंग आदि होताहै ॥ १२२ ॥

शंका-शरीरधारी चेतन होनेसे वृक्ष आदिमें भी धर्म अधर्म होना चाहिये ? उत्तर-

न देहमात्रतः कर्माधिकारत्ववैशिष्ट्य-श्रुतेः ॥ १२३ ॥

विशिष्ट होनेमें श्रुतिप्रमाण होनेसे देहमात्रसे कर्म अधिकार होना सिद्ध नहीं होता ॥ १२३ ॥

देहमात्रसे जीवका धर्म अधर्मके योग्य होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि विशिष्टहोनेमें धर्मअधर्मकर्मका अधिकारी होना श्रुतिमें कहाहै अर्थात् ब्राह्मण आदि मनुष्यशरीर ज्ञान विशिष्टके अर्थ कर्म करने व धर्म अध-र्मका उपदेश श्रुतिमें है अन्यमें नहीं है ॥ १२३ ॥

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभो-गदेहोभयदेहाः ॥ १२४ ॥

तीनकी तीन प्रकारकी कर्मदेह उपभोगदेह उभ-यदेह होनेकी व्यवस्था है ॥ १२४ ॥

तीनकी अर्थात् उत्तम मध्यम अधमकी तीन प्रकारकी कर्मदेह उप-भोगदेह उभयदेह होनेकी व्यवस्था है यथा-ऋषियोंका देह कर्मदेह है; व इन्द्र आदिकोंका उपभोगदेह है और राजऋषियोंका कर्म व भोग उभ-यदेह है अर्थात् कर्म व भोग दोनोंके अर्थ है प्रधानतासे तीन प्रकारका विभाग है अन्यथा सबहीका भोगदेह होना सिद्ध होताहै ॥ १२४ ॥

न किञ्चिदप्यनुशायिनः ॥ १२५ ॥

विरक्तका देह तीनमेंसे कोई नहीं है ॥ १२५ ॥

जो वैराग्यको प्राप्त पुरुष है उसका देह उक्त तीन प्रकारमेंसे कोई नहीं है अर्थात् तीनोंसे विलक्षण है ॥ १२५ ॥

न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् ॥ १२६ ॥

आश्रयविशेषमें भी अग्निके तुल्य बुद्धि आदिका नित्यत्व नहीं है ॥ १२६ ॥

बुद्धि निश्चय करनेवाली वृत्तिका नाम है बुद्धि इच्छा आदिका जो किसी आश्रयविशेष ईश्वर अथवा आदि पुरुष ब्रह्मा विष्णु आदिमें नित्य होना माना जावे तो आश्रयाविशेषमें भी नित्य होना संभव नहीं होता हमको अपनी बुद्धि व इच्छा आदिके अनित्य होनेके दृष्टान्तसे सबहीकी बुद्धि व इच्छा आदिके अनित्य होनेका अनुमान करना योग्य है यथा लौकिक अग्निके दृष्टान्तसे आवरण तेजके भी अनित्य होनेका अनुमान होता है ॥ १२६ ॥

आश्रयासिद्धेश्च ॥ १२७ ॥

आश्रय सिद्ध न होनेसे भी ॥ १२७ ॥

जो यह माना जाय कि, पुरुष नित्य है पुरुषमें आश्रित बुद्धि नित्य है तो पुरुषका धर्म बुद्धि नहीं है न पुरुष बुद्धिका आश्रय होना सिद्ध होता है बुद्धि प्रकृतिकार्यरूप अनित्य है पुरुषका आश्रय होना सिद्ध न होनेसे परिणामधर्मवाली प्रकृति कारणसे जन्य बुद्धि अनित्य है पुरुष अपरिणामी नित्यमें उपाधिमात्रसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गया है बुद्धिका सम्बन्ध होता है ॥ १२७ ॥

शंका–पूर्वही जो सिद्धपुरुषोंमें सृष्टिकर्ता होनेका सामर्थ्य व ऐश्वर्य होना वर्णन किया है सिद्धोंमें ऐश्वर्य सामर्थ्य होने आदिकी सिद्धियोंके होनेका प्रमाण किस प्रकारसे होताहै ? इसके समाधानमें सिद्धियोंके प्रमाण होनेका हेतु दृष्टांत वर्णन करते हैं–

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ॥ १२८ ॥

योगसिद्धियाँ भी औषध आदि सिद्धियोंकी समान असत् कहनेके योग्य नहीं हैं ॥ १२८ ॥

औषध आदि सिद्धियोंके सदृश योगसिद्धियाँ असत् कहनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् औषध आदि सिद्धियोंके सदृश सत्य हैं योगसे उत्पन्न अणिमादिक सिद्धियां सृष्टि उत्पन्न करने आदिकी उपयोगिनी होती हैं ॥ १२८ ॥

अब जो भूतोंका धर्म चैतन्य मानते हैं उनके मतका प्रतिषेध करते हैं—

न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च ॥ १२९ ॥

प्रत्येकमें दृष्ट न होनेसे संहत होनेकी अवस्थामें भी संहत होनेके अवस्थामें भी भूतोंमें चैतन्य (चेतनता) नहीं है ॥ १२९ ॥

पंचभूतोंमेंसे एक एक भिन्नमें किसीमें चैतन्य दृष्ट न होनेसे अर्थात् प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे उनकी संहत भावकी अवस्थामें अर्थात् मिलनेकी अवस्थामें भी चैतन्य होनेका अनुमान नहीं होता, क्योंकि जो कारणमें नहीं है वह कार्यमें नहीं होसकता और इसका विशेष व्याख्यान पूर्वेही किया गया है प्रत्येक भूतमें चैतन्य न होनेसे संहतभाव शरीरमें चैतन्यधर्म न होनेका अनुमान होता है इससे भूतोंमें चैतन्य नहीं है यह सिद्ध होता है ॥ १२९ ॥

इति श्रीसांख्यदर्शने प्रभुदयालुनिर्मित देशभाषाभाष्ये परपक्षनिर्णये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

पंचम अध्यायमें परपक्षका निराकरण (खण्डन) करके अपने मतको सिद्ध करके उसी सारभूत शास्त्रार्थको इस छठवें अध्यायमें दृढतर बोध उत्पन्न होनेके लिये वर्णन करते हैं--

अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात् ॥ १॥

नास्तित्वसाधनके अभाव होनेसे आत्मा है ॥ १ ॥

'मैं जानता हूँ' यह प्रतीति होनेसे सामान्यसे पुरुष सिद्ध है नास्तित्वके साधनके अभावसे अर्थात् आत्माके न होनेका साधनके अभावसे अर्थात् आत्माके होनेका बाधक होनेके प्रमाणके अभावसे आत्मा है यह सिद्ध है विवेकमात्र करना उचित है ॥ १ ॥

देहादिव्यतिरिक्तोसौ वैचित्र्यात् ॥ २ ॥

विचित्र होनेसे यह देह आदिसे भिन्न है ॥ २ ॥

यह आत्मा चेतन देह आदि प्रकृतिपर्यन्तसे भिन्न है किस हेतुसे भिन्न होना सिद्ध होता है ? परिणामी होने व परिणामी न होने यह विचित्र धर्म होनेसे अर्थात् प्रकृति व प्रकृतिके कार्य जिनका प्रत्यक्ष अनुमान शब्दसे परिणामी होना सिद्ध होता है उनसे विचित्र अर्थात् उनके विरुद्ध पुरुष अपरिणामी सिद्ध होनेसे पुरुष देहआदि प्रकृतिकार्यसे भिन्न है पुरुषका अपरिणामी होना सदा ज्ञात विषय होनेसे अनुमान किया जाता है जैसे चक्षुका रूपही विषय है समसन्निकर्ष होनेमें भी रसआदि विषय नहीं हैं इसीप्रकारसे अपनी बुद्धिवृत्तिही पुरुषका विषय है समसन्निकर्ष होनेपर भी अन्यवस्तु विषय नहीं है बुद्धिवृत्तिकी आरूढताहीसे अन्य पदार्थ पुरुषको भोग्य होते हैं यह बुद्धिवृत्तियां अज्ञाता नहीं रहतीं जो ज्ञान इच्छा सुख आदिभी अज्ञात सत्तासे अंगीकार किये जावें तो उनमें भी यथा घट आदि अन्य पदार्थोंमें संशय होता है ऐसा संशय होना चाहिये कि, 'मैं हूं वा नहीं हूं मैं जानताहूं वा नहीं जानता हूँ सुखी हूँ वा नहीं हूँ' परन्तु ऐसा नहीं होता इससे उनके

सदा ज्ञात होनेसे उनका द्रष्टा चेतन अपरिणामी है यह सिद्ध होता है क्योंकि परिणामी होनेमें कभी परिणाम होनेमें बुद्धिवृत्ति होनेमें भी बुद्धिवृत्तिके अज्ञानसे संशय प्राप्त होना संभव है ॥ २ ॥

षष्ठी व्यपदेशादपि ॥ ३ ॥

षष्ठी व्यपदेशसे भी ॥ ३ ॥

षष्ठी विभक्तिके व्यपदेश (कथन) से भी आत्मा शरीरसे भिन्न है यह सिद्ध होता है यथा यह कहनेमें यह 'मेरा शरीर है मेरी बुद्धि है' इत्यादिमें भेद होना प्रतीत होता है अत्यन्त अभेद होनेमें संबंध संबंधीके अभावसे षष्ठीकी प्राप्ति नहीं होसक्ती ॥ ३ ॥

न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात् ॥ ४ ॥

धर्मि ग्राहक प्रमाणसे प्रतिषेध होनेसे शिलाके पुत्रके सदृश नहीं है ॥ ४ ॥

जो यह तर्क किया जावे कि, सम्बंध अर्थमें षष्ठीका व्यपदेश इस प्रकारसे है जैसा शिलाके पुत्रका शरीर कहना, इस तर्कके प्रतिषेध व समाधानके अर्थ सूत्रमें यह कहा है कि, पुरुषमें षष्ठीका व्यपदेश शिलापुत्रके षष्ठी व्यपदेशके सदृश नहीं है क्योंकि शिला पुत्र आदि स्थलमें धर्मिग्राहक प्रमाणसे बाधा वा प्रतिषेध होनेसे एक विकल्प मात्रहै मेरा शरीर आदि कहनेमें प्रमाणसे बाधा नहीं है अर्थात् प्रमाणके विरुद्ध नहीं है केवल देहके आत्मा होनेके प्रमाणका प्रतिषेध है पुरुषके होनेका बोध कि 'मैं हूं' यह स्वाभाविक अनुभवसे सिद्ध है व अन्य पदार्थके साथ सम्बंध बोधगत होनेसे 'मेरा शरीर' आदि कहना युक्त है कल्पना मात्र नहीं है ॥ ४ ॥

देहसे व्यातिरिक्त (भिन्न) आत्माको वर्णन करके मुक्तिका वर्णन करतेहैं—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ॥ ५ ॥

अत्यंत दुःखकी निवृत्ति होनेसे कृतार्थता होती है ॥ ५ ॥

अत्यन्त दुःख निवृत्त होनेसे मुक्ति होती है यह भाव है ॥ ५ ॥

यथा दुःखात्क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखा-दभिलाषः ॥ ६ ॥

यथा दुःखसे पुरुषका द्वेष होता है तथा सुखसे अभिलाष नहीं होता ॥ ६ ॥

यदि यह शंका हो कि, मोक्षमें भोग्य सुख दुःख दोनोंकी निवृत्ति होती है सुखनिवृत्ति मोक्ष है यह क्यों नहीं कहा दुःखहीके निवृत्तिको मोक्ष क्यों कहा है ? इस शंका निवारणके अर्थ यह कहा है कि यद्यपि दुःखकी निवृत्ति सुखकी प्राप्ति यह विशेष मनोरथ सब प्राणियोंका है परन्तु दुःख प्राप्त होनेमें जैसा द्वेष पुरुषका होता है सुख प्राप्तिमें ऐसा अभिलाष नहीं होता, द्वेष प्रबल व अभिलाष उसके अपेक्षा दुर्बल होता है इससे प्रबल होनेसे दुःखकी निवृत्तिको मुख्य मानकर दुःखकी निवृत्तिको मोक्ष वर्णन किया है व सुखकी अपेक्षा दुःखकी बाहुल्यता है इससे भी दुःखहीके निवृत्त होनेको कहा है दुःखकी अधिकता आगेके सूत्रमें सूचित किया है ॥ ६ ॥

कुत्रापि कोऽपि सुखीति ॥ ७ ॥

कहीं कोई सुखी है ॥ ७ ॥

इस अनन्त सृष्टि तृण वृक्ष पशु पक्षी आदिमें कुछ मनुष्य देवता आदिही सुखी होते हैं इससे कहीं कोई सुखी होना कहा है ॥ ७ ॥

तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः ॥ ८ ॥

वह भी दुःख मिश्रित है यह समुझकर विवेककरने-वाले दुःख ही पक्ष (कोटि) में संयुक्त करते हैं ॥८॥

कहीं कोई सुखी है यह जो पूर्वसूत्रमें कहा है उस सुखकोभी विवेक करनेवाले दुःखही पक्षमें मिलाते हैं अर्थात् इस संसारमें सुख बहुत कम है और जो सुख कहीं है भी वह मिठाई व विष मिले हुए अन्नके सदृश दुःख मिलाहुवा है दुःखरहित नहीं है इससे जो सुख भी है उसको भी विवेक करनेवाले दुःख समझकर दुःखही पक्षमें डालते वा संयुक्त करते हैं ॥ ८ ॥

सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमिति चेन्न द्वैविध्यात् ॥ ९ ॥

सुख लाभके अभावसे पुरुषार्थत्व नहीं है यह मानाजाय नहीं दोविध होनेसे ॥ ९ ॥

जो यह समुझाजावे कि, सुखलाभ न होना यही पुरुषार्थत्वका न होना है तो इसका उत्तर यह है कि, नहीं अर्थात् सुखलाभका न होना पुरुषार्थका न होना नहीं है ? किस हेतुसे नहीं है दो प्रकार होनेसे सुख होने व दुःखके न होनेकी प्रार्थना होनेसे दो प्रकारका पुरुषार्थ है क्योंकि, मैं सुखी होऊं दुःखी न होऊं यह दो भिन्न भिन्न प्रार्थना लोकमें होना विदित होती हैं ॥ ९ ॥

निर्गुणत्वमात्मनोऽसंगत्वादिश्रुतेः ॥ १० ॥

असंगत्व आदि प्रतिपादक श्रुति होनेसे आत्माका निर्गुण होना सिद्ध है ॥ १० ॥

आत्मा निर्गुण है अर्थात् सुख दुःख मोह आदि सम्पूर्ण गुणोंसे नित्य शून्य है, किस प्रमाणसे ? श्रुतिप्रमाण होनेसे अर्थात् विकारके हेतु संयोगका अभाव श्रुतिसे सिद्ध होनेसे पुरुषका निर्गुण होना सिद्ध होता है क्योंकि विना संयोग गुणनामक विकारका होना संभव नहीं होता इससे दुःखनिवृत्त होना भी पुरुषार्थ होना घटित नहीं होता असंग होनेके प्रमाणमें श्रुति यह है " स यदत्र किंचित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भव-

त्यसंगो ह्ययं पुरुषः" अर्थ—यह अर्थात् पुरुष जो जो पदार्थ इस संसारमें जानता वा देखता है उनके साथ उसका मेल नहीं है इससे यह पुरुष असंग है ॥ १० ॥

परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात् ॥ ११ ॥

परधर्म होनेमें भी अविवेकसे उसकी सिद्धि है ॥ ११ ॥

सुख दुःख आदि आत्माके गुण नहीं हैं परके अर्थात् चित्तके धर्म हैं तथापि आत्मामें सिद्ध होते हैं अर्थात् अविवेक निमित्तसे प्रतिबिम्बरूप ये दुःख आदिकोंकी आत्मामें अवस्थिति है इसका विशेष वर्णन पूर्वही किया गया है ॥ ११ ॥

अनादिरविवेकोऽन्यथा दोषद्वयप्रसक्तेः ॥

अविवेक अनादि है अन्यथा दो दोष होनेके प्रसङ्ग होनेसे ॥ १२ ॥

अविवेक प्रवाहरूपसे चित्तका अनादिधर्म है वासनारूपसे प्रलयमें स्थित रहता है जो अनादि न माना जावे तो दोष होनेका प्रसंग है अनायास अपनेसे उत्पन्न होनेमें मुक्तका भी बंध होजायगा और कर्म आदिसे उत्पन्न होनेमें कर्म आदिकमें भी कारण होनेमें अविवेकान्तर (अन्य अविवेक) अन्वेषण (खोज) करनेसे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी यह अविवेकवृत्तिरूप प्रतिबिम्ब स्वरूपसे पुरुषधर्मके सदृश होता है इससे पुरुषके बंधका प्रयोजक (प्रेरक) होता है अर्थात् पुरुषके बंधका हेतु होता है यह भाव है ॥ १२ ॥

शंका—अनादि है तो नित्य होगा ? उत्तर—

न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः ॥ १३

आत्माके समान नित्य न होगा अन्यथा उसका नाश न होगा ॥ १३ ॥

अविवेक आत्माके तुल्य अखण्ड एक नित्य अनादि नहीं है किन्तु प्रवाहरूपसे (सम्बंध न टूटनेसे) अनादि है अन्यथा अनादिका नाश होना संभव न होगा ॥ १३ ॥

बंधकारणको कहकर अब मोक्षकारणको वर्णन करते हैं—

प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत् ॥ १४ ॥

अंधकारके सदृश प्रतिनियतकारणसे इसका नाश्यत्व है ॥ १४ ॥

इसका अर्थात् बंधके कारण अविवेकका प्रतिनियत कारणसे नाश्यत्व (नाश होनेके योग्य होना) है अर्थात् प्रतिनियतकारण जो अविवेकसे नाशका विशेष नियत कारण विवेक है उससे अविवेकका नाश होता है यथा अंधकार प्रतिनियतकारण प्रकाशहीसे नाशको प्राप्त होता है अन्य साधनसे नष्ट नहीं होता. इसीप्रकारसे अविवेक प्रतिनियतकारण विवेकहीसे नाश कियाजाता है अन्य उपायसे अविवेकका नाश नहीं होता ॥ १४ ॥

अत्रापि प्रतिनियमोऽन्वयव्यतिरेकात् ॥ १५॥

इसमें भी अन्वयव्यतिरेकसे प्रतिनियम है ॥ १५ ॥

इसमेंभी अर्थात् विवेकमें भी अन्वय व्यतिरेकसे कारणका प्रतिनियम होना सिद्ध है । अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन (वारम्वार ध्यान व चिन्तन करना) का अन्वय (विशेष योग) है और कर्मका व्यतिरेक (भेद) है अभिप्राय यह है कि, विवेकमें श्रवण मनन निदिध्यासनरूपही कारण है कर्म आदिकारण नहीं है कर्मादिक बहिरंग हैं श्रवण मनन आदिके सदृश अंतरंगरूप कारण नहीं हैं ॥ १५ ॥

प्रकारान्तरासंभवादविवेक एव बंधः ॥ १६ ॥

अन्यप्रकार संभव न होनेसे अविवेकही बंध है ॥ १६ ॥

अविवेकसे भिन्न अन्य प्रकारसे पुरुषमें बंध होना संभव न होनेसे अर्थात् स्वाभाविक पुरुषमें बंध होना जैसा कि, प्रथम अध्यायमें प्रतिषेध किया गया है सिद्ध न होनेसे तथा अन्यको बंधका हेतु सिद्ध न होनेसे केवल अविवेकही बंधका हेतु है इससे अविवेकही बंधरूप है यह भाव है ॥ १६ ॥

न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्ति-श्रुतेः ॥ १७ ॥

मुक्तका फिर बंधयोगभी नहीं होता अनावृत्ति प्रतिपादक श्रुति होनेसे ॥ १७ ॥

अनावृत्ति होनेके प्रमाणमें यह श्रुति है "भावकार्यस्यैव विनाशितया मोक्षस्य नाशो नास्ति न स पुनरावर्तते" अर्थ—भावकार्यहीके विनाशित (नाशको प्राप्त) होनेसे मोक्षका नाश नहीं है अर्थात् बंधभाव (होने) का हेतुसे अविवेककार्यका विवेकसे नाश होनेसे मोक्षका नाश नहीं है न वह (मुक्त) फिर बंधमें प्राप्त होता है व संसारमें आता है इस प्रकारसे अनावृत्ति (फिर न होना अर्थात् फिर बंध न होना) होना श्रुति प्रमाणसे सिद्ध होनेसे मुक्तका फिर बंधयोग भी नहीं है. भी शब्द यह सूचित करनेके लिये है कि मुक्तोंका फिर बंध नहीं होता ऐसा न समुझना चाहिये जो परम मोक्षको नहीं प्राप्तहुये ऐसे मुक्तोंका फिर बंध होता है अनेक मुक्तोंमें कोई परम मोक्षको प्राप्त मुक्तका फिर बंध योगभी श्रुतिप्रमाण अनुसार नहीं होता और जिनका फिर बंध नहीं होता वही यथार्थ मुक्त व पुरुषार्थको प्राप्त हैं ॥ १७ ॥

अपुरुषार्थत्वमन्यथा ॥ १८ ॥

अन्यथा पुरुषार्थ होना सिद्ध न होगा ॥ १८ ॥

अन्यथा अर्थात् जो कोई ऐसा मुक्त होना कि, जिसको फिर बंध न होना मानाजावे तो परमपुरुषार्थ (सर्वथा दुःख निवृत्तिरूप मोक्ष) का होना सिद्ध न होगा ॥ १८ ॥

अविशेषापत्तिरुभयोः ॥ १९ ॥

दोनोंके विशेष न होनेकी प्राप्ति होगी ॥ १९ ॥

जो मुक्तकी भी फिर बंध होजाना है तो बद्ध व मुक्तमें दोनोंके सम होजानेसे कुछ विशेषता न रहेगी ॥ १९ ॥

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः ॥ २० ॥

अन्तरायके नाश होनेसे पर पदार्थ मुक्ति नहीं है २० ॥

अन्तराय (विघ्न) जो अविवेक हेतुसे बुद्धि उपाधिद्वारा उत्पन्न दुःख है उसके नाशसे पर श्रेष्ठ अथवा भिन्न कोई पदार्थ मुक्ति नहीं है अर्थात् अन्तरायका नाश होनाही मुक्ति है ॥ २० ॥

तत्राप्यविरोधः ॥ २१ ॥

इसीमें अविरोध ॥ २१ ॥

इसीमें अर्थात् विघ्न नाशहोनेहीके मोक्ष होनेमें पुरुषार्थ होनेका विरोध नहीं है अर्थात् पुरुषार्थहोना सिद्ध होता है दुःखका योग व वियोगही पुरुषमें कल्पित है दुःख भोग कल्पित नहीं है दुःखसम्बन्ध होना अर्थात् स्फटिकमें जपाकुसुमके प्रतिबिम्बके सदृश प्रतिबिम्बरूपसे दुःखसम्बन्धहोना भोग है इसीका निवृत्तहोना मोक्ष व विघ्नका नाश होना है ॥ २१ ॥

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ॥ २२ ॥

अधिकारी तीन प्रकारके होनेसे नियम नहीं है ॥२२॥

उत्तम, मध्यम, अधम तीन प्रकारके ज्ञानके अधिकारी हैं, त्रिविध

अधिकारी होनेसे श्रवणमात्रके पश्चात् सबहीके मानस साक्षात्कार होनेका नियम नहीं है मन्द अधिकार होनेहीके दोषसे श्रवणमात्रसे विरोचन आदिको मानसज्ञान उत्पन्न नहीं हुवा इससे श्रवणमात्रका ज्ञान उत्पन्न करनेमें सामर्थ्य नहीं है ॥ २२ ॥

दार्ढ्यार्थमुत्तरेषाम् ॥ २३ ॥

दृढ होनेके अर्थ उत्तरवालोंका ॥ २३ ॥

विघ्नका नाश दृढ होनेके अर्थ अर्थात् आत्यन्तिक नाश होनेके अर्थ श्रवणसे उत्तर (पश्चात्) जो मनन निदिध्यासन है उनका नियम है नियम शब्दका पूर्वसूत्र सम्बन्धसे व भावसे ग्रहण होता है ॥ २३ ॥

अब उत्तरवाले मननिदिध्यासन आदिके साधनको वर्णन करते हैं-

स्थिरं सुखमासनमिति न नियमः ॥२४॥

सुखपूर्वक स्थिर होना आसन है नियम नहीं है ॥ २४॥

आसनमें पद्मासन आदिका नियम नहीं है जिसमें सुखसे स्थिर हो वही आसन है ॥ २४ ॥

ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ २५ ॥

विषय रहित मन (अंतःकरण) ध्यान है ॥ २५ ॥

वृत्तियोंसे अंतःकरणका शून्य होनाही ध्यान है जैसा कि, योगदर्शनमें कहा है कि चित्तकी वृत्तियोंका निरोध योग है, यहां ध्यान शब्दसे योग कहनेका अभिप्राय है अर्थात् ध्येय पदार्थमात्रमें चित्तका लगना और सम्पूर्ण विषयरूप वृत्तियोंसे अन्तःकरणका रहित होना ध्यान है ॥ २५ ॥

शंका-जब पुरुष योग अयोगमें एकही रूप रहता है नित्यमुक्त है फिर योगसाधनसे क्या प्रयोजन है ? उत्तर-

उभयथाप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः ॥ २६ ॥

दोनोंप्रकारमें विशेष नहीं है यह माना जावे तो ऐसा नहीं है उपराग निरोध होनेसे विशेष है ॥ २६ ॥

दोनों प्रकारमें अर्थात् योगअवस्था व अयोग अवस्थामें विशेष नहीं है जो यह संशय होवे तो उत्तर यह है कि, नहीं योगअवस्थामें अयोग अवस्थासे उपराग निरोध होनेसे अर्थात् प्रतिबिम्ब बंधकी निवृत्ति-होनेसे विशेष है ॥ २६ ॥

शंका—निःसंगपुरुषमें उपराग किस प्रकारसे होता है ? उत्तर—

निःसङ्गेऽप्युपरागोऽविवेकात् ॥ २७ ॥

संगरहितमें भी अविवेकसे उपराग होता है ॥ २७ ॥

संग रहित पुरुषमें यद्यपि पारमार्थिक उपराग विषयप्रीति नहीं है तथापि अविवेकसे औपाधिक प्रतिबिम्बही उपराग होता है ॥ २७ ॥

अब इसीका विवरण करते हैं—

जपास्फटिकयोरिव नोपरागः किंत्वभिमानः ॥ २८ ॥

गोडहरके फूल व स्फटिकके समान नहीं है किन्तु अभिमान है ॥ २८ ॥

यथा स्फटिकमें जपाकुसुम (गोडहरके फूल)के योगमें उपराग नहीं होता अर्थात् लालरूप नहीं होता किन्तु प्रतिबिम्बवशसे अभिमानमात्र भ्रमसे होता है कि, स्फटिक रक्त (लाल) है इसी प्रकारसे बुद्धि व पुरुषमें उपराग नहीं है बुद्धि प्रतिबिम्बवशसे अविवेकसे पुरुषमें उपरागका अभिमान होता है इससे उपरागके तुल्य वृत्तिप्रतिबिम्बही पुरुषका उपराग है यह दुःखात्मक वृत्तिरूप उपरागही विघ्न है इस विघ्नका नाश होना मोक्षका प्राप्त होना है इसका नाश चित्तवृत्तियोंका निरोध

रूप जो असम्प्रज्ञात योग है उसमें होता है योगहीसे विघ्न (बंध दुःख) का नाश होता है यही योगशास्त्रका सिद्धांत है ॥ २८ ॥

राग निरोध होने व योगसाधनका उपाय वर्णन करते हैं—

ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः॥

ध्यान धारणा अभ्यास वैराग्य आदिकोंसे उसका निरोध होता है ॥ २९ ॥

उसका अर्थात् उपरागका ध्यान धारणा अभ्यास वैराग्य आदिसे निरोध होता है समाधिद्वारा ध्यान करना योगका कारण है ध्यानका कारण धारणा है धारणाका कारण अभ्यास है अभ्यास चित्तकी स्थिरता सिद्ध करनेका अनुष्ठान है विषयसे वैराग्य होना अभ्यासका कारण है वैराग्यके कारण दोष विचारना यम नियम आदि करना है इन योगके अंगोंको साधनसे उपरागका निरोध (रोंक) होता है ॥ २९ ॥

लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्याः ॥ ३० ॥

लय (निद्रा) व विक्षेप (प्रमाण आदि वृत्ति) वृत्तियोंकी निवृत्तिसे कोई आचार्य कहते हैं ॥ ३० ॥

ध्यान आदिसे चित्तकी निद्रावृत्ति व प्रमाण आदि वृत्तिकी निवृत्ति होनेसे पुरुषके भी वृत्ति उपरागका निरोध होता है यह कोई आचार्य कहते हैं ॥ ३० ॥

न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात ॥ ३१ ॥

चित्तके प्रसाद (प्रसन्नहोने) से ध्यान आदि होनेसे स्थानका नियम नहीं है ॥ ३१ ॥

चित्तके प्रसादहीसे ध्यान आदिक होते हैं पर्वतके गुहा आदिस्थान होनेका नियम नहीं है कोई स्थान हो जहां चित्त शुद्ध व प्रसन्न हो ध्यान आदि करना चाहिये ॥ ३१ ॥

प्रकृतेराद्योपादानतान्येषां कार्यत्वश्रुतेः ३२

औरोंका कार्य होना सुननेसे प्रकृतिकी आद्य उपादानतासिद्धि होती है ॥ ३२ ॥

महत्तत्त्व आदिकोंका कार्य होना सुननेसे इन सबका मूल प्रकृतिका आद्य उपादान कारण होना सिद्ध होता है ॥ ३२ ॥

प्रश्न–जो पुरुषही उपादान माना जावे तो क्या दोष है ? उत्तर–

नित्यत्वेऽपि नात्मनो योगत्वाभावात् ॥ ३३ ॥

नित्य होनेमें भी योग होनेके अभावसे आत्माकी उपादानता नहीं है ॥ ३३ ॥

गुणवान् होना व संगी होना उपादानके योग्य होना है अर्थात् जिसमें गुण होता है व संग होना धर्म होता है वही उपादान कारण होसकता है आत्मामें गुण व संगका अभाव है दोनोंके अभाव होनेसे आत्माका उपादानकारण होनेका योग होना संभव नहीं है इससे नित्य होनेपर भी आत्माका उपादान होना सिद्ध नहीं होता ॥ ३३ ॥

श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभः ॥ ३४ ॥

श्रुतिविरोधसे कुतर्क करनेवालेको आत्मलाभ नहीं है ॥ ३४ ॥

जो पुरुषके उपादान कारण होनेमें पक्ष हैं वे सब कुतर्क व श्रुति विरुद्ध हैं कुतर्क करनेवाले अधमको आत्मलाभ अर्थात् आत्मज्ञानका लाभ नहीं होता जो आत्माके कारण होनेकी प्रतिपादक श्रुति हैं वे शक्ति व शक्तिमान्के अभेद भावसे उपासना करनेके उपदेशमें हैं ॥ ३४ ॥

शंका–स्थावरआदिमें पृथिवी आदिहीका कारण होना विदित होता है प्रकृतिका सबका उपादान क्यों मानते हो ? उत्तर–

पारम्पर्येऽपि प्रधानानुवृत्तिरणुवत् ॥ ३५ ॥

परम्पराक्रम होनेके द्वारा कारण होनेमें भी प्रधानकी अनुवृत्ति अणुके समान है ॥ ३५ ॥

स्थावर आदिकोंमें परम्परा करके कारण होनेमें भी उनसे प्रधानका अनुमान होनेसे प्रधानका उपादान होना अंगीकार किया जाता है यथा-अंकुर आदिही द्वारा स्थावर आदिमें पृथिवी आदिके अणुओंके अणुगम (अंकुरके सदृश हो प्राप्त) होनेसे अणुओंका उपादान होना मानाजाता है इसी प्रकारसे पृथिवी आदि स्वरूपसे प्रकृतिका उपादान होना अंगीकार करना चाहिये इससे पृथिवी आदिमें प्रधानके उपादान होनेकी अनुवृत्ति है ॥ ३५ ॥

सर्वत्र कार्यदर्शनाद्विभुत्वम् ॥ ३६ ॥

सर्वत्र कार्य देखनेसे प्रधानको विभुत्व है ॥ ३६ ॥

व्यवस्थारहित सर्वत्र विकाररूप कार्य देखनेसे प्रधानका विभु होना अर्थात् व्यापक होना विदित होता है यथा-अणुओंका घट आदिमें व्यापित्व है इसीप्रकारसे प्रधानका सब कार्यपदार्थोंमें व्यापित्व है इसका व्याख्यान पूर्वही होगया है ॥ ३६ ॥

जो परिच्छिन्न होनेमें भी जहाँ कार्य उत्पन्न होता है वहाँ प्रकृति जाकर प्राप्त होती है ऐसा माना जाय तो ? इसका उत्तर यह है-

गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानिरणुवत् ॥ ३७ ॥

गतियोग होनेमें भी अणुके तुल्य आद्यकारण होनेकी हानि है ॥ ३७ ॥

प्रधान (प्रकृति) में गति (क्रिया) योग होनेमें भी अर्थात् क्रिया योग भी माननेमें यथा क्रियावान् अणुओंके मूलकारण होनेका अभाव है इसी प्रकारसे प्रधानके मूलकारण होनेका अभाव होगा इससे प्रधानका व्यापकही मानना युक्त है अथवा सूत्रका यह अर्थ है कि, गति योग

होनेमें भी अणुके तुल्य आद्य (जो आदिमें हो) कारण होनेकी हानि नहीं है व भाव इसका यह है कि, परस्पर संयोग होनेके अर्थ त्रिगुणात्मक प्रधानकी क्षोभ (सञ्चलन) रूप क्रिया श्रुति स्मृतिमें सुनी जाती है इसपर जो यह शंका हो कि, यथा क्रियावान् तन्तु आदि मूलकारण नहीं होते तथा प्रधान मूलकारण नहीं है ? तो उत्तर यह है कि, यथा वैशेषिक मतमें क्रियावान् पार्थिव आदि अणुओं (परमाणुओं) को मूलकारण मानते हैं क्रियावान् होनेसे मूलकारणताकी हानि नहीं मानी जाती इसी प्रकारसे क्रियायोग होनेमें प्रधानके मूलकारण होनेकी हानि नहीं है ॥ ३७ ॥

प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः ॥ ३८ ॥

प्रसिद्धसे प्रधानकी अधिकता है इससे नियम नहीं है ३८ ॥

नव द्रव्य प्रसिद्ध हैं प्रधान द्रव्य नव द्रव्यसे अधिक है इससे नवही द्रव्य हैं यह नियम नहीं है ॥ ३८ ॥

अब यह संशय है कि, सत्त्व आदि त्रिगुणरूपही प्रकृति है अथवा द्रव्यरूप तीनों गुणोंकी आधारभूत है ? इस संशयके निवारणके लिये यह उत्तर है–

सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात् ॥ ३९ ॥

सत्त्व आदिकोंका उसके रूप होनेसे उसका धर्मत्व नहीं है

सत्त्वगुणोंका उसके अर्थात् प्रकृति रूप होनेसे उसका धर्मत्व अर्थात् प्रकृतिका धर्म होना नहीं है भावार्थ यह है कि, सत्त्व आदि गुण प्रकृतिके रूपही हैं प्रकृतिके धर्म नहीं हैं प्रकृतिके रूपही होनेसे सम्बन्ध संबंधी भाव न होनेसे धर्म धर्मी होनेका निश्चय नहीं होता । अब यह संशय है कि, सत्त्वआदि गुणोंका प्रकृतिके कार्य होना संभव नहीं होता क्योंकि एक प्रकृतिका विना अन्यद्रव्यके संयोग विचित्र तीन गुणोंका उत्पन्न करना संभव नहीं है विना अन्यद्रव्यके संयोग विचित्र कार्यकी उत्पत्ति प्रत्यक्षको विरुद्ध कल्पना करना उचित नहीं है इसका उत्तर यह है कि॰

सत्त्वआदि कोई प्रकृतिसे भिन्न पदार्थ नहीं हैं जिनकी विचित्र उत्पत्ति मानीजाय अंशभावसे कार्य होना कहा जाता है यह पृथिवीसे पृथिवीके अंशरूप द्वीपोंकी उत्पत्ति है इसीप्रकारसे प्रकृतिसे गुणोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

विना प्रयोजन प्रवृत्ति नहीं होती प्रधान किस प्रयोजनसे सृष्टिको उत्पन्न किया? यह वर्णन करते हैं—

अनुपभोगेऽपि पुमर्थं सृष्टिः प्रधानस्योष्ट्रकुंकुमवहनवत् ॥ ४० ॥

उपभोग न होनेमें भी ऊंटके केसर ले चलनेके समान पुरुषके अर्थ प्रधानकी सृष्टि है ॥ ४० ॥

परके अर्थ प्रधानकी सृष्टि होनेका तृतीयाध्यायके ५८ सूत्रमें इसी ऊँटके केसर ले चलनेके दृष्टांतसे व्याख्यान किया गया है ॥ ४० ॥

सृष्टिके विचित्र होनेका कारण कहते हैं—

कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ॥ ४१ ॥

कर्मकी विचित्रतासे सृष्टिकी विचित्रता है ॥ ४१ ॥

अनेक प्रकारके विचित्र शरीर आदि होनेसे विचित्रसृष्टि कर्मोंकी विचित्रतासे होती है अर्थात् अनेक प्रकारके कर्मोंके अनुसार अनेक प्रकारकी सृष्टि होती है ॥ ४१ ॥

साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम् ॥ ४२ ॥

समभाव व विषमभावसे दो कार्य होते हैं ॥ ४२ ॥

इस शंका निवारणके लिये कि, एक कारणसे दो विरुद्ध कार्य सृष्टि व प्रलय कैसे होते हैं यह कहा है कि, समभाव व विषमभाव दो भिन्न हेतु होनेसे दो कार्य होते हैं सत्त्वआदि तीन गुणरूप प्रधान हैं इन तीन गुणोंका न्यून अधिक होना विषमभाव है व तीनोंका सम होना सम भाव है इन दो हेतुओंसे सृष्टि प्रलय दो कार्य होते हैं स्थिति सृष्टिरूप

सृष्टि अंतर्गत है इससे प्रकृतिको उसका कारण होना पृथक् नहीं कहा ॥ ४२ ॥

शंका–प्रकृतिके सृष्टि स्वभाव होनेसे ज्ञानके पश्चात् भी संसार होना चाहिये ? उत्तर–

विमुक्तबोधान्न सृष्टिः प्रधानस्य लोकवत् ॥ ४३ ॥

विमुक्तबोध होनेसे लोकके तुल्य प्रधानकी सृष्टि नहीं होती ॥ ४३ ॥

विमुक्तबोध होनेसे अर्थात् पुरुष साक्षात्कार होनेसे उस पुरुषके अर्थ कृतार्थ होनेसे फिर प्रधानकी सृष्टि नहीं होती जैसे लोकमें मंत्री आदि राजाका काम करके कृतार्थ हो फिर राजाके लिये प्रवृत्त नहीं होते इसी प्रकारसे प्रकृति फिर प्रवृत्त नहीं होती ॥ ४३ ॥

शंका–प्रधानकी सृष्टिसे शांतता नहीं है क्योंकि अज्ञानियोंका बंध रहनेसे संसार बना रहता है ऐसा होनेमें प्रकृतिकी सृष्टिसे मुक्तका भी फिर बंध होजाना चाहिये अथवा होजाना संभव है ?

नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात् ॥ ४४ ॥

अन्य प्रति उपसर्पण होनेमें भी निमित्तके अभावसे मुक्तका उपभोग नहीं होता ॥ ४४ ॥

कार्यकारणसंयोगरूप सृष्टिकरके अन्यप्रति अर्थात् अज्ञानी प्रति प्रधानका उपसर्पण (गमन) होनेमें भी अर्थात् प्रधानके प्राप्त होनेमें भी मुक्तका उपभोग नहीं होता। क्यों नहीं होता? निमित्तके अभावसे अर्थात् उपभोगमें प्रधानकी उपाधिसे उत्पन्न संयोगविशेष व उसके कारण अविवेक आदि जो निमित्त होते हैं उनके अभावसे, यही मुक्तप्रतिप्रधान सृष्टिकी निवृत्ति अर्थात् पुरुषके भोगका हेतु प्रधानका अपनी उपाधिसे परिणाम विशेषरूप जो जन्म है उसका उत्पन्न न करना है ॥ ४४ ॥

यह मुक्त व बद्धकी व्यवस्था तब घटित होसकती है जब पुरुष बहुत हों और पुरुषोंका बहुत होना अद्वैत श्रुतियोंसे प्रतिषेधित (खण्डित) है इससे संशय होता है इस संशयके निवारणके अर्थ यह सूत्र है-

पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः ॥ ४५ ॥

व्यवस्था (अवस्था भेद) से पुरुषका बहुत होना विदित होता है ॥ ४५ ॥

बंध मोक्ष व्यवस्था होनेसे पुरुषोंका बहुत होना अनुमानसे सिद्ध होता है व श्रुतिसे भी सिद्ध है श्रुतिमें कहा है "यएतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति" इत्यादि । अर्थ-जो आत्माको जानतेहैं वे मोक्षको प्राप्त होते हैं इतर दुःखहीको प्राप्त होते हैं इत्यादि ॥ ४५ ॥

उपाधिश्चेत्तत्सिद्धौ पुनर्द्वैतम् ॥ ४६ ॥

उपाधि हो उसकी सिद्धि होनेमें फिर द्वैत है ॥ ४६ ॥

जो उपाधि मानीजाय कि, उपाधिसे अनेक प्रकारकी व्यवस्था होती है तो उसकी (उपाधिकी) सिद्धि होनेमें भी द्वैत सिद्ध होगा अद्वैतका निषेध होगा ॥ ४६ ॥

पूर्वपक्ष-उपाधि भी अविद्यारूप है इससे अद्वैतका भङ्ग नहीं होता? उत्तर-

द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः ॥ ४७ ॥

दोसेभी प्रमाणका विरोध है ॥ ४७ ॥

दोसे अर्थात् पुरुष व अविद्या दो अंगीकार करनेसे भी अद्वैत प्रमाणका विरोध होगा ॥ ४७ ॥

अन्य दूषण भी कहते हैं-

द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरं च साधकाभावात् ॥ ४८ ॥

दोसे विरोध न होनेसे भी पूर्व और उत्तर साधकके अभावसे घटित नहीं होते ॥ ४८ ॥

दोसे विरोध न होनेसे भी अर्थात् जो ऐसा मानाजाय कि पुरुष व अविद्या दो हैं और आविद्याके माननेमें कुछ विरोध नहीं है तो ऐसा माननेसे भी पूर्व व उत्तर अर्थात् अद्वैतवादी जो प्रकृतिके प्रतिषेध करनेमें पूर्वपक्ष करते हैं व तथा साधकके अभावसे अपने सिद्धांतमें द्वैत पक्षके निषेधमें जो उत्तर वर्णन करते हैं वे दोनों घटित नहीं होते पूर्व पक्ष इस हेतुसे घटित नहीं होता कि, अविद्या व आत्मा दोको वे मानते हैं प्रकृति व आत्मा दोको हम मानते हैं जो उनके दो माननेसे अद्वैतका विरोध नहीं है तो हमारे मतसे विरोध नहीं है वे अविद्याको अनित्य वाचारंभणमात्र मानते हैं हम भी विकारको अनित्य वाचारंभणमात्र मानते हैं परंतु जो हमारे अनेक पुरुषोंके अंगीकार करनेसे और प्रकृतिको भी नित्य अंगीकार करनेसे दोनोंमें विरोध है तो दोमेंसे कौन सत्य मानना चाहिये ? ऐसा संशय हो तो अद्वैतवादियोंका उत्तरपक्ष (सिद्धांत) घटित नहीं होता इससे अद्वैत पक्ष युक्त नहीं है, क्यों अद्वैतपक्षका सिद्धांत घटित नहीं होता ? साधकके अभावसे अर्थात् अद्वैतपक्षका कोई साधक हेतु सिद्ध नहीं होता किन्तु अविद्याके अंगीकार करनेहीसे अद्वैतवादियोंके सिद्धांतकी हानि होती है ॥ ४८ ॥

प्रकाशतस्तत्सिद्धौ कर्मकर्तृविरोधः ॥ ४९ ॥

प्रकाशसे उसकी सिद्धि होनेमें कर्म व कर्ताका विरोध है ॥ ४९ ॥

अद्वैतवादी जो प्रकाश वा ज्ञानसे आत्माका सिद्ध होना मानें व प्रकाशहीरूप अद्वैत भावसे आत्मा मानाजाय तो इसके प्रतिषेधमें यह कहा है कि, प्रकाशसे उसकी सिद्धि होनेमें कर्म व कर्ताका विरोध है अर्थात् चैतन्यरूप प्रकाशसे चैतन्यकी सिद्धि माननेमें कर्म कर्त्ताका विरोध होता है प्रकाश्य व प्रकाशक दोके सम्बंधमें प्रकाशकका प्रकाश करना लोकमें दृष्ट है साक्षात् अपनाही आपमें सम्बंध होना विरुद्ध है अर्थात् आपही कर्म व आपही कर्ता होना विरुद्ध है इससे आत्माको प्रकाशक माननेमें भी कर्म सम्बंध होनेसे द्वैत सिद्ध होगा ॥ ४९ ॥

शंका—जो चेतनमें प्रकाश धर्म न माना जावे और अपने प्रकाशसे आप सिद्ध होना माननेमें कर्म व कर्ताका विरोध होता है तो किस प्रकारसे आत्मा सिद्ध होता है ? उत्तर—

जडव्यावृत्तो जडं प्रकाशयति चिद्रूपः ॥५०॥

जडसे व्यावृत्त (भिन्नताको प्राप्त) चैतन्यरूप जडको प्रकाश करता है ॥ ५० ॥

जडकी व्यावृतिमात्रसे व्यावृत्त चैतन्यरूप जडको प्रकाश करता है, सूर्य आदि तेज धर्मवान्के समान चेतन प्रकाश नहीं करता भाव इस सूत्रका यह है कि, अद्वैत माननेहीमें कर्म व कर्ताका विरोध होता है हम जड व चेतन पदार्थको मानते हैं हमारे पक्षमें विरोध नहीं है हमारे धर्म धर्मी भेद न माननेमें व चिद्रूपही चेतनके माननेमें दोष नहीं है क्योंकि यद्यपि हम सूर्य आदिकोंमें प्रकाश होनेके तुल्य चेतनमें प्रकाश धर्म नहीं मानते परन्तु चिद्रूप (चैतन्य वा प्रकाश रूपही) पदार्थ जडको प्रकाश करता है यह मानते हैं और वह प्रकाश करना इस हेतुसे माना जाता है कि, जडकी व्यावृत्तिमात्रसे चैतन्य होना कहा जाता है जडसे व्यावृत्त (पृथक्कृताको प्राप्त) चिद्रूपपदार्थ जडके ज्ञानका हेतु होनेसे जडको प्रकाश करता है ॥ ५० ॥

शंका—द्वैतके माननेमें अद्वैत श्रुतियोंका विरोध होगा ? उत्तर—

श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः॥५१

रागियोंके वैराग्यके अर्थ उसकी सिद्धि होनेसे श्रुति विरोध नहीं है ॥ ५१ ॥

श्रुति विरोध नहीं है विरोध न होनेमें हेतु यह है कि रागियोंके वैराग्य होनेके अर्थ श्रुतिमें अद्वैतप्रतिपादनके प्रयोजनकी सिद्धि है अर्थात् रागी जो विषयोंमें लिप्त हैं उनके वैराग्य होनेके अर्थ इस प्रयोजनसे कि अद्वैतसाधनसे सत् वैराग्य होता है श्रुति अद्वैतप्रतिपादन किया है

क्योंकि पुरुष ज्ञानहीमात्र सत् और सब असत् द्वैतके अभाव जाननेसे स्वतंत्र कोई अन्य फल न सुननेसे केवल आत्मज्ञानही कल्याणरूप जाननेसे सब अन्यपदार्थसे परम वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ ५१ ॥

अद्वैतवादी जगत्को असत् कहते हैं जगत् सत्य है अथवा असत्य है ? इसका सिद्धांत हेतुसंयुक्त वर्णन करते हैं—

जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद्बाधकाभावात् ॥ ५२ ॥

अदुष्टकारणसे उत्पन्न होनेसे (दुष्टकारणसे उत्पन्न न होनेसे) बाधकके अभाव होनेसे जगत्का सत्य होना सिद्ध है ॥ ५२ ॥

निद्रा आदि दोषसे दुष्टअंतःकरणसे उत्पन्न होनेके हेतुसे स्वप्नमें शंखमें पियराई देखना लोकमें असत्य होना विदित होता है इस प्रकारसे किसी दोषसे दुष्टकारणसे महत्तत्त्वादि कार्य प्रपंच उत्पन्न नहीं हैं प्रकृतिकारण सत्य होनेके विषयमें पूर्वही वर्णन कियागया है इससे दुष्टकारणसे उत्पन्न न होनेसे अर्थात् सत्कारणसे उत्पन्न होनेसे जगत् सत्य है तथा सत्य होनेके बाधक (विरुद्ध) प्रमाणके अभावसे (न होनेसे) जगत् सत्य है जो यह कहा जाय कि, जो श्रुति अद्वैत-वर्णन करती हैं व जगत्के सत्होनेके प्रमाणकी बाधक हैं तो अद्वैत सिद्ध न होनेका प्रमाण पूर्वही वर्णन कियागया है संक्षेपसे यहां फिर वर्णन किया जाता है कि, अद्वैतश्रुति पूर्वोक्तानुसार वैराग्यके अर्थ हैं अथवा प्रकरण अनुसार ब्रह्म सबमें व्यापक व ब्रह्मसे पृथक् कोई पदार्थ न जानकर ब्रह्ममय भावसे विभागकी प्रतिषेध करनेवाली हैं प्रपंचके अत्यन्त तुच्छता वर्णनपर नहीं हैं अन्यथा अद्वैत होनेमें उनही (श्रुतियों) के होनेकी बाधा होगी क्योंकि जगत् प्रपंच स्वप्नवत् मिथ्या होनेके हेतुसे स्वप्नकालके शब्दके मिथ्या होनेमें उस शब्दके

द्वारा जानागया जो अर्थ है वहभी संदेहयुक्त असत्यही होना संभव है श्रुतियोंका अपनेही आत्माकी घातक होनेसे अर्थात् अपनेही प्रमाणकी अपघातक होनेसे श्रुतियां प्रपंचके अत्यंत निषेध करनेपर नहीं हैं इससे जगत्के बाधकप्रमाणके अभावसे जगत् सत्य है ॥ ५२ ॥

जगत् केवल वर्तमानदशामें सत् नहीं है सदा सत्य है इस अभि-प्रायसे सदा सत् होनेका हेतु वर्णन करते हैं—

प्रकारान्तरासंभवात्सदुत्पत्तिः ॥ ५३ ॥

अन्यप्रकारसे उत्पन्न होना संभव न होनेसे सत्की उत्पत्ति होती है ॥ ५३ ॥

पूर्वही जैसा वर्णन कियागया है उन पूर्वोक्त युक्तियोंसे असत्का उत्पन्न होना असंभव है सूक्ष्मरूप कारणमें सत् वर्तमानही कार्य उत्पन्न वा प्रकट होता है इससे सत्हीकी प्रकटता होती है ॥ ५३ ॥

अहंकारः कर्ता न पुरुषः ॥ ५४ ॥

अहंकार कर्ता है पुरुष नहीं है ॥ ५४ ॥

अभिमानवृत्तिके अंतःकारणको अहंकार कहते हैं अहंकारके उत्तर प्रवृत्ति होती है व अहंकारवृत्ति भेदसे बुद्धिका कार्य है अहंकारके उत्तर प्रवृत्ति होनेसे अहंकारको कर्ता कहा है अपरिणामी होनेसे पुरु-षका प्रवृत्त होना सिद्ध नहीं होता ॥ ५४ ॥

चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्माजितत्वात् ५५॥

भोग चेतनमें प्राप्त होता है उसके कर्मसे संचित वा जानित (उत्पन्न किया गया) होनेसे ॥ ५५ ॥

अहंकारके कर्ता होनेमें भी भोग चेतनहीमें प्राप्त होता है इसमें यह शंका निवारणके अर्थ कि, इस प्रकारसे अन्यनिष्ठ कर्मसे अन्यके भोग होनेमें पुरुषविशेषमें होनेका नियम न होना चाहिये यह कहा है कि

उसके (चेतनके) कर्मसे संचित्त होनेसे अर्थात् भोग चेतनके कर्मोंसे संचितफलरूप होनेसे चेतनमें प्राप्त होता है अपने अपने अहंकार अंतः-करण द्वारा कियेहुये कर्मोंका फलभोग होनेसे अन्यके कर्मका फल अन्यको होना सिद्ध नहीं होता इससे अतिप्रसंग दोष नहीं है ॥ ५५ ॥

चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात् ॥ ५६ ॥

चन्द्र आदि लोकमें भी आवृति है निमित्तके सद्भाव होनेसे ॥ ५६ ॥

निमित्तके सद्भाव होनेसे अर्थात् भोगके निमित्त अविवेक कर्म आदि सत् होनेसे चन्द्र आदिलोकमेंभी आवृत्ति है अर्थात् चन्द्र आदिलोकमें प्राप्त होनेसेभी फिर बंध होता है अर्थात् चन्द्र आदि लोकमें प्राप्त फिर दुःखबंधमें प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

शंका—चंद्र आदि लोकवासियोंके उपदेशसे अनावृत्ति होना माना जावै ? उत्तर—

लोकस्य नोपदेशात् सिद्धिः पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

पूर्वके समान लोकके उपदेशसे सिद्धि नहीं होती ॥ ५७ ॥

पूर्वके समान अर्थात् यथा पूर्वोक्त मनुष्य लोकमें उपदेश मात्रसे ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती इसीप्रकारसे अन्यलोकके वासियोंके उपदेशमात्रसे उन लोकके गयेहुओंको ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती ॥ ५७ ॥

पारंपर्येण तत्सिद्धौ विमुक्तिश्रुतिः ॥ ५८ ॥

परम्परासे उसकी सिद्धि होनेमें मुक्ति श्रवण है ॥ ५८ ॥

परम्परासे उनकी अर्थात् ज्ञानकी सिद्धि होनेहीमें मुक्ति होना सुना जाता है लोक आदिमें गमनमात्रसे मुक्ति नहीं होती अर्थात् ब्रह्मलोक आदिगत पुरुषोंका मोक्ष होना श्रवण मनन आदि परम्पराके द्वारा ज्ञान-ही सिद्ध होनेमें सुना जाता है अन्यथा होना संभव नहीं है ॥ ५८ ॥

गतिश्रुतेश्च व्यापकत्वेऽप्युपाधियोगाद्भो-गदेशकाललाभो व्योमवत् ॥ ५९ ॥

व्यापक होनेमें भी उपाधि योगसे गति सुननेसे आकाशके तुल्य भोग देशका कालवशसे लाभ होता है ५९

यद्यपि व्यापक आत्मामें गति संभव नहीं होती तथापि लोकान्तरमें आत्माका गमन सुननेसे आकाशके तुल्य उपाधियोगसे भोग देशका कालवशसे लाभ होना सिद्ध होता है अर्थात् यथा व्यापक आकाशमें घट आदिके उपाधियोगसे गति होती है तथा आत्मामें उपाधि योगसे गति होती है विशेष व्याख्यान इसका पूर्वही होगया है ॥ ५९ ॥

अनधिष्ठितस्य पूतिभावप्रसंगान्न तत्सिद्धिः६०

अनधिष्ठितके पूतिभावप्रसंग होनेसे उसकी सि-द्धि नहीं है ॥ ६० ॥

भोक्तासे अधिष्ठित न हुए अर्थात् अधिष्ठान रहित वीर्य आदिके पूतिभाव होनेके प्रसंगसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गया है उसकी अर्थात् भोगायतन होनेकी सिद्धि नहीं है ॥ ६० ॥

अदृष्टद्वाराचेदसम्बद्धस्य तदसंभवाज्ज-लादिवदंकुरे ॥ ६१ ॥

अदृष्टद्वारा होवे संबंध रहितका वह संभव न होनेसे अंकुरमें जल आदिके समान है ॥ ६१ ॥

इस शंका निवारणके लिये कि, विना अधिष्ठान अदृष्टद्वारा भोक्ताओंके अर्थ भोगायतन शरीरका निर्माण होजाय यह कहा है कि, संबंध रहित अदृष्टका अर्थात् अधिष्ठान (प्राणव्यापार) के सम्बन्धरहित अदृष्टका शुक्र (वीर्य) आदिकोंमें शरीर निर्माणमें वह संभव न होनेसे

अर्थात् भोक्ताके द्वारा होना संभव न होनेसे अदृष्टद्वारा शरीरका निर्माण होना सिद्ध नहीं होता यथा बीजसम्बन्ध रहित जल आदिकोंका अंकुरकी उत्पत्तिमें कर्षक आदिके द्वारा होना संभव न होनेसे जल आदिके द्वारा अंकुर (आदिकी) उत्पत्ति नहीं होती इससे अपने आश्रय संयोग सम्बन्धके साथही अदृष्टका शुक्रआदिमें सम्बन्ध होना मानना योग्य है ऐसा माननेमें आत्मसंयोगरूपसे अधिष्ठानका भोग उपकरण (उपकार करना) शरीरके निर्माणका हेतु होना सिद्ध है ॥६१॥

निर्गुणत्वात्तदसंभवादहङ्कारधर्मा ह्येते ॥ ६२ ॥

निर्गुण होनेसे व उसके असंभव होनेसे यह अहंकारके धर्म हैं ॥ ६२ ॥

वैशेषिक आदिक यह मानते हैं कि, अदृष्टके सम्बंधसे आत्मा अधिष्ठाता है इसके प्रतिषेधके अर्थ यह कहाहै कि, निर्गुण होनेसे व उसके (अदृष्टके) संभव न होनेसे भोक्ताका अदृष्ट द्वारा अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि अदृष्ट आदि अहंकार अंतःकरण सामान्यके धर्म हैं भोक्ताके धर्म नहीं हैं ऐसा माननेमें हमारे मतमें विना द्वाराकी अपेक्षा संयोगमात्रसे साक्षातही भोक्ताका अधिष्ठान, होना सिद्ध होता है यह भाव है ॥ ६२ ॥

विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात् ॥ ६३ ॥

अन्वय व्यतिरेकसे विशिष्टका जीवत्व है ॥ ६३ ॥

जीवधातु बल प्राणधारण अर्थमें है इससे जीव शब्दका अर्थ प्राणी होनेका है यह जीवत्वधर्म अहंकारविशिष्ट पुरुषका धर्म है केवल पुरुषका नहीं है किस हेतुसे अन्वयव्यतिरेकसे अर्थात् अहंकारके अन्वय (संयोग) व्यतिरेक (वियोग) से क्योंकि केवल अहंकारवान् पुरुषोंमें सामर्थ्य व प्राण धारण होना देखा जाता है व अहंकारशून्योंके चित्तकी वृत्तियोंका राग जो प्रवृत्तिका हेतु है उसके उत्पन्न करनेवाले अहंकारके अभावहोनेसे निरोधही होना विदित होता है इससे विशिष्ट

पुरुषका जीवत्व है अहंकाररहित पुरुषका जीवत्व नहीं है स्वच्छ मुक्तरूपत्व है अर्थात् अहंकार रहित मुक्तरूप होता है ॥ ६३ ॥

अहंकारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात् ॥ ६४ ॥

अहंकाररूप कर्त्ताके अधीन कार्यसिद्धि है प्रमाणके अभावसे ईश्वरके अधीन नहीं है ॥ ६४ ॥

अहंकाररूप जो कर्त्ता है उसीके अधीन कार्यसिद्धि अर्थात् सृष्टि संहारकी सिद्धि है क्योंकि सामर्थ्य वा बल अहंकारहीका कार्य है अहंकार रहितमें सृष्टि उत्पत्ति कार्यका सामर्थ्य होना विदित नहीं होता अहंकाररहित ईश्वर है, क्योंकि ईश्वरमें अहंकार होनेका कोई हेतु पाया नहींजाता सृष्टि करनेकी प्रवृत्ति होना संभव नहीं है इससे प्रमाणके अभावसे कार्यकी सिद्धि ईश्वरके अधीन नहीं है अहंकाररूप अर्थात् अहंकारोपाधिक सिद्धपुरुष ब्रह्म रुद्रसे कार्यसिद्धि होसकती है परन्तु उनकाभी मूलकारण प्रकृति है नित्य ईश्वर नहीं है नित्य ईश्वरका सृष्टिकर्त्ता होना प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है ॥ ६४ ॥

शंका—औरोंका कर्त्ता तो अहंकार है अहंकारका कर्त्ता कौन है ? उत्तर—

अदृष्टोद्भूतिवत्समानत्वम् ॥ ६५ ॥

अदृष्टकी प्रकटताके तुल्य समानत्व है ॥ ६५ ॥

यथा सृष्टिकी आदिमें प्रकृति क्षोभक (क्षोभ करनेवाला) कर्मकी कालविशेष मात्रासे प्रकटता होती है और उसके उद्बोधक कर्मान्तर (जन्यकर्म) के कल्पना करनेमें अनवस्थाकी प्राप्ति होती है इसीप्रकारसे अहंकार कालमात्र निमित्तहीसे उत्पन्न होता है उसका कोई अन्य कर्त्ता नहीं है अन्यकर्त्ता कल्पना करनेमें अनवस्था दोष प्राप्त होनेका प्रसंग है इस प्रकारसे प्रकृति क्षोभक कर्मरूप अदृष्ट व अहंकारका समानत्व है अर्थात् अदृष्टके सदृश अहंकार भी माननेके योग्य है ॥ ६५ ॥

महतोऽन्यत् ॥ ६६ ॥

अन्य महत्तत्त्वसे ॥ ६६ ॥

अन्य अहंकार कार्यरूपसृष्टि संहारसे भिन्न जो पालन कार्य है वह तत्त्वसे होता है पालनमें पर अनुग्रहमात्र प्रयोजन होनेसे अभिमान रागका अभाव व शुद्ध सत्त्वगुणका होना सिद्ध होता है इससे महत्तत्त्वका कार्य है इस सूत्रसे महत्तत्त्वोपाधिक अर्थात् महत्तत्त्वरूपाविष्णुको जो सृष्टिका पालक होना कहते हैं सिद्ध होसकता है ॥ ६६ ॥

कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिर्बीजांकुरवत् ॥ ६७ ॥

प्रकृतिका अपना व अपने स्वामीका भावहोना कर्मनिमित्तक होनेमें भी बीज व अंकुरके समान अनादि है ॥

प्रकृति व पुरुषका अपना व स्वामिभाव अर्थात् भोग्य भोक्ता जो कर्म निमित्तक मानाजावे तोभी वह प्रवाहरूपसे अनादिही है यथा बीज व अंकुरका सम्बंध अनादि है आकस्मिक होनेमें मुक्तकाभी फिर भोग प्राप्त होना सिद्ध होगा इससे निमित्त अवश्य अंगीकारके योग्य है ॥ ६७ ॥

अविवेकनिमित्तो वा पंचशिखः ॥ ६८ ॥

अथवा अविवेक निमित्तसे पंचशिख मानते हैं ॥ ६८ ॥

अथवा प्रकृति व पुरुषका भोग्य व भोक्ता भाव अविवेक निमित्तसे है जैसा कि, पंचशिख आचार्य मानते हैं पंचशिख आचार्य जो अविवेक निमित्तसे भोग्य व भोक्ता भाव होना मानते हैं उनके मतमेंभी अविवेक अनादि है अविवेकके अनादि होनेसे भोग्य भोक्ताभाव अनादि है प्रलयमें भी वासनारूपसे कर्मके समान अविवेक रहता है ॥ ६८ ॥

लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्यः ६९

लिङ्गशरीरनिमित्तक है यह सनन्दन आचार्य मानते हैं ॥

प्रकृति व पुरुषका भोग्य भोक्ताभाव लिंगशरीरनिमित्तक है यह सन-

न्दनाचार्य मानते हैं क्योंकि लिंगशरीरहीके द्वारा भोग होता है उनके मतमेंभी लिंगशरीर अनादि है व लिंगशरीरके अनादि होनेसे भोग अनादि है यद्यपि प्रलयमें लिंगशरीर नहीं रहता तथापि उसके कारण अविवेक व कर्म आदिक पूर्वसृष्टिके लिंगशरीरजन्य रहते हैं उनके द्वारा बीज व अंकुरके सदृश भोग्य भोक्ता भाव व लिंगशरीरका अनादि होना सिद्ध होता है इससे लिंगशरीरानिमित्तक है ॥ ६९ ॥

यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ॥ ७० ॥

जिस किसीनिमित्तसे हो उसका नाश पुरुषार्थ है उसका नाश पुरुषार्थ है ॥ ७० ॥

चाहे कर्म निमित्तसे हो चाहे अविवेक निमित्तसे, चाहे जिस निमित्तसे हो प्रकृति पुरुषका अनादि भोग्य भोक्ता भाव जिसका नाश करना वा दूर करना अति कठिन है उसका नाश पुरुषार्थ है उसका नाश पुरुषार्थ है यह निश्चय है शास्त्रके आदिमें यही प्रतिज्ञा है कि, त्रिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति अत्यन्त पुरुषार्थ है व इसीको सिद्धांत निश्चित करके शास्त्रकी समाप्तिमें कहकर शास्त्रको समाप्त किया है उसका नाश पुरुषार्थ है इसको दोवार शास्त्रकी समाप्ति सूचित करनेके लिये कहा है ॥ ७० ॥

इति श्रीप्योरलालात्मजबांदामण्डलान्तर्गततेरहीतिख्यातग्रामवासि-श्रीप्रभुदयालुविनिर्मिते सांख्यदर्शनीयदेशभाषाभाष्ये तंत्राध्यायः षष्ठस्समाप्तः । समाप्तंचेदं शास्त्रमिति ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-मुंबई.

[illegible]